ॐ

श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का
चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

चतुर्थ खण्ड (उत्तर काण्ड)

लेखक :-
चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक :-
योग साधन आश्रम, 3 – माडल टाउन,
होशियारपुर (पंजाब)

श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज का

चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

चतुर्थ खण्ड (उत्तर काण्ड)

लेखक :–

चमन लाल कपूर "सेवक"

प्रकाशक :–

योग साधन आश्रम, 3 – माडल टाऊन,

होशियारपुर (पंजाब)

द्वितीयवार 1000

योगेश्वर राम लालाब्द 114

विक्रम संवत् 2059

ईस्वी सन 2002

भेंट :– रु. 150 / –

ॐ

योग वन्दना

योग–विद्यां नमाम्यहम्

सौंदर्यलहरीरूपां, तापत्रयविनाशनीम् ।
तेजस्विनीं तपोरूपां, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।१।।
संस्थापकां समत्वं तां, शक्तिसर्जनकारिणीम् ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।२।।
अर्धनारीश्वरस्येमां, चैतन्यसार संभवाम् ।
पूर्णरूपकुण्डलिनीं, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।३।।

••••

योग तुझे नमस्कार

सुन्दर करे जो देह को, करे दुखों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ।।१।।
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तावृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ।।२।।
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार ।
जागृत कुण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ।।३।।
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के ''सेवक'', का तुझे नमस्कार ।।४।।

चमन लाल कपूर ''सेवक''

प्राक्कथन

योगेश्वर श्री 1008 प्रभु रामलाल जी महाराज की दिव्य अनुकम्पा और परम पूज्य योगेश्वर सद्‌गुरुदेव स्वामी मुलखराज जी महाराज की महान कृपा से योग जिज्ञासु भक्त समाज के आग्रह पर *"श्री योग महादिव्य रामायण"* के चतुर्थ खण्ड (उत्तर काण्ड) का द्वितीय संस्करण मुद्रित हो रहा है।

इस खण्ड में श्री 1008 प्रभु रामलाल जी महाराज के अवतार धारण करने का प्रसंग, योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी महाराज के जीवन का संक्षेप वर्णन, योग संबंधी श्री 1008 प्रभु रामलाल जी महाराज और योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी महाराज के उपदेश है। भगवान शिव की समाधि, माता पार्वती की तपस्या, तपस्विनी अहिल्या का प्रसंग, शिव पत्नी उमा के प्राण त्याग का मार्मिक वर्णन भी है तथा राजा हरिश्चन्द्र की सत्य पर निष्ठा का उल्लेख है। साम, दान, भेद, दण्ड और कूट नीतियों का शास्त्रानुसार स्पष्टीकरण है। मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के गुणों का उल्लेख विस्तारपूर्वक है।

आशा है सहृदय पाठकों की मांग इस द्वितीय संस्करण के मुद्रित होने से पूरी हो जायेगी।

होशियारपुर
10.10.2002

श्री प्रभु चरण रज
चमन लाल कपूर
'सेवक'

श्री योग महादिव्य रामायण – उत्तर काण्ड

विषय सूची

क्र.सं.	प्रसंग	पृष्ठ
1.	सेवक की विनय	1
2.	श्री प्रभु राम लाल अवतार प्रसंग-शिव-भवानी-काकभुषुण्डी संवाद	4
3.	श्री प्रभु जी का दिव्य योग मार्ग-'सेवक' द्वारा वर्णित	10
4.	योग के साधनों का उपदेश	19
5.	'सेवक' को श्री सद्गुरु द्वारा बख्शी दिव्य अनुभूति का वर्णन	21
6.	श्री सद्गुरु स्वामी मुलखराज के विषय में भक्तों के जिज्ञासा पूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर-'सेवक' द्वारा	25
7.	जीव के शाश्वत दु:ख का कारण और उसका किमि होय निवारण – श्री सद्गुरु मुलखराज का उपदेश	31
8.	मोक्ष कैसे हो? श्री प्रभुजी का एक साध को उपदेश; जो श्री सदगुरु मुख से 'सेवक' ने सुना	36
9.	श्री सद्गुरु सेवा का महत्व – श्री प्रभु जी का उपदेश	44
10.	'सेवक' पर श्री सद्गुरु मुलख राज जी की कृपा का वर्णन	74
11.	प्रभु ध्यान की सरल रीत	80
12.	मोक्ष का मार्ग	87
13.	अभिमान से कैसे बचें?	99
14.	दानिशिरोमन श्री प्रभु राम लाल	105
15.	श्री प्रभु जी के चरणों के ध्यान में मन कैसे स्थिर हो?	112
16.	श्री मुलखराज जी तथा अन्य भक्तों की प्रभु कृपा से ध्यान अवस्था	119
17.	समाधिस्थिता गौतमपत्नी अहिल्या का प्राचीन इतिहास	134

श्री योग महादिव्य रामायण – उत्तर काण्ड

विषय सूची

क्र.सं.	प्रसंग	पृष्ठ
18.	भगवान शिव की समाधि का वर्णन	141
19.	संतापकारी त्रयगुण का बखान और जड़ भरत का उपाख्यान	163
20.	'सेवक' की श्री प्रभु जी से पुकार	176
21.	काम क्रोध आदि पांचों में से सब से बलवान शत्रु कौन? तथा ऋषि विश्वामित्र का उपाख्यान	186
22.	काम शत्रु की प्रबलता और नारद का उपाख्यान	202
23.	लोभ को किस प्रकार वश में करें? जयराम का दृष्टांत	210
24.	नीति विषयक उपदेश – साम और दान नीति	219
25.	भेद नीति और दण्ड नीति विषयक उपदेश	223
26.	कूटनीति विषयक उपदेश	234
27.	काम आदि शत्रुओं पर नीति का प्रयोग कैसे हो?	243
28.	सतयुग त्रेता आदि चार युगों तथा कल्प का वर्णन	251
29.	सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के गुणों का वर्णन और राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग	259
30.	राजा हरिश्चन्द्र को ऋषि विश्वामित्र द्वारा योग संबंधी उपदेश	269
31.	सत्य धर्म की प्रतिष्ठा और मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र के गुणों का उल्लेख	273
32.	रामराज्य कैसे आये? रामराज्य के आधार	282
33.	राम राज्य का विशेष गुण, जाबालि और राम का संवाद तथा पापों का उल्लेख	288
34.	सेवक की प्रभु से विनय पुकार	307

❖ योग साधन आश्रम के नियम ❖

(श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज द्वारा रचित)

1. आश्रम में किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती।
2. पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन सिखलाती हैं।
3. आश्रम के विद्यार्थी तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं : –

   (क) जो सर्वदा आश्रम में रहकर अपने साधन को करते हुए आश्रम की यथा योग्य परिचर्य्या और अन्य भाईयों की प्रेम पूर्वक सेवा करेंगे।

   (ख) जो साधक यथा अवकाश आश्रम में रहकर स्वयं साधन सीखकर अपने देश में जाकर दूसरों को भी अपने अनुभव से लाभ पहुंचाते हुए प्रचार करेंगे।

   (ग) जो आश्रम में आकर साधनों से लाभ उठाएंगे।
4. प्रत्येक साधक को अपने सब खर्च का प्रबन्ध आप करना होगा।
5. रोगी साधक को अपने रोग निवारणार्थ कम से कम एक मास रहने का प्रबन्ध करके आना चाहिये, किन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति के लिये योग के अन्तरंग साधन करना चाहते हों उनको श्री गुरु जी के ही विचार पर सदा निर्भर रहना होगा।
6. प्रत्येक साधक को अपनी दिनचर्य्या तथा रात्रिचर्य्या (टाईम टेबल) श्री गुरु जी की आज्ञानुसार नियत करनी होगी।
7. योग चिकित्सा से चिकित्सित होने वाले साधक को अपने चिकित्सा काल के अन्दर किसी भी डाक्टर वैद्य या हकीम की दवाई खाना निषिद्ध है।
8. यदि कोई साधक अन्य साधकों के किसी साधन को देखकर बिना अनुमति स्वयं उन साधनों को करेगा तो उस से लाभ हानि का जिम्मेवार वह स्वयं होगा और आश्रम के आचार्य के अनुशासन का भी भागी होगा।
9. २० वर्ष से कम आयु वाले को उसके संरक्षकों की सम्मति से प्रविष्ट किया जायेगा।
10. स्त्रियों को संबन्धियों के साथ आना चाहिये या वृद्ध स्त्री को जो संरक्षक हो उसी के साथ आना चाहिये।
11. साधकों को जो भी कोई उपासना या साधन दिया जावे उसे नित्य नियम पूर्वक करना होगा और आचार्य जी की आज्ञा के बिना अन्य कोई मनमानी नूतन उपासना या धारणा नहीं करनी होगी।

❖❖❖❖

श्री योगमहादिव्यरामायण महात्म्य

दुर्लभैव कथा लोके दिव्य रामायणोद्भवा ।
कोटिजन्मसमुत्थेन पुणयेनैव तु लभ्यते ॥ १ ॥

संसार में दिव्यरामायण की कथा परम दुर्लभ ही है। जब करोड़ों जन्मों के पुण्यों का उदय होता है, तभी उसकी प्राप्ति होती है।

तावत्पापानि देहेऽस्मिन् निवसन्ति तपोधनाः ।
यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्रामायणं कथा ॥ २ ॥

हे तपोधनो ! इस शरीर में तभी तक पाप रहते हैं, जब तक मनुष्य श्री रामायण कथा का भली भांति श्रवण नहीं करता ।

कथा रामायणस्यास्य नित्यं भवति यद्गृहे ।
तद्गृहं तीर्थरूपं हि दुष्टानां पापनाशनम् ॥ ३ ॥

जिस घर में प्रतिदिन इस रामायण की कथा होती है, वह तीर्थ रूप हो जाता है। वहां जाने से दुष्टों के पापों का भी नाश होता है।

श्री दिव्य रामायण सहगान

दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ॥
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ॥
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ॥
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ॥
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुखदायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
'सेवक' शीश झुकावे ॥

ॐ नमः श्री रामलाल प्रभुजी परब्रह्मणे नमः

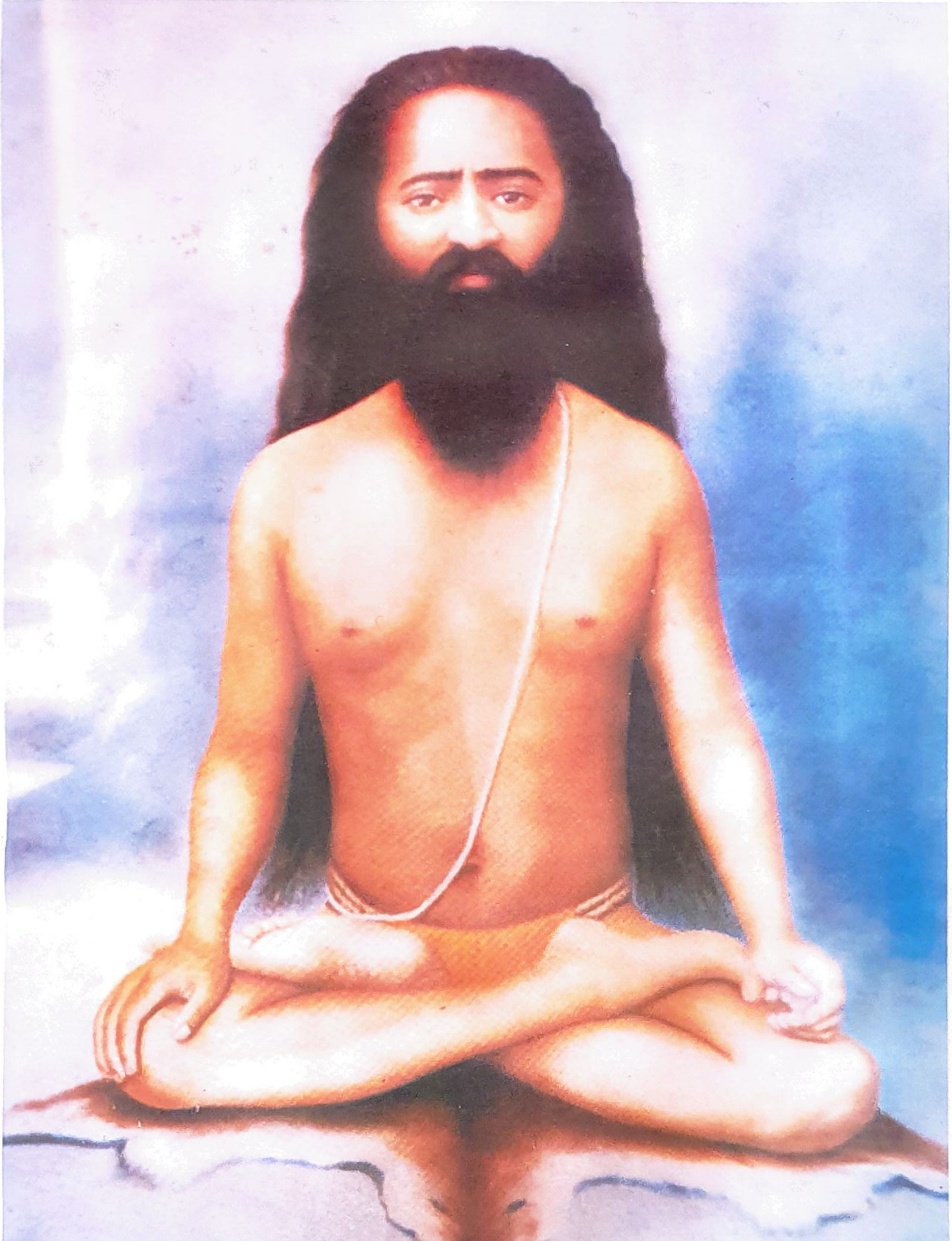

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

ॐ

श्री योग महादिव्य रामायण

(उत्तर काण्ड)

1. सेवक की विनय

दो0 – प्रभो दयामय दया कर, चरणों की दो सेव ।
सेवक राखो शरण में, प्रकट करो निज भेव ।। 2546ङ
मेधावी इस को करो, जिमि ग्राहवे ज्ञान ।
रहस्य आप के गूढ़तम, समझ सके भगवान ।। 2546च

दीजिये प्रभु जी प्रतिभा दान, समझ सके यह आप से ज्ञान ।
गूढ़ बात जो आप बतावें, रहस योग के जो समझावें ।
उन को समझ पाये यह दास, दृढ़ करिये इस चित्त विश्वास ।
मूढ़मती यह 'सेवक' जान, करो कृपा इस पर भगवान ।
उत्तार – काण्ड का है आरंभ, चित्त बसे नहीं इस के दंभ ।
सफल करिये इस का प्रयास, कृत कृत्य हो आप का दास ।
चमत्कार जो आप दिखाये, वर्णित कुछ इस में हो पाये ।

उन पै सब को हो विश्वास, आपके चरणों के जो दास ।
चरण आप के जन जो ध्यावे, संशय उसके चित्त न आवे ।

दो0 – संशय न चित्त लाय कर, करें आप से प्यार ।
ऐसे भक्तन का प्रभो, जग में हो विस्तार ।। 2547क
भक्त जनों के हे प्रभो, तुम हो पालन हार ।
अन्य ठौर है न जिन्हें, उन के तुम आधार ।। 2547ख

उत्तर काण्ड अब करूँ बखान, प्रभु के चरणों का धर ध्यान ।
आप ही केवल मम आधार, प्रभो बतावें योग का सार ।
जो कुछ 'सेवक' तुम से पाये, वह कुछ ही जग में वितराये ।
वह तो स्वयं है शून्य समान, प्रभु चरणीं लग पाता मान ।
शून्य मान को तब ही पाये, नाथ अंक सह जब लग जाये ।
नाथ करो इस शून्य पै दाय, मान निमाना यह पा जाय ।
तुम से किस–किस मान न पाया, कौन सके गिन तेरी माया ।
जड़ से जड़ भी शरणीं आया, कर किरपा तुम चरणि लगाया ।

दो0 – मुझ से बढ़कर जड़ नहीं, रखना प्रभु जी ध्यान ।
ठुकराना न दास को, परम निमाना जान ।। 2548क
शरणीं अपनी राखिये, दर–दर भटके नांहि ।
रामरत्ती को तारया, तारो मुझ को सांइ ।। 2548ख

रामरत्ती को तुम ने तारा, जगवन्द्या उस को कर डारा ।

बुढ़िया नागिन तुम ने तारी, क्या था उस में गुण बहु भारी ।
किरपा तेरी जब हो जाये, मूढ़मती भी मुक्ति पाये ।
रणसिंह पर तुम कीनी दाया, सन्मारग पर उसे लगाया ।
तब चरणी जो चित्त लगाये, सन्मारग वह क्यों न पाये ।
हरिहरानन्द तुम अपनाया, स्पर्श मात्र से सिद्ध बनाया ।
चमत्कारी स्पर्श तुम्हारा, कोटि जनों को जिस ने तारा ।
'सेवक' को बस यही सहारा, जिस सिमरा प्रभु उस को तारा ।

दो0 – 'सेवक' के मन में बसे, ऐसा दृढ़ विश्वास ।
जिस तारे बहु भक्त जन, वह तारे यह दास ।।2549क
वह तारे इस दास को, सारे दोष विसार ।
जन्म – जन्म के पाप मम, भारी उन का भार ।।2549ख
मन लायें यदि पाप मम, किस विध हो निस्तार ।
सोच में भी न आ सकें, वे तो बेशुमार ।। 2549ग

निज किरपा से ही प्रभु तारें, मेरे दोष न मन में धारें ।
निज नाम वह स्वयं जपावें, गाथा अपनी स्वयं लिखावें ।
अपना कर्म करावें आप, योग संदेश सुनावें आप ।
प्रभु किरपा जब होय महान, प्राप्त करे तब 'सेवक' ज्ञान ।
गूढ़ रहस्यों को ले जान, प्रभु लीला का करे बखान ।
उत्तर – काण्ड है काण्ड महान, बखान करूँ प्रभु जिमि दें ज्ञान ।

2. श्री प्रभु रामलाल अवतार प्रसंग –
शिव भवानी–काकभुषुण्डी संवाद

एक समय कुछ जन चलि आये, 'सेवक' संग बैठ कह पाये ।
सुन पाया हम ने महाराज, राम उतरे हैं जग में आज ।
राम कौन जिन लीन अवतार, किस हेत हैं आये तन धार ।

दो0 – किस हेत प्रभु आय हैं, मानव तन को धार ।
श्रवण करें हम ला चित्त, बात सकल का सार ।। 2550क
बात सकल का सार जो, कथन करें हम पास ।
श्रवण करें जब आप से, होय हमें विश्वास ।। 2550ख
आप्त पुरुष जो आप हैं, कहें सदा ही सत्य ।
इस मुख से जो नीकसे, उसे ही जानें तथ्य ।। 2550ग
है जिज्ञासा तथ्य की, मिले आप से नाथ ।
बैठ शरण में आप की, श्रवण करें इक साथ ।। 2550घ

सकल जनन की सुन जब पाई, इस 'सेवक' तब कथा सुनाई ।
मित्रगण हम तुम्हें बतावें, त्रेता युग की बात सुनावें ।
ऋषि एक हैं भये महान्, काकभुषुण्डी मुनि अभिधान ।
त्रिकालदर्शी वे ऋषि सुजान, तीन काल का उन को ज्ञान ।
इक दिन उन के आश्रम आये, शिव, भवानी को संग लाये ।
ऋषि ने उन का कीना मान, मात पिता जगती के जान ।
आश्रम को उन बहु प्रशंसा, जिसमें आ उनका श्रम नंसा ।
बैठे जब सुख से त्रिपुरारी, तभी भवानी गिरा उचारी ।

दो0 – जगजननी ने तब कही, ऋषिवर से यह बात ।
"तीन काल हम ने सुने, हैं तुम को साक्षात ।। 2551 क
चतुर्युगी जो चल रही, इस का जब कलिकाल।
पाप घोरतम तब भये, धर्म भये निस्सार ।। 2551 ख
हे मुनिवर! उस काल में, धर्म बचावे कौन ।
आज सुनें हम आप से, उत्तर होवे जौन" ।। 2551 ग

काक भुषुण्डी जब सुन पाया, भवानी जो प्रसंग चलाया ।
जो उत्तर तब उस ने दीना, गुरु मुख से 'सेवक' भी चीना ।
कथन करूँ वह सारी बात, सावधान हो सुन लो तात ।
कहा भुषुण्डी "हे जग माता, भविष्य कहूँ जो दृष्टि आता ।
महापुरुष का सुन इतिहास, प्रकट भयें जो कलि में खास ।
राम लाल हो उन का नाम, योगी रूप धर आवें राम ।
'अष्ट' वंश में उन का आना, प्रभु किरपा से है मैं जाना ।
उस कुल में हों साध अनेक, धर्म कर्म में दृढ़ प्रत्येक ।

दो0 – धर्म कर्म से युक्त कुल, पंचनद हो प्रदेश ।
ग्रह नक्षत्र काल भी, होंगे सभी विशेष ।। 2552क
गण्डा राम के घर भयें, राम लाल अवतार ।
भागवंती हो मात तव, नगरी अमृत सार ।। 2552ख
चैत्र शुक्ला नवमी हो, वासर हो गुरु वार ।
वृषभ लग्न में राम जी, लेंगे तब अवतार ।। 2552ग

सूर्योदय से छः घड़ी, छप्पन पल भी साथ ।
पुनर्वसू नक्षात्र में, प्रकटें जग के नाथ ।। 2552घ

जगजननी अब मैं बतलाऊँ, उन का जीवन भी कथ पाऊँ ।
प्रथम अढ़ाई वर्ष में नाथ, रहें अस्वस्थ मात के साथ ।
अढ़ाई वर्ष पुनः जब आवें, घर में सर्व सुखों को लावें ।
विद्यारंभ करें इस काल, राम अनूपम होंगे बाल ।
अढ़ाई वर्ष अगले में जान, पाना चाहें आत्म ज्ञान ।
अल्पायु में ज्ञान पिपासा, अलौकिक हि यह इक जिज्ञासा ।
जब दश वर्ष की आयु आवे, दिव जिज्ञास उद्य हो पावे ।
गृह बन्धन न उन्हें सुहावे, स्वतन्त्र विचरण उन को भावे ।

दो0 – स्वतंत्रता से वीचरें, ज्ञान हेतु उस काल ।
ज्ञानपिपासू जग रमें, अल्पायु दिव्य बाल ।। 2553

मात – पिता हों चिन्तित भारी, समझें बालक ऊधमी भारी ।
जग जननी मैं क्या कथ पाऊँ, दिव्य बालक की लीला गाऊँ ।
पारिवारिक न बात चलाऊँ, ऐश्वर्य को कथन में लाऊँ ।
अढ़ाई वर्ष और जब आवें, ईश्वर दर्शन दे कर जावें ।
गुरु का रूप तब ईश्वर धार, शिक्षा देवें परम अपार ।
गहें ज्ञान वैराग्य का सार, मात – पिता लें चिन्ता धार ।
मात – पिता करें उद्वाह, बालकौर से होय विवाह ।
इस विध पंदरह साल के राम, बनें गृहस्थी सुख के धाम ।

दो0 – आयु पंदरह वर्ष की, गृह बंधन में डाल ।
मात – पिता मन में सुखी, पुत्र लिया संभाल ।। 2554क
गृह बंधन न बांध सके, राम स्वतन्त्र जान ।
विलग रहें संसार से, गुरु से पा कर ज्ञान ।। 2554ख
गुरु से पा कर ज्ञान को, रह वे पायें विलग ।
इमली जैसे छील से, संग भी होत अलग ।। 2554ग
विरक्तता का राम में, अनुदिन हो विस्तार ।
मात – पिता चिन्तित रहें, निरख राम की कार ।। 2554घ
स्वर्गवास हो जनक का, राम त्यागें गेह ।
देश – देश में जाय कर, संत समागम लेह ।। 2554ङ
पुनः अढ़ाई वर्ष में, बहु जन लागें संग ।
राम देंय उपदेश को, जिमि हों संशय भंग ।। 2554च
पुनः अढ़ाई वर्ष भी, हों विचरण व्यतीत ।
जग से रहें विरक्त ही, राम त्रिगुणातीत ।। 2554छ
हे जगजननी ! राम की, क्या कथूं मैं कार ।
घोर नरक के जाल से, करें जगत उद्धार ।। 2554ज

राम करें जग का उद्धार, जग माने उन का उपकार ।
सभी करें उन का गुण गान, कीर्तिमान हो राम महान ।
निर्विकल्प लें समाधि साध, जल समाधि भी लेंय आराध ।
पुनः अढ़ाई वर्ष अनन्तर, प्रकटे सिद्धि राम के अन्तर ।

अढ़ाई वर्ष फिर हों व्यतीत, महिमा प्रकटे कथनातीत ।
ऐसी महिमा राम दिखायें, इक समय बहु रूप हो जायें ।
फिर अढ़ाई वर्ष चलि आयें, अलौकिक शक्ति राम दिखायें ।
सर्वव्यापक होवे रूप, आहार व निद्रा बिन स्वरूप ।

दो0 – सर्वव्यापक राम जी, प्रकटें कलि के काल ।
महिमा उसकी जो कथे, ग्रसे न उस को काल ।। 2555क
जग जननी जो मैं कथी, सत्य जान यह बात ।
परब्रह्म कलि काल में, राम बनें साक्षात ।। 2555ख

अनुपम शक्ति राम दिखायें, इक रूप बहु रूप हो जायें ।
अयोनिसंभव कल्पें देह, इस विध जग में विचरें वेह ।
"व्यूहकाय" जो सिद्धि कहाये, इस में राम सहज रह पाये ।
जब चाहें वे होवें लुप्त, इस विध विचरें जग में गुप्त ।
इकावन वर्ष आयु जब होय, पार्थिव देह त्याग के सोय ।
दिव्य देह को लेवें धार, विचरें अचलों[1] में जगधार ।
इन में ईश्वर में नहीं भेद, जो समझे नहीं पावे खेद ।
नवग्रह हों न इन पै हावी[2], इन के ही वश जग की भावी[3]।
जो जन इन का करेगा ध्यान, कृपा दृष्टि वह पाये पुमान" ।

---

[1] अचल – पर्वत [2] हावी – प्रभावशाली

[3] भावी – जगत के भविष्य के अर्थात भाग्य के निर्माता वे ही हैं ।

दो0 – जग जननी मैं क्या कहूँ, महापुरुष का रूप ।
काकभुषुण्डी इमि कथा, उनका सत स्वरूप ।। 2556क
"जब तक सूरज चाँद हैं, तब तक दिव प्रभाव ।
रहे राम का जगत में", कथा भुषुण्डी भाव ।। 2556ख

काकभुषुण्डी जिमी बखाना, गुरुमुख से 'सेवक' ने जाना ।
वही कथा मैं है कथ पाई, स्मरण करें प्रभु को सब भाई ।
और बात कुछ हो मन माहिं, प्रश्न करो हम वही बताहिं ।
इक सज्जन्न तब कीन सवाल, ईश्वर प्रकटा है कलिकाल ।
धर्म हेतु ईश्वर का आना, सब ग्रंथन है इमि बखाना ।
हमें धर्म का दें उपदेश, कौन धर्म के कर्म विशेष ।
हम भी उन कर्मन को पालें, प्रभु जी की शिक्षा पर चालें ।
गहें धर्म का पंथ विशेष, मिले आप से जो उपदेश ।

दो0 – गहन धर्म का पंथ है, कथन करें सब संत ।
सद्गुरु के उपदेश से, भ्रांती का हो अंत ।। 2557क
सुनकर उसके वचन को, 'सेवक' कीन बखान ।
दिव्य मार्ग जो योग का, प्रभु जी दीना आन ।। 2557ख

3. श्री प्रभु जी का दिव्ययोग मार्ग – 'सेवक' द्वारा वर्णित

साधक जन! मैं करूँ बखान, प्रभु जी के उपदेश महान ।
उन का पालन जो कर पावे, जग में धर्मी पुरुष कहावे ।

1. अहिंसा

प्रभु कहते परहित कर पावो, तुम न किसी से द्रोह कमावो ।
सबका सोचो हित ही मीत, जीव चराचर से हो प्रीत ।
मुख जब खोलो मीठा बोलो, बोलो पाछे पहले तोलो ।
निज हाथों से नहीं दुखावो, निज पाओं से नहीं सतावो ।
दान्तों से न काटो मीत, दुखी करो न किसी का चीत ।
तन मन धन से यही कमावो, जीव चराचर सुखी बनावो ।

दो0 – जीव चराचर हों सुखी, योगी जन से मीत ।
यह सीख प्रभु देव की, यही धर्म की रीत ।। 2558क

2. सत्य

सत्य बराबर धर्म नहीं, झूठ बराबर पाप ।
प्रभु बताया धर्म यह, आ जगत में आप ।। 2558ख
मन वचन और कर्म में, अन्तर रहे न लेश ।
ऐसे सरल व्यंवहार से, धार्मिक बनें विशेष ।। 2558ग

3. अस्तेय

छिप–छिप कर जो काम करे, और छिपावे बात ।
अथवा पर धन जो हरे, धार्मिक जन न तात ।। 2558घ
पर धन को जो हरत जन, कथें जिसे सब चोर ।
मिले न उसको सुख कभी, गहे नरक का ठोर ।। 2558ङ
प्रभु जी का उपदेश यह, करो परिश्रम तात ।
अपनी रोजी आप कर, इस जैसी न बात ।। 2558च

इक भक्त तब बात उच्चारी, "नाथ निवारो शंका भारी ।
हम चोर को किमी पहचानें, [1]स्तेन कौन ? हम कैसे जानें" ।
सेवक ने तब कीन बखान, मित्र मेरे लेवो जान ।
प्रश्न तुम्हारा है बहु ठीक, व्यापक चोरी की है लीक ।
चोरी ने है सबन दबाया, बचा वही जिसे गुरु बचाया ।
गुरु भी इससे बच न पायें, किस लेखे हम जग को लायें ।
गुरुओं को प्रभु करें सतर्क, कर्तव्य में जिमि न लावें फ़र्क ।
शिष्य से लेंय जो धन विशेष, और न नाशें शोक अशेष ।
निन्दा के वे गुरु अधिकारी, उनको जान चोर हैं भारी ।

दो0 – शिष्य से धन जो लेय कर, दूर करे न शोक ।
ऐसे गुरु का जानिये, बिगड़ पाय परलोक ।। 2559

---

[1] स्तेन – चोर ।

एक चोर मैं और बखानूँ, नृप उसी को चोर मैं मानूँ ।
जनता से करे कर वसूल, अपना धर्म जावे पर भूल ।
प्रजा को देवे न जो न्याय, दुखी प्रजा दुख में कुरलाय ।
नृप नरक का वही अधिकारी, है कथा सो चोर ही भारी ।
इक चोर मैं और भी जानूँ, उस वणिक को चोर ही मानूँ ।
उचित दाम जो लेकर मीत, ठगे गाहक को नाना रीत ।
धोके से जो वित्त कमावे, वह धन उसे नरक ले जावे ।
प्रभु की सीख है मेरे मीत, रहे सबन का धर्म में चीत ।

दो0 – बिन धर्म के नहीं मिले, जग में सुख का सार ।
परलोक में जाय कर, अधर्मी हो ख़्वार ।। 2560क
महाप्रभु की सीख यह, प्रभु जी दीनी आय ।
सद्‌गुरु स्वामि मुलख से, मैं सुनी चित्त लाय ।। 2560ख

4. ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य का नेम भी, प्रभु जी कीन बखान ।
मन विषयों से रोककर, स्मरण करो भगवान ।। 2560ग
आंख कान और नाक के, बहुत विषय प्रकार ।
जिह्वा और स्पर्श भी, जन को करें ख़्वार ।। 2560घ
वश में इनको जो करे, ब्रह्मचारी वह होय ।
चित्त रमे तब ईश में, ब्रह्म वृत्ति है सोय ।। 2560ङ

शिक्षा मेरे राम की, रमन करे मन ईश ।
[1] हेय विषय जग जानकर, भजे सदा जगदीश ।। 2560च

5. अपरिग्रह

विषयों का जब संग त्यागे, वस्तु जगत की प्रिय ना लागे ।
संग्रह करे जन फिर किस हेत, चित्त शून्य जिमि ऊसर खेत ।
अपरिग्रही कहावे साध, मानो लीना योग आराध ।
योग हेतु हैं प्रभु अवतारे, उनके सेवक योगी भारे ।
मानें वे उनके उपदेश, पाप रमे नहीं उन मन लेश ।
'यम' व 'नियम' उनके गुण जानो, शुद्ध बुद्ध तुम उनको मानो ।
'यम' का कथन किया है मीत, 'नियम' भी सुन लो लाकर चीत ।

(क) शौच

शुद्धी का जन नियम बनावे, शौच नाम सो कथन में आवे ।
दो0 – शौच नाम से जो कथें, प्रथम नेम लो जान ।
मन वचन और कर्म से, सुथरा रहे सुजान ।।2561क
शुद्ध रहे ना देह से, मन से रहे मलीन ।
वाणी जिसकी दोषयुत, पाप रूप वह दीन ।।2561ख

---

[1] हेय – त्यागने योग्य ।

(ख) सन्तोष

योगिजन का धर्म पहचान, रहे सन्तुष्ट सदैव सुजान ।
सन्तोष का हो न कभी त्याग, मिलत वही जो बदा हो भाग ।
मिलता नहीं सुख बिन सन्तोष, सन्तोषी चित्त बसत न रोष ।
धर्मयुक्त रह करो कमाई, प्रसन्न रहो उसी में भाई ।
सन्तोषी पावे सुख महान, सन्तोष बिना सब दुःख जहान ।

(ग) तप

एक नेम वे और बतावें, तप की महिमा को समझावें ।
तपस्या से परमार्थ पावें, बिन तप भव में जन बह जावें ।
जिसने तप की कीन कमाई, उसने जग में सिद्धि पाई ।

दो0–सकल सिद्धि का मूल ही, तप को ले जन जान ।
धर्म परायण नरन को, लो तपस्वी मान ।।2562क
इक सज्जन ने तब कहा, स्पष्ट करें यह बात ।
तपी कहें किन नरन को, हमें बतावें तात ।।2562ख
हम भी वैसा तप करें, प्रभु से मिले दुलार ।
चित्त हमारे है बसा, योग धर्म सत्कार ।। 2562ग

'सेवक' ने तब कीन विचार, प्रभु मूरत को चित्त में धार ।
और कहा सुनिये मम मीत, ईश्वर को धर करके चीत ।
कर्तव्य कर्म करें मन लाय, यही तपस्या ठीक कहाय ।
व्यर्थ में तन मन जो दुःखाते, तप का फल कभी नहीं पाते ।

तप तो सिद्धियों का है मूल, गुरुमुख समझे यही असूल ।
मनमानी जो जन कर पायें, और देह को व्यर्थ दुखायें ।
अहं भाव में रहकर चूर, रहें सिद्धि से कोसों दूर ।
तप हो वह जो जनहित मीत, राग द्वेष से विरहित चीत ।

दो0 – ऐसा तप जो जन करे, मान गुरु उपदेश ।
उसको योगी जानिये, उसके मिटें क्लेश ।। 2563

(घ) स्वाध्याय और श्री योग महादिव्य रामायण का परिचय

एक बात अब कहूँ विशेष, प्रभु जी का यह है उपदेश ।
नित्य पढ़े जन शास्त्र मीत, अथवा उन्हें सुने ला चीत ।
मनन करे चित्त में उपदेश, विसरे नहीं उनको वह लेश ।
जीवन में उनको ले ढाल, निज आचार परखे सब काल ।
सद आचारी योगी जानो, प्रभु की शिक्षा यह सब मानो ।
सुनकर एक भक्त कह पाया, नाथ बहु उपदेश है भाया ।
एक बात का करें बखान, ग्रन्थ हम कौन पढ़ें भगवान ।
जिस ग्रन्थ का नाम बतावें, नित्य वही हम पढ़ें सुनावें ।

दो0 – नित्य पढ़ें हम ग्रन्थ वह, हो जैसा आदेश ।
नाथ आप हैं संद्गुरु, चित्त न संशय लेश ।। 2564

'सेवक' ने यह सुन जिज्ञास, और जान उसका विश्वास ।
कथन किया इमि प्रभु मन धार, बन्धुवर्य तव शुभ विचार ।

ऋषिकृत ग्रन्थ सभी महान, सभी से हो जन का कल्याण ।
सभी पुरातन ग्रन्थ पुनीत, विद्या के भण्डार हैं मीत ।
सभी ग्रन्थों का लेकर सार, ग्रन्थ लिखाया अब करतार ।
भाषा सरल विचार पुनीत, सुगम ग्रन्थ यह है मम मीत ।
बाल युवा वा वृद्ध महान, सभी सकें पा इससे ज्ञान ।
प्रभु की भक्ति से भरपूर, योग मिले पढ़ इसे ज़रूर ।
'दिव्य रामायण' इसका नाम, प्रभु लीला का सुन्दर धाम ।
पाठ करे जो इसका मीत, रमन करें प्रभु उसके चीत ।

दो0 – 'योग दिव्य रामायण' को, पढ़े सुने जो नित्त ।
उसके कारज सफल हों, प्रभु बसें उस चित्त ।। 2565

[1] काण्ड पांच इसके हैं भाई, प्रभु लीला जिनमें है गाई ।
पहला बाल काण्ड सुखदाई, बालपने की लीला आई ।
दूजा वन का काण्ड महान, ढूँढें सद्गुरु को भगवान ।
उच्च हिमालय सद्गुरु पाया, शंकर सद्गुरु रूप बनाया ।
आश्रम काण्ड तीसरा भाई, बस्तिन में प्रभु रह सुखदाई ।
योग का जग को दीना ज्ञान, आश्रम का भी भया निर्माण ।
बहु भक्तों को गले लगाया, योग से जग का दुख दुराया ।
नींव डाल के योग की राम, पुनः गये वन सुख के धाम ।

---

[1] पूर्व योजना के अनुसार इस ग्रन्थ के पांच काण्ड ही थे। परन्तु श्री प्रभु जी की प्रेरणा से नौ काण्ड प्रकाशित हो चुके हैं ।

दो0 – नींव योग की डालकर, देय मुलख को राज ।
योग संरक्षक राम जी, योग पसारें आज ।। 2566

दिव्य काण्ड है चौथा जानो, मुलखराज सद्गुरु सन्मानो ।
इसमें उनके हैं उपदेश, योग की महिमा कथी विशेष ।
उत्तार काण्ड पांचवां जानो, योग महातम को पहचानो ।
इसमें जो कुछ लिखा विशेष, श्रद्धालु जनता पढ़े हमेश ।
सुनकर भक्तों ने यह वाणी, मस्तक टेक के उन सन्मानी ।
कहन लगे वे "सद्गुरु दयाल, हम तो भये हैं आज निहाल ।
ग्रन्थ मिला हमको अब ऐसा, ढूँढ रहे बहुकाल से जैसा ।
प्रभु रूप यह ग्रन्थ है पाया, भयी आपकी बहु यह दाया ।
नित्य करें स्वाध्याय नाथ, रहे आपकी दया का हाथ ।

दो0 – दया आपकी नित रहे, पढ़ें सुनेंगे ग्रन्थ ।
सन्मारग का दर्श हो, मिले योग का पन्थ" ।। 2567

'सेवक' सुन भक्तों की वाणी, दया नाथ की मन में जानी ।
और कही फिर आगे बात, ध्यान से श्रवण करो अब तात ।
और क्या प्रभु के उपदेश, स्मरण रहें जो हमें हमेश ।

(ङ) ईश्वर प्रणिधान

प्रभु का यह जग को सन्देश, भूलें नहीं हम प्रभु को लेश ।
भजें सदा चित्त में भगवान, भजन करे सो ही इन्सान ।
बन्दा बन्दगी करे हमेश, भूले न कभी यह उपदेश ।

कण कण में ईश्वर का वास, देह हमारा ईश आवास ।
फिर क्यों ईश्वर को न देखें, तन में क्यों न प्रभु को पेखें ।

दो0-राम रूप इक लाल है, सभी घटों के माहिं ।
दिव चक्षु से देख लो, बाहर भटको नाहिं ।। 2568क
निज तन में जो देखते, प्रभु का दिव स्वरूप ।
योग मार्ग पर वे लगें, प्रभु की सीख अनूप ।। 2568ख
नित आसन में बैठकर, हो जो अन्तर्ध्यान ।
योग मार्ग पर वह लगे, दिया प्रभु यह ज्ञान ।। 2568ग
दिया प्रभु यह ज्ञान है, सकल विश्व के हेत ।
शूरवीर ही धर्म के, जूझेगा इस खेत ।। 2568घ
यह मग न है कायर का, विरला वीर महान ।
मारे काम क्रोध को, लोभ मोह अभिमान ।। 2568ङ

भक्तों ने जब सुन यह पाया, दृढ़ निश्चय तब मन में आया ।
कमर बान्ध हम करेंगे योग, त्याग करें दुखदायक भोग ।
वीर योगी हम बन दिखावें, कायरता को दूर भगावें ।
भक्त कहें तब "हे महाराज, धार लीना हम निश्चय आज ।
प्रभु उपदेश सुन करके नाथ, योग करें हम सब इक साथ ।
साधन का हमें दें उपदेश, जैसा है प्रभु का आदेश" ।
सुनकर भक्तन की जिज्ञास, कहा 'सेवक' हे प्रभु के दास ।
जिस मन प्रभु की भक्ति निशेष, कर सके वही योग विशेष ।

दो0 – प्रभु भक्त सभी आप हैं, प्रभु चरणी विश्वास ।
योग साधन में आस्था, कहूँ योग अब खास ।। 2569

4. योग के साधनों का उपदेश

योग के मग में विघ्न अनेक, उनसे बच के रहे प्रत्येक ।
योग के विघ्न निवारण हेत, साधक राखो देह सचेत ।
तन के रोग विघ्न बहु मानो, उस हेत हठ योग सन्मानो ।
षट्कर्मों का हो अभ्यास, रोग न व्यापें जन को खास ।
नेती धौती आदी भाई, षट्कर्म सकल बहु सुखदाई ।
इनके संग जो प्राणायाम, उसके कथे को गुण तमाम ।
देह सदा उसको सुखदाई, साधन करता जो मन लाई ।
नेती धौती साधन सारे, आसन मुद्रा भी जो धारे ।
साधक ऐसा योग कमाये, सीख प्रभु से जो मिल पाये ।

दो0 – प्रभु की शिक्षा मानकर, राखो देह निरोग ।
ऐसा जन ही कर सके, मानव तन में योग ।। 2570क
सुनकर इस उपदेश को, बोला भक्त सुजान ।
"नाथ! सीख यह आपकी, है साची भगवान ।। 2570ख
तन रोगी जिसका भये, क्या सके कर काम ।
तन की चिन्ता में रहे, मिले न पल विश्राम ।। 2570ग
हम साधन अब नित करें, राखें स्वस्थ शरीर ।
और चलें उपदेश पर, दूर भये भव भीर" ।। 2570घ

सुनी 'सेवक' ने उसकी बात, और कहा सुनिये मम तात ।

प्रभु की सीख का समझो सार, खुले जीव को मोक्ष द्वार ।
प्रभु मोक्ष का मग बतलाया, भक्तों का मन वहीं टिकाया ।
मार्ग सुषुम्ना में मन लाना, वही मोक्ष का मग है जाना ।
उस मार्ग जब चित्त टिक पाये, काल गति नहीं बाधा लाये ।
इस मार्ग में दिव्य पड़ाँव, देवों के जो कथे हैं ठाँव ।
मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपूर वा अनाहत जान ।
विशुद्ध व आज्ञा का इस्थान, सभी में बसते देव महान ।
सुषुम्ना के इस मग द्वारा, चित्त चले ले प्राण सहारा ।
बनते देव सहायी मीत, चित्त गति की दिव्य यह रीत ।

दो० – चित्त जभी एकाग्र हो, मध्य सुषुम्ना जान ।
दशम द्वार में जा चढ़ें, प्रभु कृपा से प्राण ।। 2571 क
चित्त एकाग्र जो करे, मध्य सुषुम्ना जाय ।
निग्रह इन्द्रिन का भये, प्रत्याहार कहलाय ।। 2571 ख
प्रभु भक्तों को सीख यह, प्रभु की है मम मीत ।
इन्द्रिय निग्रह चाहिए, मुख्य योग की रीत ।। 2571 ग
इस से आगे जन करे, एक तत्व का ध्यान ।
चित्त एकाग्र तब भये, ध्यान योग में मान ।। 2571 घ

दीर्घ काल जो करता ध्यान, प्रकट होत उस जन को ज्ञान ।
योग समाधी में रह पावे, आत्म रूप मन मांहि लखावे ।
हे मित्रो यह प्रभु की सीख, सत्य मारग है करो परीख ।

इस मारग पर जो चल पावे, जीवन का फल वही कमावे ।
छोटे-छोटे मार्ग अनेक, दूर पहुँचाये न भी एक ।
योग मार्ग ही ऐसा भाई, जीव को पूरण मुक्तिदायी ।
प्रभु मारग है योग बताया, मार्ग कठिन पर सरल बनाया ।
प्रभु रक्षक इस मग में भाई, विघ्न आये न को दुखदाई ।

दो० – विघ्न निवारक हैं प्रभु, सहज मार्ग यह योग ।
गुरु कृपा का लाभ कर, चल पायें सब लोग ।। 2572

इस विध 'सेवक' ने समझाया, योग मार्ग का सार बताया ।
किया सबन तब यह स्वीकार, योग धर्म सब सुख का सार ।

5. सेवक को श्री सद्गुरु द्वारा बख्शी दिव्य अनुभूति का वर्णन

भक्त एक तब विनय उचारी, "नाथ! आपकी शिक्षा न्यारी ।
आपकी शरणि हैं हम आये, इक जिज्ञासा मन में लाये ।
श्रवण करी हमने यह बात, आप किया प्रभु का साक्षात ।
दिव ध्वनि प्रभु की सुन पाई, मन्त्र दिया प्रभु ने खुद आई ।
श्रीमुख से हमें आप बतावें, निज अनुभव को हमें सुनावें ।
और भी अपने दिव्य अनुभव, हमें सुनाइये नाथ वे सब ।

दो० – हमें सुनावें नाथ जी, अपने दिव्य अनुभव ।
प्रभु चरणों में जो भये, सुन पायें वे सब ।। 2573 क
सुन पायें वे हम सभी, श्री मुख से हे नाथ! ।
प्रभु महिमा को श्रवण कर, हम सब भयें सनाथ" ।। 2573 ख

'सेवक' ने सुन यह जिज्ञासा, प्रभु चरणों में बहु विश्वासा ।
निज भाव कथन किया इस रीत, और जो थी प्रभु चरणि प्रीत ।
जन पर करें प्रभु दया अपार, जिस विध जन का होय उद्धार ।
यह जन अधम से अधम था नीच, लथपथ था यह माया कीच ।
विषयों से इसकी बहु प्रीत, प्रभु सम्भाल लिया पर मीत ।
प्रभु की दया का दिव प्रमाण, इससे बड़ा न मिले जहान ।
पाप कूप से मुझे उबारा, निज चरणों का दिया सहारा ।
संकट प्रभु सभी हैं टारे, पाप व ताप समूल निवारे ।

दो0 – कर्म मेरे बहु घोर थे, पाप पुञ्ज मैं जीव ।
रक्षा कीनी नाथ ने, प्रभु की दया अजीब ॥ 2574 क
यम नियमों से दूर था, धर्म कर्म से हीन ।
नाथ लगाया चरणि निज, मुझ सा दास मलीन ॥ 2574 ख
दास दास था काम का, काम बसत मन मोर ।
दीनी फिर भी नाथ जी, निज चरणों में ठोर ॥ 2574 ग
तन मन से था मैं बिका, सदा काम के हाथ ।
लाया फिर भी नाथ जी, निज चरणों के साथ ॥ 2574 घ
काम करत अधिकार था, मेरे मन पै पूर्ण ।
आ कीना तब नाथ जी, गर्व काम का चूर्ण ॥ 2574ङ

प्रभु की महिमा किमि कथ पाऊँ, शब्द नहीं जो मुख पै लाऊँ ।
दोषी को भी चरणि लगाय, दर्शन दिव्य को दे वे पाय ।

शब्दों में मैं किमी बखानूँ, मन मन में ही मैं सकुचानूँ ।
अनुभव बात न मुख पै आवे, लेखनी भी न लिख दिखलावे ।
दिव्य दर्श जो प्रभु जी दीना, उसे धार मैं मन में लीना ।
बना वही मम संबल मीत, नित्य बढ़े प्रभु चरणि प्रीत ।
प्रभु का दिव्य दर्श सुखदायी, शान्ति परम मैं इससे पायी ।
प्रभु के दिव्य दर्श से मीत, नित्य निरन्तर मेरी प्रीत ।
गुरु मन्त्र भी दिव्य मैं पाया, गगन ध्वनि से प्रभु सुनाया ।
नाम बसा मम अन्तर ऐसे, घान के अन्तर विद्युत जैसे ।

दो0 – दिव्य मन्त्र के जाप में, और प्रभु के ध्यान ।
जीवन यापन मैं करूँ, करूँ प्रभु गुण गान ।। 2575

प्रभु का ध्यान परम सुखदायी, प्रभु का नाम ही परम सहायी ।
प्रभु का ध्यान विघ्न को नाशे, प्रभु का नाम ज्ञान प्रकाशे ।
प्रभु का ध्यान हि मंगलकारी, प्रभु का नाम पाप संहारी ।
प्रभु का ध्यान हरे सन्ताप, प्रभु का नाम विनाशे पाप ।
प्रभु का ध्यान सुभाग्यविधायी, प्रभु का नाम योग प्रदाई ।
प्रभु का ध्यान मोक्ष ले जायी, प्रभु का नाम सर्वत्र सहायी ।
प्रभु के ध्यान से मिले समाधि, प्रभु का नाम हरत है व्याधि ।
प्रभु का ध्यान अमृत की खान, प्रभु का नाम चिन्तामणि जान ।

दो0 – प्रभु के दिव्य ध्यान का, प्रभु से पाया दान ।
कृत्य कृत्य मैं तभी भया, मिला अनुपम ज्ञान ।। 2876

प्रभु राम समान न को दयाल, दीन जनों को करें निहाल ।
निमानों के वे मान स्वामी, परम कृपामय अन्तर्यामी ।
जिस का न को और सहायक, प्रभु बनें उसके प्रतिपालक ।
जो संकोची भक्त सुजान, मन ही मन सहे दुःख महान ।
कथन करे नहीं निज फरयाद, संकोच की त्यागे न मर्याद ।
ऐसे भक्त के मन की जान, राम सहायक बनते आन ।
दूर करें उसका सन्ताप, उसका भार गहें प्रभु आप ।
यह मैं अनुभव की कथ पाई, मेरे बने प्रभु जिमि सहाई ।

दो0–इस संकोची जीव को, शरण कीन प्रदान ।
दर्शन दीने स्वप्न में , स्वयं प्रभु जी आन ।। 2577 क
स्वपने की सुन बात यह, बोला भक्त सुजान ।
"प्रश्न करूँ इक नाथ से, स्पष्ट करो भगवान ।। 2577 ख
आप क्या थे जानते, प्रभु जी को उस काल ।
अथवा पहली बार ही, दीने दर्श दयाल" ।। 2577 ग

उसकी सुनकर यह जिज्ञास, कहा सुनो तुम लीला खास ।
जीव अज्ञ न प्रभु को जाने, प्रभु सर्वज्ञ सकल पहचाने ।
मैं तो था बालक नादान, दर दर भटकनहार अनजान ।
मूढ़मती वा था अभिमानी, मानत निज को बहुत ज्ञानी ।
किसी को मैं न शीश झुकाऊँ, बात बात पर संशय लाऊँ ।
तभी मूढ़ पर करके दाया, प्रभु स्वप्न में आ समझाया ।

"यदि चाहो तुम निज कल्याण, सद्गुरु मुलख के जाओ स्थान" ।
पाया जब प्रभु का आदेश, रहा न मन में भरम का लेश ।
प्रभु दर्शन वा प्रभु की वाणी, मधुर बहुत व तेज नूरानी ।

दो0–प्रथम बार उस रूप का, था भाया साक्षात ।
लगन लगी थी चित्त में, जभी जगा मैं प्रात ।।2578 क
मुलखराज प्रसिद्ध थे, जगती में तो खास ।
दास गया तब शरण में, मन में ले हुल्लास ।।2578 ख
गुरु दीक्षा जब से गही, मुलखराज जा पास ।
भ्रान्ति सकल जाती रही, उपजा मन विश्वास ।।2578 ग
उपजा मन विश्वास जब, बदला मन का रूप ।
जीवन का पथ मिल गया, योग धर्म अनुरूप ।।2578 घ

6. श्री सद्गुरु स्वामी मुलखराज के विषय में भक्तों के जिज्ञासापूर्ण प्रश्न और उनके उत्तर–सेवक द्वारा

प्रभु जी की मुझ पर अति दाया, पूर्ण सद्गुरु जिन्हीं मिलाया ।
भक्तन सुनी जभी यह वाणी, कहन लगे "हे सद्गुरु मानी ।
मुलखराज सद्गुरु जो स्वामी, विश्ववन्द्य जो हैं शुभनामी ।
उनकी महिमा हमें बतावें, सुनकर धन्य जिमी हो पावें ।
हमने श्रवण किया महाराज, उनसा मिले न योगी आज ।
शक्ति कौन थी उनमें गूप, साधन कीने कौन अनूप ।
कलिकाल माहीं योग कमाना, कठिन कर्म है सबन बखाना ।

योग साधन में क्यों वे लागे, मार्ग सुगम उन्होंने त्यागे ।

दो0 – सब मार्गन को छोड़कर, अपनाया इक योग ।
इसका कुछ कारण यदि, श्रवण करें हम लोग" ।। 2579

सुनकर उनका तर्क विशेष, कही सेवक ने बात विशेष ।
लक्ष्य अनुरूप साधन भाई, इसमें होत न संशय राई ।
बालपने मुलख चित्त आई, मैं पाऊँ ईश्वर को भाई ।
सुनकर एक भक्त कह पाया, "मुलख लक्ष्य तो उच्च बनाया ।
बालपने में सुध यह पाई, पूर्व जन्म की उच्च कमाई ।
बालपने में ईश्वर प्रेम, कोटिश में को पाले नेम" ।
कहा सेवक सच कीन बखान, मुलखराज था बाल महान ।
निज चाची के निधन को देख, माता से उस कीन उल्लेख ।
"रोते क्यों हैं सारे लोग, सबको उपजा क्या है सोग ।

दो0 – घटन कौन सी है भई, रोते जो सब लोग" ।
"चाची तेरी मर गई", कहा मात "यह सोग" ।। 2580 क
"मौत किधर है ले गई", पूछा मुलख सुजान ।
"ईश्वर उसको ले गया, हे बालक नादान ।। 2580 ख
"माँ ईश्वर रहता कहाँ, मुझे बताओ आज ।
मैं जाऊँगा मिलन को", कहा मुलख जी राज ।। 2580 ग

सुनी मात जब बालक वाणी, तुतली तुतली रस से सानी ।
सोचन लागी क्या बतलाऊँ, क्या उत्तर इसको दे पाऊँ ।

बोली "ईश्वर को वह पावे, साधन योग जो कर दिखावे" ।
"साधन योग होता क्या मात", "यह तो योगी जानें तात" ।
तब यह बात मुलख मन लागी, योगी खोजन की धुन जागी ।
योगी को मैं ढूँढन जाऊँ, इमि ईश्वर को मिल के आऊँ ।
मैं माता की बात को मान, योगी का जा खोजूँ स्थान ।
भक्तो पूछी तुम जो बात, मैं बतला दी तुम को तात ।

दो0 – जोत मुलख के मन जगी, ईश्वर दर्शन हेत ।
मुलख दिवाना बन गया, बिसरी जग की चेत ।। 2581 क
जग की चेत विसार वह, फिरे जगत में मीत ।
योगी सद्गुरु पाय कर, गहूं योग की रीत ।। 2581 ख
ईश्वर से मैं जा मिलूँ, कर के साधन योग ।
ईश्वर न बिन योग मिले, कथन करत हैं लोग ।। 2581 ग

भक्तन ने तब बात उच्चारी, "नाथ कथा यह रोचक भारी ।
हमें बतावें करके दाया, मुलखराज कब योगी पाया" ।
सुनकर भक्तन की जिज्ञास, 'सेवक' ने कहा, दृढ़ विश्वास ।
जिसके चित्त में होवे मीत, और निरन्तर बढ़े जो प्रीत ।
उसे न व्यापे कभी निराश, पूर्ण करें प्रभु उसकी आश ।
आयु अल्प पर बुद्ध महान, मुलख ने खोजे सकल स्थान ।
दूर दूर वह घूम के आया, योगी कहीं न उसने पाया ।
अन्धकार ऐसा जग छाया, सब सन्तों ने योग भुलाया ।

दो0 – कहीं मुलख की आस जब, हुई न पूरी मीत ।
रामलाल भगवान के, उपजी मन में प्रीत ।। 2582 क
मुलख प्रेरा पास निज, कीना शक्ति पात ।
दिव्य समाधि के सहित, मिले गुरु साक्षात ।। 2582 ख
योग प्रभु से मिल गया, और मिले प्रभु आप ।
योग व ईश्वर मिल गये, दूर भया सन्ताप ।। 2582 ग

भक्त एक तब पूछी बात, "मुलख को ईश मिले साक्षात ।
उनमें सुनी है शक्ति महान, मिले थे गुरु से बहु वरदान ।
वर कौन थे मुलख ने पाये, प्रभु किरपा से जो मिल पाये" ।
सुनकर उसकी यह जिज्ञास, बात कही 'सेवक' ने खास ।
वर बहुत थे मुलख ने लीने, प्रभु बिन मांगे सब थे दीने ।
इक ही वर में सब कुछ आया, मुलख प्रभु निज रूप बनाया ।
प्रभु में मुलख में रहा न भेद, मुलख त्यागा जग का खेद ।
मुलख का रूप प्रभु का रूप, वास करे वहां शक्ति अनूप ।

दो0 – रूप मुलख का जान लो, प्रभु का दूसर रूप ।
मुलख बसें जब चित्त में, सिद्धि मिले अनूप ।। 2583

इससे बड़ा क्या हो वरदान, मुलख को कीना जो प्रदान ।
इच्छा मुलख के मन न कोई, प्रभु इच्छा पर रहता सोई ।
मुलख मांगा इक ही वरदान, प्रभो मिले तव चरण का दान ।
यह वरदान प्रभु से पाया, मन मुलख प्रभु चरणि समाया ।

प्रभु के चरण चिन्तामणि जान, प्रभु के चरण कल्पवृक्ष मान ।
प्रभु के चरण पै हो विश्वास, प्रभु के चरण पुजावें आस ।
प्रभु के चरण कल्पवृक्ष भाई, जिस सेवे उस सिद्धि पायी ।
मुलखराज मन वही समाये, यह वरदान उस प्रभु से पाये ।

दो0 – प्रभु से पा वरदान यह, मुलख भया सिद्धेश ।
चरण प्रभु के उस भजे, सिद्धि पाई विशेष ।। 2584 क
सिद्धि पायी विशेष उस, भज प्रभु के चरण ।
सब सिद्धिन की मूल है, जानो सद्गुरु शरण ।। 2584 ख

सद्गुरु शरण सिद्धिन की मूल, योग मार्ग का यही असूल ।
मुलखराज प्रभु शरणि लागा, दृढ़ता सहित योग में पागा ।
मुलख किया जग का कल्याण, पा कर प्रभु से शक्ति महान ।
मुझ समान तराये अनेक, प्रभु भजन में लाये अनेक ।
'सेवक' को जब मिला सहारा, उमड़ पड़ा सुख जलधि अपारा ।
जीवन का पल इक इक मेरा, सुख का उस में भया बसेरा ।
ऐसी शक्ति सद्गुरु माहिं, जीव तराये बहुत गोसाईं ।
ऐसी बुद्धि कहां मुझ पाहिं, वर्णन सकल करे जो साईं ।

दो0 – अल्प है बुद्धि जीव की, गुरु गुण का भण्डार ।
कथ कथ कर ही वह थके, पा वह सके ना पार ।। 2585 क
गुरु मन सागर जानिये, निधियों का भण्डार ।
मज्जन उसमें जो करे, संपत पाये अपार ।। 2585 ख

सागर की तो थाह मिले, मानस गुरु अथाह ।
[1]मज्जन उस में जो करे, उबरे बहुर न वाह ।। 2585 ग

मुलखराज जी सद्‌गुरु, सिद्धियों के भण्डार ।
भये राम में राम सम, विरला समझे सार ।। 2585 घ

सिद्ध पुरुष थे मुलख जी, परम संत व दयाल ।
उन की शरण को पाकर, 'सेवक' भया निहाल ।। 2585ङ

बालपने से चाह थी, गुरु पाने की मीत ।
मुलखराज जब मिल गये, मम आह्लादित चीत ।। 2585 च

पूरे सद्‌गुरु जब मिले, विसर गया मम शोक ।
चित्त समर्पित हो गया, उपजा मन आलोक ।। 2585 छ

मुदिता मन में उपजी भारी, शरण मिली जब गुरु की न्यारी ।
तन मन गुरु का ही हो पाया, प्रभु ने मुझ को गले लगाया ।
जीवन मेरा स्वयं संभाला, तन मन चरण सेव में घाला ।
मन्दमती को दीना मान, सद्‌गुरु की यह दया महान ।
दोष मेरे न लाये लेखो, औगुण मेरे ना उन पेखो ।
नेम दया का उन अपनाया, किरपामय स्वभाव जताया ।
यदि देखत वे मेरे दोष, उपजत उन के चित्त में रोष ।
दया नहीं मैं दण्ड ही पाता, मुझ को नरक भी न अपनाता ।

---

[1]अर्थात् – गुरु के हृदय रूपी अथाह मानसरोवर में जो एक बार प्रवेश कर लेता है, वह फिर वहां से निकल नहीं पाता ।

दो0 – ऐसे दोषी जीव को, सद्गुरु दीना मान ।
सद्गुरु कृपा का प्रिय, कैसे करूँ बखान ।। 2586 क
गुरु की दया महान है, किस विध करूँ बखान ।
प्राण धरूँ उस शक्ति से, सद्गुरु हि मम प्राण ।। 2586 ख

काल विपरीत यदि चल आया, गुरु जी दे निज हाथ बचाया ।
मेरे मन अब दृढ़ विश्वास, भाग्य शिष्य का गुरु के पास ।
उनकी किरपा जब हो पाये, सकल सिद्धि तब चल कर आये ।
निश्चल करे जो उनका ध्यान, योगी बने वह पुरुष सुजान ।
ऐसे सद्गुरु मुलख जी राज, जिनके शिष्य अनेकों आज ।
उनका ध्यान करें सब नित्त, करते लीन चरणों में चित्त ।
भक्तजनों ने सुन उपदेश, सेवक से कही बात विशेष ।
"मुलखराज थे परम ज्ञानी, आप सुनी उनकी बहु वाणी ।
आपने उनसे पाया ज्ञान, श्रवण किया बहु कुछ ला ध्यान ।
अथवा जो हो पूछी बात, सुनें आपके मुख से तात ।

दो0 – तव मुख से हम सुन सकें, मुलखराज का ज्ञान ।
योगी के उपदेश से, मिलता ज्ञान महान" ।। 2587

7. जीव के शाश्वत दुःख का कारण और उसका किमि होय निवारण – श्री सद्गुरु मुलखराज का उपदेश

सुनकर उनकी यह जिज्ञास, 'सेवक' बोला सह विश्वास ।
सद्गुरु मुलखराज महाराज, भक्तन मन जो रहे विराज ।

उनकी चरणी शीश झुकाऊँ, सबको उनके वचन सुनाऊँ ।
इक दिन सेवक कीन सवाल, "हे स्वामी ! तुम दीनदयाल ।
कर किरपा जन को अपनाओ, ऋद्धि सिद्धि तुम सब दे पाओ ।
जग में दुःखी जीव बहुतेरे, तीन तापों ने हैं सब घेरे ।
क्या जीव के दुःख का कारण, उसका फिर किमि होय निवारण ।
यह ज्ञान हम आपसे पावें, मन के संशय सकल दुरावें ।

दो0 – ज्ञान आपसे पाय कर, संशय का हो हान ।
दिव ज्ञान के आप घन, सेवक चातक जान" ।। 2588

सुनकर 'सेवक' की यह बात, श्री मुख से कहा गुरु जी "तात ।
जीव के दुःख का कारण जान, लीना उस घर जग को मान ।
प्रभु से आया बिछुड़ के मीत, भूल गयी सब पाछल प्रीत ।
देह से ही उसकी आसक्ति, विषय भोग में ही अनुरक्ति ।
अपना रूप देह को जाने, तन का सुख निज सुख वह माने ।
आत्म रूप इसने विसराया, इस कारण बहु दुःख है पाया ।
जन्म मरण के दुःख बहु भारी, और लगीं अनेक बीमारी ।
इनके वशीभूत हो प्राणी, समझत ना कुछ भी निज हानी ।

दो0 – विषयों का गुलाम बन, बैठ के नश्वर देह ।
भूल गया निज रूप वह, करता जग से नेह ।। 2589 क
सुख वह खोजत जगत में, मृगतृष्णा जिमि नीर ।
भूल गया निज रूप को, क्षण क्षण बाढ़त पीर ।। 2589 ख

निज रूप को भूल वह, देह से करता प्यार ।
इन्द्रिय सुख के कारणे, करता पाप अपार ।। 2589 ग

दुःख की औषध एक है भाई, सकल दुःखों की एक दवाई ।
उसका सेवन कर नर नार, तीन तापों से लागत पार ।
वह औषध है प्रभु का ध्यान, दूर भाये जिससे अज्ञान ।
भानु करे जिमि तम का नाश, ध्यान करत तिमि पाप विनाश ।
ध्यान प्रभु का जब विसरायें, दुःख के गर्त मांझ गिर पायें ।
बहु जन्म दुःख जीव हैं पाये, फिर भी इसको चेत न आये ।
प्रभु जी को यदि ले यह जान, उनका दयालुरूप पहचान ।
उनके चरण कमल ले ध्याय, भव दुःख तब इसका मिटि जाय ।

दो0 – हे जीव तू चेत कर, प्रभु मिले हैं आप ।
बहुर न अवसर यह मिले, दूर करो निज ताप ।। 2590

त्रय तापों का जगत पसारा, जीव दुखी इस में पड़ भारा ।
ताप जगत का इस को जारे, प्रभु किरपा ही इसे उबारे" ।
सुन कर सद्गुरु की शुभ वाणी, 'सेवक' पूछा हे कल्याणी ।
कौन तीन ऐसे वे ताप, जिन से जीव पायें संताप ।
ऐसे कौन घोर वे पापी, जिन है जगती सब संतापी ।
उन के नाम लें हम भी जान, श्रीमुख से पा उनका ज्ञान ।
सुन कर 'सेवक' की यह वाणी, कथन किया मुलख महादानी ।
"तीन ताप लो ऐसे जान, आधिभौतिक प्रथम पहचान ।

दो0 – आधिभौतिक ताप सब, व्यापें जो इस देह ।
इस तन को पीड़ित करें, इस में न संदेह ।। 2591

भौतिक तापों का नहीं अन्त, दुखदायी वे हैं बेअन्त ।
सब जीवों को वे दुखदायी, बचा न उन से को है भाई ।
रोगों का यह जग जंजाल, काल पसारा है यह जाल ।
जीव चराचर सब हैं ग्रस्त, पड़े सभी हैं काल के हस्त ।
भौतिक तन है काल का ग्रास, पल भर इस का नहीं विश्वास ।
काचे घाड़े समान यह भाई, लागे चोट चूर्ण हो जाई ।
योगाग्नी जब इसे पकावे, दृढ़ता इस में तब कुछ आवे ।
भौतिक ताप का तभी इलाज, वैद्य मिले कोई योगीराज ।

दो0 – मिल कर योगिराज को, जन करें जब योग ।
आधिभौतिक ताप से, मुक्त भयें तब लोग" ।। 2592

सद्गुरु का यह सुन उपदेश, 'सेवक' पूछा हे "सर्वेश ।
रोगों से तो योग बचावे, अन्य दुखों में क्या कर पावे ।
जीव जन्तु यदि भयें दुखारी, अथवा दुर्घटना हो भारी ।
वहां योग किस आये काम, यह संदेह निवारो राम" ।
सुन कर सेवक का यह सवाल, मुस्काये प्रभु दीन दयाल ।
फिर बोले मुख से यह बात, "तुम को सब तो ज्ञात है तात ।
योग में हो प्रभु का संयोग, प्रभु मिलें तभी बनता योग ।
प्रभु हों जिसके अंग व संग, किमी दुखी हों उस के अंग ।

दो0 – दुख आये न पास उस, जिस के हों प्रभु पास ।
इसी तथ्य का जान लो, योगिन मन विश्वास" ।। 2593

सुन कर सद्गुरु का उपदेश, संदेह रहा न मम मन लेश ।
दूजा ताप सद्गुरु बताया, आधिदैविक जोय कथ पाया ।
कहा नाथ ने "यह लो जान, इस को मन का ताप पहचान ।
सकल जगत का चित्त परशान, बच पाये जिसे गुरु दें ज्ञान ।
गुरु का ज्ञान ही इक सहारा, मन के ताप का हो निवारा ।
ज्ञान बिना अंधकार महान, भयभीत करत जो सब जहान ।
यह लो तुम संक्षेप से जान, मन के ताप का गुरु से त्राण ।
ताप अध्यात्मिक तीजा भाई, हेतु इसी ही योग कमाई ।
योगी गुरु से योग कमावे, आत्मिक ताप से मुक्ति पावे" ।
सुन कर सद्गुरु की यह वाणी, कहा 'सेवक' "हे जग कल्याणी ।
आत्मा अविकारी कथ पावें, कौन ताप फिर इसे सतावें" ।
सुनकर 'सेवक' की जिज्ञास, कथा नाथ ला मुख पै हास ।

दो0 – कथा नाथ ने दास से, मुख पै ला कर हास ।
"प्रकट बात सब जानते, जिनके मन विश्वास ।। 2594 क
अविकारी जो आत्मा, पड़े चौरासी आय ।
चौरासी से मुक्त हो, ऐसा करें उपाय" ।। 2594 ख

सुनकर सद्गुरु का उपदेश, 'सेवक' मन सन्तोष विशेष ।
कहा 'सेवक' तब कर प्रणाम, "नाथ निवारे भरम तमाम ।

एक बात का करें बखान, चौरासी से किमि मिले त्राण ।
ऐसा कथिये नाथ उपाय, मोक्ष चौरासी से हो जाय ।
आत्मा का जब हो कल्याण, सकल तापों से मिलता त्राण" ।
सुन विनती 'सेवक' की नाथ, कथन करी स्वामी जी गाथ ।

8. मोक्ष कैसे हो ?–श्री प्रभु जी का एक साध को उपदेश, जो श्री सद्गुरु मुख से सेवक ने सुना

एक दिवस प्रभु सुख आसीना, दास ध्यान में चरणि लीना ।
योगी एक कहीं से आया, कर प्रणाम बैठ वह पाया ।
प्रभु से उसने कीन सवाल, मोक्ष मिले किमि दीन दयाल ।
प्रभु जो उसको था कथ पाया, वह कहूँ मैं तुम्हें उपाया ।

दो0–प्रभु दीना जो साध को, ज्ञान बैठ उस काल ।
वही कथूँ संक्षेप से, प्रभु वचनों का सार ।। 2595

कहा प्रभु हे साध सुजान, मोक्ष का मार्ग कठिन महान ।
इस मारग में विघ्न अनेक, भयंकर संकट एक से एक ।
वीर पुरुष ही इस मग आये, अन्य दूर से ही भय खाये ।
इस मग निज स्वरूप पहचान, जूझत है कोई वीर महान ।
जिसने न निज रूप पहचाना, उसने क्या इस मग चल पाना ।
बोध पा निज रूप पहचाने, मुमुक्षु उसको ही जग जाने ।
मुमुक्षु मोक्ष के मग पर चाले, आत्म रूप को संग सम्भाले ।
आत्म रूप ही संबल भाई, इस मारग में परम सहायी ।
आत्म रूप को भूलन हारा, जन भटकत न पाये किनारा ।

दो0 – आत्म रूप को भूल कर, चाहे मुक्ति धाम ।
मूरख उसको जानिए, शास्त्र कथें तमाम ।। 2596 क
रहती देह में आत्मा, सकल करे वह काम ।
मनुआ उसको भूलकर, भटकत काल तमाम ।। 2596 ख
कर श्रवण इस ज्ञान को, कथन किया उस साध ।
भागवन मुझे बताइये, किसका यह अपराध ।। 2596 ग
क्यों कर सत्य ज्ञांन यह, स्मरण रहे न नाथ ।
क्यों न मनुआ चल सके, इसी सत्य के पाथ ।। 2596 घ

साध की सुनकर यह जिज्ञास, प्रभु जी कहा "सुन सह विश्वास ।
आत्मा सत्य सनातन जानो, अजर अमर अविकारी मानो ।
वह तो ज्ञान रूप है मीत, मोक्ष पाये जिसे हो प्रतीत ।
बुद्धि जभी हो उसमें लीन, पाश जगत का होवे क्षीन ।
जग का पाश कठोर महान, जीव बन्धा है उसमें आन ।
इसी बन्धन में बुद्ध भरमाई, अविद्या से है वह घिर पाई ।
अविद्या की ऐसी है नीति, आत्मा की नहीं हो प्रतीति ।
अविद्या का जब तक प्रभाव, रहे लुप्त आत्मा का भाव ।

दो0 – विद्यावान वह जानिए, जिसको आत्म ज्ञान ।
आत्म द्रष्टा जन भये, करके योग ध्यान ।। 2597 क
गुरु से शिक्षा लेय कर, रहे योग में लीन ।
आत्म द्रष्टा जन भये, भये योगी प्रवीण ।। 2597 ख

योग से होवे आत्म ज्ञान, योग से हो जन विद्यावान ।
योग से अन्धकार का नाश, योग से शिथिल मोह का पाश ।
योग से होत अविद्या छिन्न, योग बिना जन का चित्त खिन्न ।
योग से आत्मा का प्रकाश, भ्रांत मति का योग से नाश ।
योग से बुद्धि होती स्थिर, पथ से भटक पाये नहीं फिर ।
मुमुक्षु योग से मुक्ति पाये, अविद्या न उसे ग्रस दिखाये ।
आत्म रूप न विसरत योगी, अविद्या ग्रस्त रहत जन भोगी ।
मुमुक्षु पुरुष जो होवे मीत, योगी गुरु से कर ले प्रीत ।

दो० – कठिन मार्ग जो योग का, सुगम होत वह मीत ।
योगी सद्गुरु पाय कर, करें उसी से प्रीत''।। 2598

सुनी साध ने प्रभु की वाणी, और कहा "हे गुरु महादानी ।
अविद्या का स्वरूप है कैसा, किमि करे वह कर्म अनैसा" ।
सुनकर उसकी यह जिज्ञास, प्रभु जी कहा लाकर मुख हास ।
साध प्यारे मैं बतलाऊँ, अविद्या का स्वभाव जताऊँ ।
अविद्या एक शक्ति है मीत, करावे सत को असत्य प्रतीत ।
और असत जो हो जग माहीं, उसे दिखावे सत की नाईं ।
अविद्या बसे बुद्धि में नाथ, सूत जीवन का है जिस हाथ ।
जिधर चलावे जन की बुद्ध, जग जाने वही मार्ग शुद्ध ।

दो० – ग्रस्त अविद्या बुद्ध जो, उसे न सत का ज्ञान ।
असत मार्ग पर जन चले, आत्मघाती पुमान ।। 2599

आत्मघाती जन वह भाई, असतमार्ग निज मति जिस लाई ।
आत्मघाती मुक्त न होवे, पड़ चौरासी दुख को गोवे ।
असत मार्ग में पाप घनेरा, पापी का हो नरक बसेरा ।
क्यों कर हम फिर पाप कमावें, असत मार्ग पर क्यों चल पावें ।
क्यों न गुरु की शरण ग्राहवें, अविद्या में क्यों भटक दिखावें ।
अविद्या सभी पाप की मूल, ज्ञान से होय पाप निर्मूल ।
ज्ञान गुरु से ही जन पावे, नहीं तो अज्ञानी रह जावे ।
मोक्ष मार्ग की सरल यह रीत, गुरुमुख ज्ञान से राखें प्रीत ।

दो0 – गुरुमुख से जो ज्ञान हो, ज्ञान न उस सम और ।
जिसे मिला हो ज्ञान वह, बसता सुख की ठौर ।। 2600 क
बसता सुख की ठौर वह, पा कर गुरु से ज्ञान ।
वास करे गुरु चरण मन, निश्चय से यह मान ।। 2600 ख

'सेवक' को श्री मुलख बताया, इस विध प्रभु जी जब समझाया ।
साध ने पूछी फिर यह बात, "मुझे बताइये जगत त्रात ।
अविद्या का किस विध प्रभाव, करता नष्ट जन का स्वभाव" ।
कहा प्रभु हे साध सुजान, जान पायें यह सब विद्वान ।
अविद्या संसृती की मूल, इसी से उपजे सब हैं शूल ।
अहंभाव है इस से जाया, जिस ने आत्म रूप भुलाया ।
काया को जन निजकर जाने, तन को ही अपनापन माने ।
मैं मोटा मैं पतला मीत, करत इसी विध देह से प्रीत ।

आत्मा का तो रूप न भाई, अहंभाव ने वह विसराई ।
अहंभाव सृष्टि का आद, अहंभाव से होय प्रमाद ।
अहंभाव देहों का मूल, आवागमन का यह असूल ।
जैसे बीज से वृक्ष का भाव, देह को रचत तिमि अहंभाव ।

दो0–बीज में जैसे वृक्ष का, सूत में पट का भाव ।
माटी में जिमि घट बसे, तन रचे अहं भाव[1] ।। 2601

काष्ठ में जैसे पुतली वासा, अहंभाव में सृष्टि निवासा ।
सृष्टि का यह बीज लो जान, मुमुक्षु का 'अहं' शत्रु मान ।
'अहं' का तन से नाता तोड़, 'अहं' को 'सो'[2] के संग लो जोड़ ।
मुमुक्षु देह को 'अहं' न माने, आत्मा को ही 'अहं' पहचाने ।
करे निरन्तर "सोऽहं" जाप, मोक्ष मिले सद्‌गुरु प्रताप ।
मुमुक्षु जन की जानिये रीत, रहता न अहंकार में चीत ।
गुरु चरणों में उसकी प्रीति, आत्मभाव ही उत्तम नीती ।
जो जन नीति यह नहीं जाने, राग द्वेष रहें उलझाने ।
अहंभाव और राग–द्वेष, मोक्ष मार्ग में विघ्न विशेष ।
गुरु योगी दें इनको टार, सद्‌गुरु की यही दया अपार ।

दो0–योगी सद्‌गुरु जब मिले, होय अविद्या नाश ।
मोक्ष मार्ग पर जन चले, धारे दृढ़ विश्वास ।। 2602 क

1 भावार्थ –अहंकार से नूतन शरीर की रचना उसी प्रकार स्वाभाविक रूप से होती है जैसे बीज से वृक्ष की, सूत से वस्त्र की और मिट्टी से घड़े की ।

2 सो – आत्मतत्व, "सोऽहं" अजपा मन्त्र इसी भाव को प्रकटाता है । जिसका शब्दार्थ है "मैं आत्मा हूँ"।

धारे दृढ़ विश्वास को, चरणी जाय लाग ।
विघ्न दूर हों जीव के, अहं, द्वेष व राग ।। 2602 ख

सुनकर प्रभु जी का उपदेश, साध कहा हे गुरु योगेश ।
आप कथा जो ज्ञान महान, मुमुक्षु जनों का हो कल्याण ।
योगी सद्गुरु जब मिल पाये, मोक्ष मार्ग पर जन चल पाये ।
अविद्या व अहंकार हे नाथ, लगे हैं जीव के शत्रु साथ ।
राग द्वेष हैं कथे विशेष, और भी क्या कुछ विघ्न विशेष ।
आप हमें वे भी बतलायें, सतर्क जिमि उनसे रह पायें ।
उन विघ्नों का देवें ज्ञान, गुरु किरपा से होवे त्राण ।
कहा प्रभु हे साध प्यारे, रचे अविद्या विघ्न न्यारे ।
जीव जगत में न को जाया, उन विघ्नों से बच जो पाया ।

दो0 – विघ्न अनेकों हैं रचे, अविद्या ने मम मीत ।
दुस्तर उनमें इक कथा, तन से जो है प्रीत ।। 2603 क
तन से जन की प्रीत जो, उसका कठिन त्याग ।
'अभिनिवेश' उसको कथा, मुनिजनन महाभाग ।। 2603 ख
मृत्यु से जन सभी डरें, मूरख व विद्वान ।
'अभिनिवेश' उसको कहें, विसरे आत्म ज्ञान ।। 2603 ग
जड़ चेतन के मध्य में, डोले मन अनजान ।
जब तक सद्गुरु न मिले, रहे बुद्ध परिशान ।। 2603 घ

'अभिनिवेश' जो विघ्न बताया, इस का साया सब जग छाया ।

इस के रहते मोक्ष न होवे, किमी मुमुक्षु मोक्ष को गोवे ।
सुन कर साध तब भया निराश, कहन लगा प्रभो टूटी आश ।
अभिनिवेश से किमि बच पायें, विधी सुगम कुछ हमें बतायें ।
बहुत बिताया काल व्यर्थ, लगा न जीवन मोक्ष के अर्थ ।
नहीं जानूँ अब कितने श्वास, रहे हैं बाकी मम अरदास ।
स्वामी कहें कुछ सरल उपाय, जन का जीवन मोक्ष को पाय ।
मुझे लगी है मोक्ष की आस, बीत रहे पर व्यर्थ श्वास ।

दो0–जीवन के पल जा रहे, लगें नहीं ये अर्थ ।
शरण गही अब आप की, हो तुम सर्व समर्थ ।। 2604क
मोक्ष मार्ग बहु कठिन है, हठ मेरा भी एक ।
जन्म मरण से मैं बचूँ, लेय योग की टेक ।। 2604ख
योग बिना ना दूसरा, मारग जानूँ कोय ।
आप बिना ना दूसरा, योगी जानूँ कोय ।। 2604ग

देख प्रभु उस का विश्वास, कथन किया सुन कर अरदास ।
जब तक जग की राखे आस, और न राखे प्रभु पै आस ।
होय न बन्धन से जन मुक्त, जन्म मरण से रहे वह युक्त ।
जन्म का हेतु जग की आस, मोक्ष का कारण दृढ़ विश्वास ।
दृढ़ विश्वास जब दृढ़तर होय, और वह दृढ़तमता को गोय ।
अन्त समय तक रह इक निष्ठ, मोक्ष में जन फिर हो प्रतिष्ठ ।
साध कहा तब कहें उपाये, ऐसी निष्ठा जिमि हो पाये ।
मन चंचल मम बुद्ध अस्थिर, दृढ़तम मन मम होय किमि थिर ।

दो० – चंचल मन मम नाथ जी, और बुद्ध अस्थिर ।
दुखिया जीवन इन किया, मोक्ष किमि होय फिर ।। 2605क
ऐसी विधि बतलाइये, हो पायें ये शांत ।
जीवन सुख से बीत ले, और मोक्ष हो अन्त ।। 2605ख

कहा प्रभु हे साध प्यारे, किये प्रश्न तुम सुन्दर सारे ।
स्पष्ट बात इक मैं कहं पाऊँ, तुम से लेश न भेद दुराऊँ ।
यत्न जीव के आयें न कार, यदि मिलें नहीं सद्गुरु दयाल ।
सद्गुरु मोक्ष का कारण जान, पूरण ज्ञान प्रदाता मान ।
मार्तण्ड जिमि तेज स्वरूप, सागर जल का पूरण रूप ।
व्यापक जिमि आकाश महान , तिस विध गुरु में पूरित ज्ञान ।
प्रचण्ड वेग जिमि वायु जान, गुरु शक्ति तिमि स्वयं प्रमाण ।
गुरु की उपमा गुरु ही जान, गुरु के तुल्य न किसी को मान ।

दो० – गुरु समान दाता नहीं, तीन लोक के मांझ ।
स्मरण करो गुरु रूप को, नित्य प्रातः सांझ ।। 2606क
केवल प्रातः सांझ क्यों, हर दम गुरु को ध्याय ।
ऐसा साधक जगत में, बहुर न मुड़कर आय ।। 2606ख

गुरु की मूरत चित्त में धार, गुरु पग को मन में सत्कार ।
गुरु के वचन गहो मन ऐसे, वेद वाक्य से बढ़ कर जैसे ।
जान मोक्ष की उत्तम रीत, गुरु चरणों से कर लो प्रीत ।
दो ये मारग जान लो मीत, जग से प्रीत व गुरु से प्रीत ।

प्रीत जगत की जन्म दिलावे, गुरु की प्रीती मुक्त करावे ।
बहु जन्म इस जीव गंवाये, जग से प्रीत करत खो पाये ।
एक जन्म गुरु हेत लगाना, यही मुक्ति का मग है जाना ।
गुरु की किरपा जब हो पाये, लक्ष्य मोक्ष का सन्मुख आये ।

दो0 – गुरु किरपा को पाय कर, मुमुक्षु भक्त सुजान ।
इसी जन्म के बीच ही, कर ले निज़ कल्याण ।। 2607

गुरु किरपा से शक्ति पावे, मृत्यु का भय नहीं डरावे ।
निशंक रहे जन पूरण सोय, सर्वज्ञ गुरु जब सर पर होय ।
सुन कर साध प्रभु की वाणी, कहन लगा हे महागुरु दानी ।
ज्ञान आप से जो सुन पाया, परमार्थ का राह है पाया ।
गुरु किरपा से मैं अब मानूँ, मारग मोक्ष सुलभ कर जानूँ ।
शरण पड़े का धार के भार, गुरु लगावे सहज ही पार ।
बिन नौका किमि सागर तरिये, गुरु बिन किमि भव नीर उतरिये ।
गुरुदेव! अब रहस है पाया, है आप की परम यह दाया ।

दो0 – दया आप की है भाई, मिला मोक्ष का मार्ग ।
साधन एक अनेक फल, सर्वोत्तम यह मार्ग ।। 2608

9. श्री सद्‌गुरु सेवा का महत्व – श्री प्रभु जी का उपदेश

हे गुरु देव अब यह बतलावें, गुरु सेवा की विधि समझावें ।
गुरु की महिमा करें बखान, अघाते सुन न हमारे कान ।

किस विध गुरु सेवा कर पावें, सद्गुरु की प्रसन्नता पावें ।
गुरु दाता गुरु परम दयाल, गुरु रक्षक जन के सब काल ।
यह विश्वास हमारे मन नाथ, शिष्य का भाग्य गुरु के हाथ ।
गुरु ब्रह्मा गुरु भाग्य विधाता, गुरु विष्णु गुरु सँपत्त दाता ।
शिवरूप हैं सद्गुरु स्वामी, परब्रह्म गुरु अन्तर्यामी ।
हमें बतावें वह विधि देव, कृतार्थ भयें गुरु की कर सेव ।
गुरु प्रसन्न भयें जिस रीत, और करें शिष्य से वे प्रीत ।

दो० – ऐसी विधि बतलाइये, करके गुरु की सेव ।
धन्य भये शिष्य का जन्म, मुदित भयें गुरुदेव ।। 2609

श्रवण करी जब उस की बात, कहन लगे प्रभु "ठीक है तात ।
जो भी तुम ने वचन उच्चारे, हमरे लागे मन को प्यारे ।
दया गुरु की शिष्य पर जैसी, वर्णन में आ सके न तैसी ।
शिष्य हो यदि लोहे समान, गुरु को पारस सम तुम जान ।
रहे सदा यदि गुरु के पास, स्वर्ण बने वह उन का दास ।
मलयगिरि श्री सद्गुरु सोय, शिष्य पलाश भी चन्दन होय ।
सद्गुरु भृंगी सम कर जानो, लघु कीट सम शिष्य को मानो ।
कीट भृंगी होय दिखलावे, शिष्य गुरु का रूप हो जावे ।

दो० – क्षुद्र शिष्य भी हो सके, इक दिन गुरु का रूप ।
इससे ले पहचान जन, सद्गुरु दया अनूप ।। 2610क
और बात यह जान लो, गुरु दीप सम होय ।
बुझा दीप शिष्य आय जो, प्रदीप्त गुरु से सोय ।। 2610ख

गुरु से ज्योति पाय कर, होत गुरु का रूप ।
मिल पायें गुरु भाग्य से, जिन पर दया अनूप ।। 2610ग

गुरु भाग्य से जभी मिल पाये, गुरु पग जन दृढ़ता से ग्राहे ।
डगमग डगमग छोड़ के मीत, गुरु पग से जन कर ले प्रीत ।
गुरु पग जिसको लागें प्यारे, सद्गुरु उसके संकट टारे ।
जो जन गुरु के मग पर चाले, निज जीवन को उस मग घाले ।
उसके सद्गुरु हों रखवार, होय न उसकी जग में हार ।
मन को वश जो करना चाहे, गुरु के चरण हृदय से ग्राहे ।
इस जैसा नहीं और ध्यान, निश्चय से जन ले यह मान ।
सद्गुरु जान विराट स्वरूप, जगती में इक रूप अनूप ।
जिसमें सभी देवों का वास, दिव्य लोकों का भी आभास ।

दो0–विराट रूप गुरुदेव हैं, परम दिव्य स्वरूप ।
बसें जहां सब देव गण, सभी तीर्थ भी गूप ।। 2611क
गुरु मूर्ति के ध्यान से, सकल देव सन्तुष्ट ।
गुरु मूर्ति के ध्यान से, देव मानें यदि रुष्ट ।। 2611ख

मानें देव जब गुरु को ध्यावें, ग्रह नक्षत्र शुभ होय जावें ।
भाग्य बने जब गुरु को ध्यावें, कर्मों के सब दोष नसावें ।
निर्मल मन जो गुरु को ध्यावे, सद्बुद्धि को जन पा जावे ।
सुख मिले जभी गुरु को ध्यावे, दुःख संकट से ध्यान तरावे ।

बिगड़े काम बनें उस नर के, बसे गुरु मन में जभी जन के ।
स्वर्ग क्या मुक्ति मिल जावे, जभी गुरु जन के चित्त आवे ।
उसे रहे नहीं कुछ भी तोट, चित्त गहे जब गुरु की ओट ।
तन मन के सब पाप नसावें, सद्गुरु चरणि जो चित्त लावें ।

दो० – गुरु चरणों को जो भजे, विसर जगत जंजाल ।
उस जन की तो स्वयं ही, करते गुरु सम्भाल ।। 2612

गुरु रक्षा हैं जन की करते, गुरु संकट हैं जन के हरते ।
भुक्ति मुक्ति के गुरु प्रदाता, ध्यान समाधी के वे दाता ।
उनकी शरण में रहकर मीत, और उन्हीं में लाकर चीत ।
कौन सी गति जन न पा जाये, सिद्धी कौन जो चल न आये ।
कौन लोक जो दृष्टि न आयें, कौन देव न दर्श दे पायें ।
कौन ऋषि नहीं आशिष देवें, कौन पितर जो तृप्त न होवें ।
कौन ग्रह जो हों विपरीत, गुरु रहें जभी जन के चीत ।
जड़ चेतन करें उससे प्रीत, गुरु बसें जिस पुरुष के चीत ।

दो० – जिस जन के मन गुरु बसें, उसका किया बखान ।
उसकी उपमा क्या करें, उसका भाग्य महान ।। 2613क
जिस जन के मन में बसे, गुरु का मोहक रूप ।
उस जन की उपमा नहीं, वह तो ईश स्वरूप ।। 2613ख

गुरु को जानो मेरे भाई, सकल काल गुरु होंय सहायी ।
स्मरण करो तुम गुरु को मीत, गुरु चरणों में रख के प्रीत ।

नहीं संगी जिसका जग माहीं, संग रहें गुरु उसके ताहीं ।
क्षण क्षण उसकी करें सहाय, गुरु भक्त नहीं होय निःसहाय ।
अभागे का गुरु भाग्य लो जान, गुणहीनों का गुण पहचान ।
गरीब जनों के गाहक भाई, दीन प्रति वे दानि सहायी ।
अकुलीनन के कुल हैं मीत, ऐसी उनकी जन से प्रीत ।
पंगुल के वे हाथ व पांव, सहाय बनें उसके हर ठांव ।
भूखो के वे माई व बाप, आधार निराधार के आप ।
भव सागर के सेतू भाई, सर्व सुखों के हेतु सहाई ।

दो० – सब सुख जन को मिलत हैं, सिमर गुरु के चरण ।
यही सेव गुरुदेव की, प्रतिपल करें स्मरण ।। 2614

स्मरण करें प्रतिपल गुरुसन्त, प्रसन्न भयें जन पर भगवन्त ।
हिरदय के वे मीत प्यारे, भक्तन के प्रतिक्षण रखवारे ।
ध्यान धरे जो गुरु का मीत, धार केवल गुरु चरणि प्रीत ।
वह सेवक सद्गुरु का मानो, गुरु आज्ञा में रत वह जानो ।
कृपा पात्र वह गुरु का होय, निष्फल जीवन नहीं वह खोय ।
ऐसा जन जग में न जाया, बिन गुरु कृपा मोक्ष जिस पाया ।
गुरु किरपा से आतम ज्ञान, गुरु कृपा से प्रकटे भगवान ।
जिस जिस गुरु की किरपा पाई, मुक्ति उस जन हाथ है आई ।

दो० – मुक्ति का तुम जान लो, उत्तम यही उपाय ।
योगी गुरु की सेव से, जन सिद्धी को पाय ।। 2615

एक बात मैं यह भी जानूँ, अधिक गुरु से नहीं कुछ मानूँ ।
गुरु से अधिक न तप प्रभुताई, गुरु से ज्ञान की न अधिकाई ।
गुरु से जप तप तीरथ मीत, अधिक नहीं कर मन प्रतीत ।
गुरु मूर्त है ध्यान का मूल, गुरु पग पूजा का है मूल ।
मन्त्र मूल गुरु वाक्य ले जान, गुरु कृपा से मोक्ष पहचान ।
ज्ञान विज्ञान व मुक्ति लाभ, गुरु भक्ति से सभी सुलाभ ।
गुरु भक्त को यही आदेश, गुरु सिमरे वह चितहिं हमेश ।
देव गन्धर्व पितर भी होंय, बिन गुरु भक्ति मुक्ति न गोंय ।
ऋषि मुनि और सिद्ध भी सारे, गुरु भक्ति से लगें किनारे ।

दो0 – बिन गुरु भक्ति नहीं मिले, मुक्ति का फल मीत ।
मम मन यह विश्वास है, यह सनातन रीत ।। 2616

सनातन रीती को लो मान, योग करो गुरु पग सन्मान ।
गुरु बिन योग का हो न ज्ञान, गुरु बिन लगे न जन का ध्यान ।
गुरु बिन पूजा होय न पाठ, गुरु बिन निष्फल धर्म का ठाठ ।
गुरु बिन तीरथ व्रत उंपवास, निष्फल होंय न पूजे आस ।
गुरु बिन धर्म कर्म जो भाई, हाथ लगे न सफलता राई ।
गुरु बिन मानव देह का सार, न प्राप्त करें न लागें पार ।
गुरु बिन यत्न जो करें अनेक, होय न उन में सफल भी एक ।
गुरु बिन जीवन लागे भार, पग पग लागे पग में ख़ार[1] ।

दो0 – गुरु बिन जीवन जानिये, चिन्ता का आगार ।
जन्म जन्म के दुष्कर्म, जन को करें ख़वार ।। 2617क

[1] ख़ार – कांटा। भावार्थ– गुरु के बिना जीवन पथ पर मनुष्य को प्रत्येक कदम पर पाओं में कांटे लगने का डर है।

जन्म जन्म के कर्म को, गुरु करें निर्मूल ।
गुरु चरणी जब जन लगे, सभी दूर हों शूल ।। 2617ख
शूली का कर शूल जो, करे शूल निर्मूल ।
ऐसे गुरु के चरण की, लावूँ मस्तक धूल ।। 2617ग

हरि तजूँ गुरु को नहीं छोड़ूँ, सद्‌गुरु से मैं मुख ना मोड़ूँ ।
यह विश्वास रहे मन माहीं, सद्‌गुरु तज कहीं सुख न पाहीं ।
निज मन को मैं यही बताऊँ, सद्‌गुरु तज कहीं सुख न पाऊँ ।
निज बुद्धि को यही समझाऊँ, सद्‌गुरु तज के ज्ञान न पाऊँ ।
अहंकार वा चितहिं जनाऊँ, सद्‌गुरु चरणी ही मिट जाऊँ ।
गुरु के चरणी शीश निवाऊँ, गुरु की गाथा मुख पै लाऊँ ।
समेट जगत की सकल प्रीत, प्रीत करे गुरुचरणी चीत ।
नाते नेह जगत के भारे, सबसे बढ़ गुरु लागें प्यारे ।

दो0–सकल जगत के नात जो, और जगत का प्यार ।
कर संग्रह, गुरु चरण में, डालूँ सब इक बार ।। 2618क
विनय यही गुरु चरण में, करता हरदम मीत ।
अन्य आश विश्वास से, रहे शून्य मम चीत ।। 2618ख
सम्पती सुगती सुमती, चाहिए न मो लेश ।
केवल गुरु के चरण में, प्रीति बढ़े निःशेष ।। 2618ग
मेरी प्रीति नित बढ़े, गुरु चरणों के माँझ ।
यही विनय हरदम करूँ, प्रातः से ले साँझ ।। 2618घ

गुरु चरणों से जिसका प्यार, वही लागे भव सागर पार ।
यह तो है सिद्धान्त अपेल, अन्य कर्म सब जानों खोल ।
सब शास्त्रन की एक आवाज़, मोक्ष प्रदाता गुरु महाराज ।
किसी भी जन जब मुक्ति पाई, गुरु के पग लग कीन कमाई ।
अन्य बात सब भ्रान्ती मूल, मुक्ति का यही एक असूल ।
योग साधन जो गुरु बतायें, श्रद्धा सहित वही कर पायें ।
करें निरन्तर जब अभ्यास, जान गुरु को हर क्षण पास ।
सहायक सद्गुरु होते मीत, विघ्न निवारें ऐसी रीत ।
मुक्ति मार्ग है संकट कीर्ण, प्रतिपल संकट आये नवीन ।
गुरु का होय न जब तक साथ, साफल्य लगे न जन के हाथ ।

दो0–सफल वही जन होत है, जिसे गुरु की टेक ।
विघ्न निवारक सद्गुरु, मुख्य बात यह एक ।। 2619क
लाख करे जन यत्न भी, मन न वश में होय ।
यही विघ्न सबसे बड़ा, मुमुक्षु जाने सोय ।। 2619ख
सद्गुरु के उपकार से, ही मन वश में आय ।
गुरु कृपा ही युक्ती है, उत्तम यही उपाय ।। 2619ग
विषय वास के नीर में, मन मीन रम पाय ।
सद्गुरु दया की डोर ले, निज पग अंकुश लाय ।। 2619घ

प्रेम सुधा रस चार से, यह मन मीन फंसाय ।
करत महद् उपकार गुरु, अन्य कौन कर पाय[1] ।। 2619

मन की चन्चलता कथ पायें, जिस कारण सब जन दुःख पायें ।
ऐसा मन चन्चल है भाई, देखत देखत ही उड़ जाई ।
हम जागें चाहे सोयें मीत, मन भागत यह अद्भुत रीत ।
उड़ जाये यह दूर के देश, बन्धा किसी न सीम में लेश ।
अगम नहीं कोई इसे स्थान, इसकी शक्ति दिव्य महान ।
अन्धकार का नहीं कुछ भय, यह स्वप्रकाशक है निर्भय ।
ज्योतियों का भी ज्योतिषमान, कठिन है पाना इसका ज्ञान ।
सद्गुरु की हो किरपा भाई, तभी सके यह वश में आई ।

दो0–वश में तब ही आ सके, दिव्य रूप यह चित्त ।
सद्गुरु की जब हो दया, दीन शिष्य पर मित्त ।। 2620

कर दूँ मैं कुछ और बखान, मन की शक्ति का जो ज्ञान ।
यज्ञादि सभी कर्म महान, मन की शक्ति से ही जान ।
महान पुरुषों ने निज बढ़ाई, मन की शक्ति से ही पाई ।
सभा मध्य जो पावें मान, उनमें मानसिक बल पहचान ।
शक्तिशाली यह मानस देव, रहता घाट में मिले न भेव ।
ज्ञान खज़ाना इसको जान, चेतना और धृति पहचान ।

[1] भावार्थ –मन रूपी मछली विषयों के जल में सदा विहार करती है। श्री सद्गुरु इस मन रूपी मछली को पकड़ने के लिए अपनी दया की डोरी बनाते हैं। अपने चरणों को (बंसी का) कांटा बनाकर उसके साथ प्रेम रस का चारा चिपका देते हैं, और इस प्रकार मन रूपी मछली को फंसाकर विषय रूपी जल से बाहर निकालते हैं।

ऐसी ज्योति यह घाट माहीं, इसकी उपमा मिले न काहीं ।
बिन मन कर्म न होता भाई, ऐसी मन की है प्रभुताई ।
इस मन को निज करो अधीन, नहीं तो रह पाओ जग दीन ।
गुरु किरपा से आता वश, नहीं तो रहे जन मन के वश ।

दो0 – गुरु किरपा ही वश करे, यक्ष रूप यह चित्त ।
बिन गुरु कृपा होत नहीं, वश यह अन्य निमित्त ।। 2621

अजर अमर वत मन है भाई, ऐसी कथी इस की प्रभुताई ।
तीन काल का इस में ज्ञान, भूत भविष्यत वा वर्तमान ।
जीवन का यह यज्ञ रचाये, सात पुरोहित संग बिठाये ।
गुरु पधारें जभी यज्ञेश, जीवन तभी हो यज्ञ विशेष[1] ।
बिना गुरु नहीं यज्ञ संपूर्ण, गुरु करें इस यज्ञ को पूर्ण ।
मन में जब गुरु दर्श दिखावें, जीवन सफल तभी कर पावें ।
जीवन रथ का चक्का एक, मन है, जाने जन प्रत्येक ।
चित्त का चक्र ऐसा जानो, चारों वेद अरे ही मानो ।
ओत प्रोत विश्व जहां सारा, मन का ऐसा समझ पसारा ।

दो0 – विश्व सकल जिसमें बसे, और चले दिन रात ।
प्रबल चक्र मन वश करन, गुरु में सिर्फ बसात ।। 2622क
हिरदय में मन है स्थिर, बलवत और जवान ।
जीवन रथ को हांकता, जिमी कुशल रथवान ।। 2622ख

---

[1] मन ने सात होताओं वाले जीवन रूपी यज्ञ का विस्तार किया है। सात होता ये हैं – पांच ज्ञानेन्द्रियां, अहंकार तथा बुद्धि । परन्तु यज्ञ के वास्तविक उद्देश्य की पूर्ति सद्गुरु कृपा से ही सम्भव है ।

मन की सारी कुशलता, गुरु योगी अधीन ।
बिन गुरु योगी होत है, मन की शक्ति मलीन ।। 2622ग
मन के दोनों रूप जो, समझे भक्त सुजान ।
अशुद्ध मन हो शुद्ध जब, मुक्ति तभी हो जान ।। 2622घ
गुरु धोबी ऐसा मिले, बिन साबुन ही धोय ।
बिन फटकारे बिन मले, मन करे शुद्ध सोय ।। 2622ङ
गुरु योगी रंगरेज़ सम, रंगे चित्त का पट ।
उतर सके न रंग जोय, चीर चाहे जा फट ।। 2622च
जिस रंग सद्गुरु रंगें, शिष्य का मानस पट ।
वैसा रंग न जग मिले, विलक्षण है गुरु घट ।। 2622छ
गुरु घट की विलक्षणता, समझ पाय शिष्य सो ।
नित्य निरन्तर ही भजे, गुरु के रूप को जो ।। 2622ज

शिष्य भजे नित्य गुरु का रूप, रूप गुरु का दिव्य स्वरूप ।
रूप गुरु का चित्त जब लायें, शोक क्लेश न पुनः सतायें ।
गुरु चरणों में दृढ़ हो प्रीत, विमुख न हो कभी गुरु से चीत ।
देश धन्य प्रदेश वह धन्य, धन्य नगर व डगर वह धन्य ।
धन्य वंश और कुल वह धन्य, धन्य बन्धु और मित्र धन्य ।
माता पिता संबन्धी धन्य, जहां जन्मा गुरु सेवक धन्य ।
जन धन्य गुरु सेवक जोय, देह सफल गुरु दया से होय ।
निज कुल का उस कीन उद्धार, की सेव जिस सद्गुरु द्वार ।

दो0–सद्गुरु द्वारे जाय कर, कीनी जिस गुरु सेव ।
उस सेवा के कारणे, वरद भयें सब देव[1] ।। 2623

ईश्वर सम जो गुरु को जाने, गुरु को ईश्वर ही जो माने ।
गुरु से पावे वह ज़न ज्ञान, मिलता गुरु से योग ध्यान ।
ईश्वर और सद्गुरु में भेद, जो माने सो पावे खेद ।
गुरु शब्द का अर्थ लो जान, 'गु' अक्षर अन्धकार है मान ।
'रु' रोधक अन्धकार का मीत, सद्गुरु ज्ञान प्रकाशक चीत ।
तीन काल अन्धकार निरोध, प्राप्त करे गुरु भक्त यह बोध ।
सद्गुरु चरण कमल का ध्यान, द्वन्द्व व ताप का शत्रु मान ।
भवसागर से करे जो पार, ऐसे सद्गुरु को नमस्कार ।

दो0–भवसागर की नाव यह, गुरु चरणों को जान ।
धन्य जन्म उस जीव का, जिसे मिले यह ज्ञान ।। 2624

गुरु स्वयं है खेवनहार, उनके कर में है पतवार ।
इसी नाव पै हो असवार, लगे अनेकों भक्त हैं पार ।
जो जन भाया नहीं असवार, पड़ा रहा वह इस ही पार[2] ।
अथवा डूब गया मंझधार, भवसागर में नीर अपार ।
भव सागर में ग्राह अनेक, अहंकारी की चले न एक ।
गुरु की शरण ही एक उपाय, जो पाये सो पार हो जाय ।

[1] वरद – वर देने वाले । अर्थात् गुरु सेवक को सभी देवता स्वभावतः ही वरदान देने लगते हैं। क्योंकि श्री सद्गुरु की मूर्ति सर्व देवमय है। सद्गुरु की पूजा से सभी देवता एक साथ पूजित हो जाते हैं।

[2] दूसरा पाठ –पड़ा रहा वह यहीं अवार ।

भव सागर में भंवर अनेक, बचे वही जिसे गुरु की टेक ।
मोह ममता ही नीर अपार, जिसका जाने गुरु ही सार ।
गुरु मर्मज्ञ माया का मीत, राखो सदैव गुरु से प्रीत ।

दो०–गुरु प्रीति जिन मन बसे, और जिन्हें गुरु टेक ।
भव नीर से पार भये, ऐसे भक्त अनेक ।। 2625क
गुरु चरणों में प्रीत नहीं, और न गुरु की टेक ।
भवनीर में डूब रहे, ऐसे जीव अनेक ।। 2625ख
कैसा सरल उपाय है, गुरु बतलाया आप ।
सद्गुरु पग की टेक ले, मिटें सकल सन्ताप ।। 2625ग

सुनकर सद्गुरु की प्रिय वाणी, उत्सुकता सब मन उपजानी ।
सद्गुरु की किमि ग्राहवें टेक, बात पूछी तब भक्त ने एक ।
"दीन दयाल सद्गुरु स्वामी, हम पूछें यह अन्तर्यामी ।
शरणागत जब चरणी आये, भेंटें क्या वह संग में लाये ।
अर्पित कर जो गुरु के चरण, प्राप्त करे वह गुरु की शरण" ।
सुनकर उसकी यह जिज्ञास, प्रभु जी कहा ला मुख पै हास ।
"हे मीत! गुरु शरण जो आवे, मन का पुष्प संग वह लावे ।
वह पुष्प गुरु चरणी चढ़ाये, मूरत गुरु की ही को ध्याये ।
गुरु की मूरत मन में धार, मन को गुरु चरणों में डार ।
धूप चित्त का तब धुखाये, सुन्दर इमि सुवास फैलाये ।
मन का पुष्प व चित्त का धूप, यही जानो तुम भेंट अनूप ।

दो0–ऐसी भेंट अनूप से, मिले गुरु की शरण ।
यही भेंट जान लायकर, राखे गुरु के चरण ।। 2626

एक बात लो और भी जान, गुरु की आरती करे सुजान ।
पुष्प धूप का कीन बखान, ज्योति संग प्रकटाये आन ।
बुद्धी की जन जोत जगाये, अन्तकरण का थाल सजाये ।
इस विधि पुष्प जोत और धूप, गुरु की आरती करो अनूप ।
गुरु चरणों में ध्यान लगाओ, आरती का इमि थाल सजाओ ।
संग भेंट इक चरण चढ़ाओ, इस विध गुरु को सदा रिझाओ" ।
श्रवण करी जब ऐसी रीत, पूछ लिया इक जन सपरीत ।
"नाथ वही तो पूछन चाहें, भेंट क्या गुरु चरणि चढ़ाये" ।

दो0–सुन कर उसकी बात को, मुख से बोले नाथ ।
"स्पष्ट बात अब मैं कहूँ, सुनो सभी इक साथ ।। 2627

भेंट एक ही गुरु ले पायें, भेंटें अन्य न उन को भायें ।
आत्मा से वे करते प्यार, उन को आत्मा ही स्वीकार ।
आत्मा जन जब करे समर्पण, गुरु का हो तब सचमुच अर्चण ।
तन मन बुद्धी और प्राण, भेंट करें जन भक्त सुजान ।
आत्मा भी गुरु चरणि चढ़ाये, पूरण काम तभी हो पाये" ।
श्रवण कीन जब सद्गुरु वाणी, यह शिक्षा सब ने सन्मानी ।
ऐसी शिक्षा वे जन पायें, शरणी गुरु योगी जो आयें ।
योगी गुरु ही रहस पहचानें, आत्म लाभ को उत्तम मानें ।

दो० - सभी जनन ने श्रवण कर, पाया उत्तम ज्ञान ।
धन्य जन्म निज मानते, गुरु मिले भगवान ।। 2628

भगवान रूप गुरु उन पाया, सभी कहें प्रभु करिये दाया ।
गुरु की महिमा और बतायें, सुनने से हम नहीं अघायें ।
हमारे चित्त भाया विश्वास, रहें सदैव हम गुरु के दास ।
गुरु महिमा सुन पायें बहुर, गुरु बिन जीव की और न ठउर ।
पूजें देव व पढ़ लें ग्रन्थ, मिले न गुरु बिन मोक्ष का पंथ ।
शास्त्र सम्मत यही है नीति, मोक्ष का साधन गुरु से प्रीति ।
कहें प्रभु यह ठीक है मीत, मोक्ष का मार्ग गुरु से प्रीति ।
चाहे पढ़ें छः शास्त्र भाई, पढ़ें उपनिषद् भी चित्त लाई ।
चारों वेदों का भी पाठ, और पुराण जो दश व आठ ।
ऐसे ऐसे ग्रन्थ अनेक, मुमुक्षु लेत न इन की टेक ।

दो० - मुमुक्षु टेक न लेत है, ग्रन्थन की मम मीत ।
देवतों की भी न सुने, उस की गुरु से प्रीत ।। 2629

कीनी जिस ने गुरु से प्रीत, जीवन की उस समझी नीत ।
सफल उस ने निज जीवन कीन, कर उद्धार निज कुल का दीन ।
उसने ही निज पितर तराये, चारों फल जीवन के पाये ।
सुन कर सद्गुरु का उपदेश, एक भक्त कहा "हे सर्वेश ।
कौन वे चारों फल हैं नाथ, गुरु भक्त जो पाये इक साथ ।
उनका हमको दीजें ज्ञान, जिनका गुरु से मिलता दान" ।

कर श्रवण सदगुरु फरमाये, यह प्रश्न सुन्दर कर पाये ।
भाग्य से जन नर तन को पाता, धर्म अर्थ व काम का दाता ।
चौथा फल है मुक्ती भाई, इसी देह में ऋषियों पाई ।

दो0 – धर्म अर्थ व काम को, और मोक्ष को जान ।
ये ही फल हैं चार वे, गुरुमुख पाय सुजान ।। 2630

धर्म मोक्ष का है आधार, मुमुक्षु समझे इसका सार ।
जिसने धर्म की कीन कमाई, उसने अन्त में मुक्ति पाई ।
धर्म जीवन का है आधार, धर्म मोक्ष का भी है सार ।
धर्म बिना जीवन का नाश, धर्म बिना संसार विनाश ।
धर्म हेतु प्रभु लें अवतार, धर्म से प्रभु को परम प्यार ।
धर्म का पालन कर नर नार, करते प्राप्त वे प्रभु दुलार ।
इसी हेतु जन धर्म कमावे, प्रीति प्रभु से जिमि मिल पावे ।
धर्माचरण से अर्थ कमावे, अधर्म कमाई छू न पावे ।
सत्य से ही जो हो कमाई, वही बने जन को सुखदाई ।
द्रव्य वही है अर्थ कहाता, धर्म पै चल जो जन कमाता ।
जन जब करे अधर्म कमाई, अर्थ वही अनर्थ हो जाई ।
द्रव्य अनर्थ जभी घर आवे, और उसे जो भोग में लावे ।
करे वह उस की बुद्ध मलीन, बुद्ध मलीन से हो जन दीन ।

दो0 – अनर्थ कमाई जन करे, करे न धर्म विचार ।
उस जन का परलोक भी, और नशे संसार ।। 2631

इस कारण जन धर्म कमावे, अधर्म में पग वह न रख पावे ।
भूखा जन चाहे रह पावे, अधर्म कमाई वह न खावे ।
धर्म व अर्थ का घना है मेल, अधर्म कमाई पाप का खेल ।
पाप से व्याधि अनेकों आवें, नर को पाप नरक ले जावें ।
धर्मी नर जो अर्थ कमावे, उसी अर्थ से तृप्ती पावें ।
उसी अर्थ से सधें सब काम, उसी से हो नर पूरण काम ।
वही अर्थ जब घर में आवे, सभी जनन को सुख दे पावे ।
सब के मन हो परम संतोष, उपजे न किसी चित्त में रोष ।

दो0 – धर्म कमाई जो करे, उसका सुख में वास ।
अनर्थकारी पाप है, राखो दृढ़ विश्वास ।। 2632क
धर्म अर्थ व काम का, जीवन में बहु काम ।
मोक्ष धाम उस को मिले, जो नर पूरण काम[1] ।। 2632ख

जीवन लक्ष्य मोक्ष को जानो, अन्य लक्ष्य सब गौण पहचानो ।
यह तन मोक्ष हेतु है पाया, बिन योग जिसे व्यर्थ गंवाया ।
गुरु की शरणी जो जन जावे, योग करे वा मोक्ष कमावे ।
ये हैं जीवन के फल चार, सभी बखान मैंने कर डार ।
सुन कर प्रभु का सदुपदेश, एक भक्त कहा "हे सर्वेश ।
गुरु ही चारों फल का दाता, गुरु ही शिष का भाग्य विधाता ।

[1]भावार्थ – धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति जीवन को सार्थक करने में बहुत महत्त्व रखती है तथा मोक्ष की प्राप्ति में इन तीनों का महान सहयोग है। मोक्ष उसी को मिलता है जो जीवन में पूर्णकाम हो ।

गुरु से पायें धर्म वा काम, गुरु से ही मिले मोक्ष का धाम ।
गुरु की महिमा पुनः बतावें, मन चाहे हम सुनते जावें ।

दो0 – गुरु की महिमा श्रवण कर, मन प्रफुल्लित होय ।
यहां हितैषी जगत में, गुरु सम और न कोय ।। 2633क
गुरु सम और नं जगत में, हितकर दीखे कोय ।
चारों फल जिससे मिलें, गुरु ही ऐसा होय" ।। 2633ख
कर श्रवण इस बात को, कहा प्रभु हे मीत ।
भाग्यवान वह जीव है, जिस मन यह प्रतीत ।। 2633ग
जिस मन यह प्रतीत है, गुरु जीवन आधार ।
गुरु भक्ति बिन जगत में, है जीवन निस्सार ।। 2633घ

गुरु समान कहां दाता होय, फल मिले जहां बिन ही बोय ।
निज कर्मों से मोक्ष न होय, स्वर्ग नरक ही देवें सोय ।
अथवा चौरासी ले जायें, कर्मों से जन मोक्ष न पायें ।
गुरु कृपा ही मोक्ष आधार, शाश्वत सुख की कृपा सार ।
गुरु किरपा से पाप का शोध, गुरु किरपा से आतम बोध ।
गुरु किरपा से तामस नाश, गुरु किरपा से ज्ञान प्रकाश ।
गुरु किरपा से बन्धन छेद, गुरु किरपा से मिटता खेद ।
गुरु किरपा से रहे न पीड़, किरपा दूर करे भव भीड़ ।
जिस जिस जन ने किरपा पाई, मिटी चौरासी जो दुःखदाई ।

दो0 – गुरु की किरपा पाय कर, रहत न बन्धन लेश ।
अनुभूत यह ज्ञान है, समझो बात विशेष ।। 2634क

गुरु की किरपा से भये, अहंकार का नाश ।
अहंकार के कारणे, जन बन्धा जग पाश ।। 263 4ख

अहंकार के बीज को, भस्म करें गुरु आप ।
बीज रहे न जग रहे, सद्गुरु के प्रताप ।। 263 4ग

गुरु पाप के बीज को, आप करें निर्मूल ।
अहंकार ही बीज वह, उपजें जिससे शूल ।। 263 4घ

गुरु की महिमा को कथ पाये, शब्दों में वह नहीं समाये ।
गुरु का शिष्य पै जो उपकार, और जो शिष्य के प्रति प्यार ।
और जो उसकी करे सम्भार, भया न उसका लेखनहार ।
इतनी मसी नहीं जग माहीं, है न ऐसी लेखनी काहीं ।
लिपिकर्ता भी उपजा नाहीं, गुरु माहात्म्य किमि प्रकटाहीं ।
हिमगिरि की बने जो स्याही, और घुले महासागर जायी ।
लेखनी बनें सब देवदार, जीव चैतन्य सब लेखाहार ।
गुरु उपकार न लिपिबद्ध होय, शिष्य अधिकारी समझे कोय ।

दो0 – बिन अधिकारी शिष्य के, सके न गुरु पहचान ।
जगत भुलावे में रहे, गुरु को मानव मान ।। 263 5क

गुरु को मानव मानकर, संशय बढ़ें अनेक ।
गुरु को ईश्वर जानता, विरला को जन एक ।। 263 5ख

नेह नाते सब जगत के, हुए जो होंगे मीत ।
जन्म मरण में फांदते, शाश्वत यह है रीत ।। 263 5ग

केवल गुरु का रूप इक, करे जगत से पार ।
सूरज मानो ज्ञान का, वही रूप मन धार ।।2635घ

सकल जगत तो यही सिखाये, जग में जीव पुनः किमि आये ।
देव दनुज और मानव सारे, आवागमन के सभी द्वारे ।
मोक्ष का मार्ग भिन्न है साधो, मोक्ष हेतु गुरु चरण आराधो ।
गुरु भयें जब तुझ पै दयाल, करें तुझे पल माहीं निहाल ।
जग से मोड़ के मन निज मीत, गुरु पग जोड़ो अपना चीत ।
गुरु चरणी जब चित्त टिकावें, रहस सकल प्रकट हो पावें ।
शास्त्रण का सब गूढ़ ज्ञान, साक्षात करे गुरु भक्त सुजान ।
द्वन्द्व ताप को करे विनाश, ऐसे गुरु पर कर विश्वास ।

दो० – द्वन्द्व ताप जो करत है, शिष्यन के खुद दूर ।
ऐसा सद्गुरु पाय कर, भव से तरें ज़रूर ।।2636क
भव से तरें ज़रूर जन, गुरु योगी को पाय ।
गुरु योगी की शरण हित, करिये मीत उपाय ।।2636ख

गुरु योगी जिसको मिल पाये, वह भवसागर से तर जाये ।
सद्गुरु बनें खुद खेवनहार, गुरु पग नाव बनें मंझधार ।
गुरु किरपा हो भाग्य विधाई, कुकर्म कटें गुरु कृपा पाई ।
सर्व जनों का यही विश्वास, मुक्त वही जिसे गुरु की आस ।
गुरु से भुक्ति मुक्ति जन पाये, गुरु से स्वर्ग की संपत ग्राहे ।
सुरतरु गुरु के चरण ही मीत, गुरु–पद–नख चिन्तामणि चीत ।

गुरु सेवक को सुलभ वैकुण्ठ, करे नें हानि भाग्य भी कुण्ठ ।
वाम विधाता क्या कर पाये, सेवक को स्वयं गुरु बचाये ।

दो0–गुरु की रक्षा में रहे, जो सेवक सब काल ।
निर्भय उसको जानिये, सके न भय दे काल ॥ 2637क
काल भय नहीं दे सके, सद्‌गुरु के प्रताप ।
क्रुद्ध विधाता भी भये, लगे न उसको शाप ॥ 2637ख

गुरु समक्ष हो जिस के मीत, उसे न जग में किसी से भीत ।
देता भय जो उस को भाई, स्वयं उसी पै संकट आई ।
देव दनुज मानव हो कोई, नेम सभी पै लागू सोई ।
रक्षक जिस के गुरु करतार, उस पै चलत न कोई प्रहार ।
दैहिक शक्ति मान्त्रिक बल, गुरु के सन्मुख हों सब निष्फल ।
एक बात यह और लो जान, तत्ववेता नहीं गुरु समान ।
ज्ञान हेतु जन गुरु अपनावे, गुरु के चरणों में वह जावे ।
ग्रन्थों का क्यों ले आधार, गुरु बिन नहीं मिलेगा सार ।
ग्रन्थ रचे हैं जो भी मीत, गुरु पढ़ावे है यही रीत ।

दो0–गुरु बिन चाहे ग्रन्थ से, पाना जन जो ज्ञान ।
निष्फल उसका यत्न हो, सिरफ बढ़े अभिमान ॥ 2638क
जिसे मान हो ज्ञान का, अज्ञानी वह जान ।
जिसे ज्ञान भगवान का, वह तो रहत निमान ॥ 2638ख

गुरु निवारें दास का, अज्ञान अभिमान ।
ग्रन्थ तो यह न कर सकें, निश्चय से लो जान ।। 2638ग
गुरु योगी के चरण में, बैठ गहें उपदेश ।
सत्य मार्ग यह जान लो, भ्रम का यहां न लेश ।। 2638घ
गुरु योगी की खोज कर, यदि ज्ञान जिज्ञास ।
अन्य उपाय लाख भी, पुजावें न मन आस ।। 2638ङ
योग रिपु अज्ञान का, योगी सद्गुरु होय ।
शरण मिले जब शिष्य को, पूर्ण मनोरथ सोय ।। 2638च

गुरु से मिलता है जो ज्ञान, बड़ा न उससे को विज्ञान ।
ऐसा निश्चय चित्त में धार, गुरु पग का जन ले आधार ।
गुरुमुख से जो ज्ञान कमाये, ऐसा ज्ञान कहां मिल पाये ।
यत्नशील रहे सदा सुजान, गुरु से पावे जाकर ज्ञान ।
गुरु चरणों की सेव कमावे, ब्रह्मपद को जन इस विध पावे ।
मननशील को यही उपदेश, गुरु सेवारत रहे हमेश ।
यज्ञ दान तप तीर्थ सब जान, गुरु सेवा बिन निष्फल मान ।
गुरु ही सत्य सत्य पहचान, आत्म लाभ का यही मग मान ।
आत्मलाभ की हो जिज्ञास, जीव जाय सद्गुरु के पास ।

दो0–पास गुरु के जाय कर, और ठहर उन पास ।
सेवा निशि दिन वह करे, बने गुरु का दास ।। 2639

ईश भाव से गुरु को सेवे, प्रतिपल उनसे शिक्षा लेवे ।

अपने प्रतिपल दोष निहार, गुरु के ज्ञान को मन में धार।
अन्तःकरण कर पाये शुद्ध, योग युक्त हो पाये बुद्ध।
गुरु के पग इस विध जन लाग, काम क्रोध मद लोभ त्याग।
गुरु के दिव्य रूप को देख, निज को उनका अंग ही पेख।
अंश अंशी में जाय समाय, अहंभाव फिर रह न पाय।
अहं मिटे फिर जन्म न होय, आवागमन का चक्र विगोय।
बिना गुरु नहीं बनती बात, अहंकार मिटे न गुरु बिन तात।
बिन गुरु न अहंकार नशाय, अहंकार नशे बिन मुक्ति न पाय।

दो0 – इस कारण तुम भक्तजन, करो गुरु से प्रीत ।
समर्पित गुरु के ही करो, सर्व भाव निज चीत ।। 2640

सुनकर सद्गुरु का उपदेश, एक भक्त कहा "हे सर्वेश।
आप गुरु सभी शिष्य तिहारे, वचन आपके लागें प्यारे।
हम चाहें अहंकार मिटाना, सद्गुरु चरणि चाहें समाना।
सफल होत पर नहीं प्रयास, क्या कारण हम पूछें दास।
हमें बताइये वही उपाय, सफल हमारा यत्न हो पाय।
निराश लगे न हमरे हाथ, अहंकार मिटे तव चरणि नाथ"।
भक्तजनों की सुनकर बात, कहा नाथ "हे सुन लो तात।
गुरु चरणी जब चित्त समाय, योग युक्त तब जन हो पाय।

दो0 – योग युक्त जब जन भये, गुरु चरणि ला चित्त ।
सुधि रहे न देह की, काम बने तब मित्त ।। 2641 क

अहं मिटे जन का तभी, यही उपाय एक ।
तन की सुधि को भूलिये, ले श्रद्धा की टेक ।।2641 ख

श्रद्धा गुरु पग जब उपजाये, मन एकाग्र सहज हो पाये ।
भाग्यवान वह जन लो मान, जिस मन श्रद्धा बढ़े महान ।
श्रद्धा ज्ञान की जननी जान, गुरु पग श्रद्धा पूरण आन ।
गुरु से बड़ा न मानो कोई, समान गुरु के भी ना होई ।
जिस के चित्त ऐसा विश्वास, वही जन गुरु का सच्चा दास ।
गुरु कृपा जो चाहे निरन्तर, श्रद्धा भाव बढ़ावे अन्तर ।
श्रद्धालु से गुरु करें मिताई, जन से चाहे न गुरु कुछ भाई ।
गुरु दाता गुरु ही भण्डारी, उस दर के जन सभी भिखारी ।

दो0–गुरु भण्डारी जगत का, जन लेय यह जान ।
मन अर्पण जो जन करे, किरपा बढ़े महान ।। 2642

मन मूरख न इत उत धाव, गुरु को त्याग न कहीं तू जाव ।
तज कर गुरु के चरण सरोज, मूरख मन भटके हर रोज़ ।
चरण सरोज सुधारस त्याग, जाता रविकरजल[1] हित भाग ।
गृह वनिता सुत बान्धव सारे, मात–पिता सब लगते प्यारे ।
इन सब की तो यही मिताई, छूट पाये न बन्धन भाई ।
एक ही सब की सीख है मीत, चित्त राखो माया से प्रीत ।
गुरु की शिक्षा इन से भिन्न, बन्धन हो जिमि जन के छिन्न ।

[1]रविकरजल – मृगतृष्णा ।

जीव है योनि बहु भरमाया, देव दनुज किन्नर बन पाया ।
चार खान उसने हैं पेखो, स्वेदज, अण्डज, जलज हैं देखे ।
जेरज योनी भी उस पायी, मिला न को भी उसे सहायी ।
गुरु बिन कौन सहायी मीत, करिये गुरु से केवल प्रीत ।

दो0–गुरु से केवल नेह रख, यदि चाहे कल्याण ।
माया के सब नात हैं, मन में लो पहचान ।। 2643

माया में जो डालनहारे, मत जानो वे बन्धु प्यारे ।
सच्चा बन्धु सद्गुरु प्यारा, बन्धन से जिस जीव निकारा ।
जो बन्धन में डालनहारे, ममता वश वे लगते प्यारे ।
मोह ममता का करके त्याग, गुरु के पग दृढ़ कर अनुराग ।
गुरु पग तेरा हो जब प्यार, जीवन का तब जानो सार ।
जीवन मोक्ष हेतु है पाया, गुरु ने है यह भेद बताया ।
गुरु ही जाने जीवन भेद, और दुरावे मन का खेद ।
अन्य देव नहीं दृष्टि आवे, जग बन्धन से जीव छुड़ावे ।
गुरु से ही जन मुक्ति पावे, और सहायी न दृष्टि आवे ।

दो0–श्रद्धा गुरु पग जन करे, गुरु पग दृढ़ विश्वास ।
अनन्य गुरु का सेवक, रटे गुरु हर श्वास ।। 2644

सर्व–देव–मय गुरु को जाने, केवल गुरु को ही सनमाने ।
प्रतिक्षण गुरु को कर प्रणाम, मन राखे गुरु के दिव्य धाम ।
गुरु में ही सब शक्ति समायी, गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु भाई ।

गुरु ही तो है शिव अवतारी, परब्रह्म है गुरु पापारी ।
गुरु बिन पाप न कोई दुरावे, गुरु ही जन को शुद्ध बनावे ।
शुद्धि बिना नहीं मुक्ति होवे, मनोमल केवल गुरु ही धोवे ।
जिमि शिशु को मात नहलावे, गुरु जन का तिमि चित्त धुलावे ।
शिशु को जिमि हो माता स्नेह, तिमि करे जन गुरु पग से नेह ।
गुरु पग छोड़ न मन कहीं जावे, सद्गुरु पर वह बलि–बलि जावे ।

दो0–माता सम गुरु जानिये, जग जीवन आधार ।
माता ने यह तन दिया, रक्षक गुरु करतार ।। 2645

गुरु से रक्षा वह जन पाता, सर्व भाव जो शरणी आता ।
निःछल जिस की गुरु से प्रीत, त्रिकाल न उसे कहीं से भीत ।
आस भरोस सब और त्याग, गुरु के पग जन जाये लाग ।
कर्म गति से दुख सुख आये, गुरुमुख का चित्त न भरमाये ।
उस का लक्ष्य हो इक ही मीत, गुरु पग से ही लागे प्रीत ।
अन्तःकरण को यही बतावे, विमुख न गुरु से वह हो पावे ।
अंगों को भी यही बतावे, हर इक अंग गुरु सेव कमावे ।
वाणी गुरु के गुण नित गावे, गुरु के गीत कान सुन पावे ।

दो0–वाणी गुरु के गुण कथे, श्रवण करें रसपान ।
ऐसा जीवन दुर्लभ, निश्चय से लो जान ।। 2646

आगे प्रभु जी जो कथ पाया, सेवक को सद्गुरु समझाया ।
नेत्रों से गुरु रूप निहारे, मस्तक से गुरु पग सत्कारे ।

हाथों से गुरु सेव कमावे, आश्रम गुरु के चल कर जावे ।
रसना करे चरणामृत पान, कण्ठ से उपजे मन्त्र तान ।
प्राण सकल गुरु के हों अर्पण, कर्म करें सभी गुरु समर्पण ।
चित्त रहे गुरु में चित्त लाई, मनन करे मन गुरु प्रभुताई ।
रहे बुद्धि गुरु रूप में भूल, अहं समाये गुरु पग धूल ।
गुरु पग की करके सेवकाइ, अहंकार बसे न मन में राइ ।
अहं कंटक है मुक्ति मग का, यह निकले दुख नाशे भव का ।

दो0–गुरु कृपा से अहं मिटे, ममता का हो नाश ।
अहंता ममता जब छुटे, कटे जगत का पाश ।। 2647क
अहं नीव है जगत की, ममता जान पसार ।
गुरु कृपा भूचाल सम, डाले सभी उखाड़ ।। 2647ख
गुरु कृपा वह आन्धी है, जिसका वेग अपार ।
वेगवती जब वह चले, जीव लगे जग पार ।। 2647ग

गुरु कृपा का बल पहचानो, संशय लेश न मन में आनो ।
गुरु कृपा सब काम संवारे, संकट जन के तुरत निवारे ।
गुरु किरपा जन भाग्य विधाई, जिसे मिली उस सद्गति पाई ।
गुरु कृपा को वही पहचाने, जिसे मिली हो जन वह जाने ।
सूक्ष्म रूप इसका है ऐसा, आत्म ज्योत का होता जैसा ।
विद्युत वा जो लखी न जाये, स्पर्श भये तो होश भुलाये ।
गुरु कृपा भी तैसे जानो, जहां भये कृत कृत जन मानो ।

गुरु कृपा न तर्क में आये, तर्क करे सो दुर्गति पाये ।
गुरु कृपा न समझ में आये, अनुभव बिना कुछ मिल न पाये ।

दो0–गुरु कृपा जब होत है, तभी मिले यह ज्ञान ।
गुरु कृपा वह शक्ति है, न जिसके और समान"।। 2648

भक्त जनों ने सुन उपदेश, मन में माना हर्ष विशेष ।
जग जंजाल दुखों का मूल, निशि दिन चुभें निरंतर शूल ।
सुख का श्वास तो विरला आवे, प्रति पल चिंता में ही जावे ।
दुखी जनन को भई अब आस, प्रभु के वचन पै कर विश्वास ।
गुरु पग में रह सुख को पावे, सुख का श्वास निरन्तर आवे ।
एक भक्त के मन तब आई, प्रभु से विनती उस कर पाई ।
"प्रभु की कैसी अद्भुत दाया, जीव जगत से जो ठुकराया ।
गुरु पग में आ पाता चैन, सुख से उस के बन्द हों नैन ।

दो0–गुरु चरणों से प्रेम कर, लेता सुख का श्वास ।
प्रीत जगत से जब करे, भये सकल सुख नास ।। 2649

इस में रहस्य क्या है नाथ, हमें बता कर करें सनाथ" ।
प्रभु जी उस की सुन कर वाणी, मधुर वचन कहे महादानी ।
"चिरन्जीव यह बात स्पष्ट, माया ज्ञान को करती नष्ट ।
जन अज्ञानी दुःख को पाये, ज्ञान मिले तो सुख उपजाये ।
गुरु अध्यात्म मग पै डाले, जगत उसे माया में घाले ।
दोनों मार्ग भिन्न हैं भाई, क्या समझ में आप के आई ।
माया से जो करता प्यार, माया करत है उसे ख़्वार ।

गुरु से जोड़े जो निज नात, उसे हो ईश्वर का साक्षात ।
विषधर को जो गले लगाये, विषधर उसे काट ही खाये ।
यह तो सीधी सी है बात, भ्रांत न इस में लेश भी तात ।
माया विषधर सम तुम जानो, ईश्वरतत्व अमृतमय मानो ।

दो0 – गुरु पग को फिर छोड़ कर, जग से क्यों हो प्यार ।
प्यार गुरु से कीजिये, जहां मिले सुख सार ।। 2650

योग धर्म यही बतलावे, प्रीती गुरु पग जन कर पावे ।
दिव्य दृष्टि जब गुरु दे पावे, आत्मतत्व जन तभी लखावे ।
गुरु स्वयं ईश्वर का रूप, गुरु में प्रकटे ज्योति अनूप ।
भाग्यवान ही दर्शन पावे, वही पावे जिसे गुरु लखावे ।
गुरु चरणों से प्रीती जान, दिवबन्धन तू इसे पहचान ।
जग का बन्धन करे ख़्वार, गुरु पग बन्धन लावे पार ।
शीतल हिम से कर आलिंगन, शीतल हो तब जन का तन मन ।
लौह तप्त से कर आलिंगन, जल जाये तब जन का सब तन ।

दो0 – गुरु योगी को खोज कर, योग करें मन लाय ।
उत्तम मारग योग का, मुक्ति यही दे पाय" ।। 2651

हे साधो मैं तुझे बताया, मुक्ति मारग योग जताया ।
इस मारग पर जो चल पाया, मानव तन उस सफल बनाया ।
इस मारग पर चलने हारे, सनक सनन्दन थे ऋषि सारे ।
मुनि मुनीश्वर हुए जो भाई, योग से ही उन मुक्ति पाई ।
अवतार भये जो इस जहान, योग धर्म उन कीन प्रवान ।
योग धर्म कृष्ण बतलाया, योग वशिष्ठ राम सुन पाया ।

शिव तो आदि योगी विख्यात, जिसके शिष्य असंख्य हैं तात ।
आदिनाथ शिव का अभिधान, नाथपन्थ योगिन का जान ।
मत्स्येन्द्र नाथ व गोरख नाथ, प्रसिद्ध भये बहु योगी नाथ ।
दो0–प्रसिद्ध बहु योगी भये, इसी देश के मांझ ।
योग धर्म अपनाय कर, सुख पायें जग मांझ ।। 2652

राजा रंक भये बहु योगी, पाप ताप से रहे वियोगी ।
उन जन्म बिताया साधन रत, मोह ममता में भये न रत ।
धर्म वही जो मुक्त करावे, जन्म मरण से जो छुड़ावे ।
रहें जगत में जग न व्यापे, असत्य जगत न सत हो जापे ।
योगी का हो जीवन ऐसा, जल के मध्य कमल हो जैसा ।
सरोवर की वह शोभा जान, सुवासित उस से सकल स्थान ।
भ्रमर करें उस का रस पान, करें सभी उस का गुणगान ।
जल से रहे वह सदा न्यारा, [1]दीपक उसे गगन का प्यारा ।
योगी की भी दशा यह जान, बांध सके न उसे जहान ।
उस की दृष्टि उच्च महान, उसको केवल प्रिय भगवान ।
जग का उससे हो उपकार, उस के गुण गायें नर नार ।
उस का दर्शन हो सुखदायी, उस का स्पर्श हो भाग्यविधायी ।

दो0–योगी जन जग में बसे, कमल पुष्प की भांत ।
जग का उस से हो भला, स्वयं रहे वह शांत ।। 2653

जो जन चित्त में शांति चाहे, योगी गुरु की शरणी जाये ।

[1] गगन का दीपक -सूर्य ।

भ्रांत मति जो दुःख का कारण, वह कारण गुरु करे निवारण।
गुरु चरणी लग स्थिर मति होय, स्थिर मति पा मन भी स्थिर होय।
मन की स्थिरता योग कहाय, गुरु बिन जन नहीं यह गति पाय।
गुरु योगी तुम ढूँढो मीत, समझो उस से योग की नीत।
जो भी उपाय गुरु बतलाय, उस से ही तव मोक्ष हो पाय।
गुरु योगी भगवान का रूप, प्रदान करे वह ज्ञान अनूप।
मोक्ष साधन की यह ही रीत, गुरु चरणी जन कर ले प्रीत।

दो0 – गुरु चरणों से प्रीत कर, करे जो साधन नित ।
वही करे जन सफल इस, मानव तन को मित्त" ।। 2654क
प्रभु जी का उपदेश यह, सुना गुरु से दास ।
दास सुनाया जनन को, जो आये उस पास ।। 2654ख
कर श्रवण उपदेश जन, भये प्रसन्न महान ।
सत सनातन धर्म का, जिस में पूर्ण ज्ञान ।। 2654ग
सब जनन ने धन्य कहा, "धन्य धन्य हे राम ।
धन्य धन्य हैं मुलख भी, जिन के घट में राम" ।। 2654घ

10. 'सेवक' पर श्री सद्गुरु मुलखराज जी की कृपा का वर्णन

एक भक्त फिर विनय उचारी, निज इच्छा उस ने कह डारी।
'सेवक' से उस कही यह बात, "संग रहे तुम मुलख के तात।
सद्गुरु मुलख राज बहु दयाल, भक्त जनों को कीन निहाल।

उन की कृपा की जो रीत, श्रवण करें हम ला कर चीत ।
आप ने उन से जो भी पाया, वर्णन करिये करके दाया ।
सुना आप पै बहु थे दयाल, रहे आप उन संग बहु काल ।
आप को देते नित वे ज्ञान, रखते आप का पूर्ण ध्यान ।
आपका करते थे वे मान, मान के आप को बहु सुजान ।

दो0 – सद्गुरु स्वामी मुलख जी, घट घट जाननहार ।
योग्य जान के आप को, दीना उन सत्कार ।। 2655क
श्रवण करें अब आप से, ऐसे सब प्रसंग ।
स्वामी सद्गुरु मुलख के, आप रहे जब संग" ।। 2655ख
भक्त जनों की श्रवण कर, मन में भयी प्रतीत ।
गुरु कृपा किमि कथ सकूँ, वह तो शब्दातीत ।। 2655ग
गुरु चरणों का ध्यान धर, उन से पा आदेश ।
कथन किया तब दास ने, कहूँ स्मरण जो लेश ।। 2655घ

"हे मीत मैं क्या कथ पाऊँ, किस विध मन को खोल दिखाऊँ ।
ऐसे शबद नहीं जग माहीं, गुरु किरपा को जो प्रकटाईं ।
गुरु किरपा की छूह निराली, लावे जीवन में हरियाली ।
गुरु किरपा ऋतु राज समान, हरित करे जो सकल जहान ।
'सेवक' को जब गुरु अपनाया, स्पष्ट दृश्य उन इक दिखलाया ।
ध्यान में सद्गुरु ने दिखलाया, एक लक्ष्य का दर्श कराया ।
कदम कदम उसी दिक् चलायें, सद्गुरु आगे आगे जायें ।
अमृत वृष्टी संग वे करते, मार्ग की सभी बाधा हरते ।

दो0 – ऐसा दर्शन पाय कर, खुला दास का ध्यान ।
सद्गुरु किरपा का मिला, मुझको तत्क्षण ज्ञान ।। 2656

ध्यान में सद्गुरु बोध कराया, हम ने है तुम को अपनाया ।
जीवन का है लक्ष्य दिखाया, मार्ग सुखद पै तुझे चलाया ।
तुमरा मार्ग करें श्रेयस, तुम हमें हो बहुत प्रेयस ।
सद्गुरु की यह किरपा जान, दास त्यागा फिर निज ध्यान ।
मन पै बोझ लदा जो पूर्व, उतर गया सुख मिला अपूर्व ।
धन्य धन्य सद्गुरु महाराज, दास किया जिन अपना आज ।
गुरु मेरे का मधुर स्वभाव, मन में ऐसा उपजा भाव ।
मैं तो अधम अधम सा जीव, सद्गुरु दया की रीत अजीब ।
बिन सेवा मुझको अपनाया, अधम जीव को गले लगाया ।
गुणहीन जन प्रभु अपनाया, खोटा पैसा खारा बनाया ।

दो0 – अधम जीव को ले लिया, गुरु शरणी इस रीत ।
जन्म सफल है मम भया, उपजी मन प्रतीत ।। 2657क
निर्भय मेरा मन भया, शङ्का भयी विनाश ।
सद्गुरु शक्ति प्रबल पर, भया पूर्ण विश्वास ।। 2657ख

सज्जन गण मैं और बताऊँ, ऐसा और ध्यान सुनाऊँ ।
जिससे दृढ़तर भया विश्वास, मुझे स्वीकारा गुरु निज दास ।
ध्यान में सद्गुरु यह दिखलाया, रथ एक पर मुझे बिठलाया ।
सारथी बन विराजे नाथ, थाम लगाम को वे निज हाथ ।

चाली रथ अति सुन्दर रीत, गुरु चरणी था मेरा चीत ।
इस विध ध्यान में आते नाथ, दास को करते सदा सनाथ ।
कभी स्वप्न में वे आ जाते, कभी ध्यान में दर्श दिखाते ।
कभी करते उपदेश विशेष, रहस्य जन्म के कथें निशेष ।
गुरु किरपा किमि होय बखान, गुरु बिना सभी दुःखी जहान ।

दो0-गुरु किरपा से पा लिया, जग में सुख का सार ।
मन मेरा हठ यही करे, रहूँ गुरु के द्वार ।। 2658

द्वार गुरु के रहना चाहता, चित्त हठात वहीं चलि जाता ।
और ठोर न मुझको भावे, सब जग नीरस ही दिख पावे ।
गुरु सिमरन आनन्द महान, मुझको होता था यह भान ।
रामलाल प्रभु अन्तर्यामी, और मुलख जो जग के स्वामी ।
उन से मम थी लागी प्रीत, जीवन की अन्य भूली रीत ।
राम मुलखा मम रहते संग, मुझे बनाया उन निज अंग ।
उन्हें स्मरण करत जिस काल, बहुड़त सद्‌गुरु थे ततकाल ।
प्रभु की यही विलक्षण रीत, निज शिष्यन से उन की प्रीत ।

दो0-प्रभु प्रीत की रीत जो, उस का भेद अनूप ।
करता शिष्य स्मरण जब, बहुरें धार सुरूप ।।2659क
बहुरें धार सुरूप वे, रहें शिष्य के संग ।
रक्षा 'सेवक' की करें, विपत न लागे अंग ।।2659ख
रक्षा में जब शिष्य हो, कौन सके दे भय ।
भय का कारण जो भये, उस का सब विध क्षय ।। 2659ग

माता की जिमि गोद में, शिशु पड़ा जो होय ।
उसे त्राहे यदि कोई, माता ताड़े तोय ।। 2659घ
'सेवक' हर दम चरण में, प्रभु की रहता मीत ।
आये विपद डूबे स्वयं, ऐसी प्रभु की प्रीत ।। 2659ङ

जब जब भीड़ पड़ी इस जन पर, रक्षा हेत बढ़ा तब प्रभु कर ।
सभी विपदा से प्रभु निकाला, विपदा को विपदा में डाला ।
विपदा स्वयं सोच में पागी, 'किस हेतु मुझे लागी आगी ।
मैं विपदा मुझे विपदा लागी', इसी सोच में जब वह पागी ।
उसे समझ यह तब ही आयी, प्रभु भक्त के हों प्रभु सहायी ।
क्या बतलाऊं मीत प्यारे, कब कब बने प्रभु मम सहारे ।
काल भयंकर भी चल आया, प्रभु ने मुझ को तुरत बचाया ।
घिरा था जब मैं पाकिस्तान, स्वयं निकाला प्रभु जी आन ।
माखन से जिमि बाल निकाला, मुझ को प्रभु जी तिमि संभाला ।

दो0 – प्रभु जी की जो शरण में, आय गिरा मम मीत ।
उसे जगत में कर सके, कोई न भय से भीत ।। 2660क
न अपनाते यदि प्रभु, क्या होता मम हाल ।
ऐसा मन में सोच कर, कांप जात कंकाल ।। 2660ख
प्रभु जगत में मुझे मिले, यह सौभाग्य महान ।
किस मुख से वर्णन करूँ, मैं मूर्ख अनजान ।। 2660ग

भीड़ पड़ी जब दास पर, निज कर्मन अनुसार ।
प्रभु संभाला आन कर, यह अद्भुत उपकार ।। 2660घ
दोष भरे इस जीव में, था न गुण का लेश ।
दान दिया निज दर्श का, कृपा भयी विशेष ।। 2660ङ

कृपा प्रभु जी मुझ पर कीनी, क्षण क्षण जिसकी सैनी[1] चीनी ।
ऐसी दृढ़ता से अपनाया, पल एक नहीं बिछुड़न पाया ।
ऐसे योग का दीना दान, जिसे सराहे सकल जहान ।
तुम कहते मैं यह बतलाऊँ, प्रभु किरपा की बात सुनाऊँ ।
क्या बतलाऊँ मीत प्यारे, असंख्य प्रभु के खेल न्यारे ।
क्या बतलाऊँ, क्या न कथ पाऊँ, इसी सोच में मैं चकराऊँ ।
असंख्य की संख्या न हो पाए, प्रभु किरपा न कथन में आये ।
किरण सूरज की सके को गिन, सके कौन गिन वर्षा के कण ।
कौन सके गिन धरत के कण, जान लो इसी से तुम मम मन ।

दो0– अपने मन के भाव को, सकूँ न कथ मम मीत ।
प्रभु राम और मुलख के, चरण भजूँ सप्रीत ।। 2661क
चरण भजूँ सप्रीत मैं, चित्त बसें प्रभु राम ।
अंग अंग मैं निरखता, छवि राम अभिराम ।। 2661ख
इस तन का है फल यही, चित्त बसें प्रभु राम ।
चन्चलता मन की मिटे, देख छवि अभिराम ।। 2661ग

[1] सैनी – निशानी, चिह्न

सदा करूँ मैं वन्दना, प्रभु चरणी मम मीत ।
राममय सब जग लखूँ, प्रभु दीनी प्रतीत ।। 2661घ
ब्राह्मण वंश तिलक प्रभु, सकल विश्व के नाथ ।
आठ पहर सिमरन करूँ, मम जीवन उन हाथ ।। 2661ङ
ब्रह्मा विष्णु महेश भी, जिनका करते ध्यान ।
वह योगेश्वर राम जी, प्रकटे जग में आन" ।। 2661च

11. प्रभु ध्यान की सरल रीत

सुनकर सेवक का विश्वास, भक्त एक तब कीन अरदास ।
"प्रभु कृपा से आपका ध्यान, परिपक्व भया लीना हम जान ।
हमें वही अब विध बताइये, प्रभु भजन की रीत सिखाइये ।
प्रभु मूरत को हम भी ध्यावें, और उन्हीं में मन लगावें ।
हमें भायी है अब प्रतीत, प्रभु के चरण से करें प्रीत ।
आपकी हो यदि कृपा नाथ, दान ध्यान दे करें सनाथ" ।
सुनकर उनकी विनय पुकार, 'सेवक' मन उपजा विचार ।
ऐसी इन को रीत बताऊँ, सरल उपाय हि मैं समझाऊँ ।
'सेवक' कहा तब भक्त प्यारे, प्रभु की मूरत देखो सारे ।

दो० – प्रभु मूर्त का दर्श कर, बैठो उस ही रीत ।
पद्मासन जिमि नाथ का, बैठो ला कर चीत ।। 2662

प्रभु के पद्मासन को देखो, भू पर टिके हैं जानु पेखो ।
ऐसा आसन सभी लगाओ, भू पर जानू ठीक टिकाओ ।

प्रभु जी के फिर कर को देखो, जानु ऊपर धरे हैं पेखो ।
ऐसे ही तुम भी कर पाओ, इसी विध आसन दृढ़ लगाओ ।
कमर प्रभु की सीधी भाई, विधि यही है योग में आई ।
सिर गर्दन भी सम हैं देखो, ध्यान से आसन को तुम लेखो ।
इस विध आसन को लो धार, अभ्यास से ही जन लागे पार ।
दो घड़ी नित्य करे अभ्यास, प्रभु किरपा तब पावे खास ।

दो0–दो घड़ी जन नित्य करे, आसन का अभ्यास ।
आसन उसका सिद्ध हो, राखे मन विश्वास ।। 2663

प्रभु का रूप निरखो सप्रीत, प्रभु मूरत में ला कर चीत ।
उन के चरणों को जन देखे, पग के नख को ध्यान से पेखे ।
पग नख से जो निकसे जोत, अलौकिक उस का है उद्योत ।
उसमें चित्त जभी रम पाये, जगत सकल तब मन विसराये ।
उस ज्योति का ध्यान अनूप, वह ज्योति है ब्रह्म स्वरूप ।
उस जोत का ध्यान जो धरता, अपने सकल पाप को हरता ।
तीनों ताप उस के हों दूर, जो निरखे गुरु पग नख नूर ।
उस ज्योति का होय पतंग, जले सकल मल हों शुद्ध अंग ।

दो0–गुरुपग ज्योति जो लखे, श्रद्धा सहित मनुष्य ।
तनमन उसका शुद्ध हो, रहे न लेश क्लुष्य ।।2664क

रहत क्लुष्य न जीव में, अन्तर भी हो शुद्ध ।
गुरुपग ज्योति जो लखे, होय उजागर बुद्ध ॥2664ख

जिस ने गुरु पग जोत ध्यायी, उस ने दिव्य बुद्धि है पाई ।
ज्ञान उजागर उस की बुद्धि, अन्तर की भी पूरण शुद्धि ।
इससे भिन्न न और उपाय, मन में न कोई संशय लाय ।
संशय कर अज्ञान बढ़ावे, जीवन का न फल वह पावे ।
चारों फलों के गुरु विधाता, जन जीवन को सुख प्रदाता ।
उन के चरणों का धर ध्यान, मिलत अलौकिक जन को ज्ञान ।
तेजोमय गुरु देह महान, रोम रोम में ज्योति समान ।
चरण कमल अति तेज स्वरूप, नित निरखे जन गुरु का रूप ।
गुरु नख तेज निरूपम आहीं, योगी निज मन वहीं टिकाहीं ।

दो0 – गुरुनखतेज जिस मन बसे, गुरु पग होय प्रीत ।
योगी नर वह ही बने, लोक वेद की रीत ॥ 2665

सुन कर एक शिष्य ने बात, लीना पूछ "हे जग के त्रात ।
अलौकिक गुरुचरणों का ध्यान, सुना आप से हे भगवान ।
गुरु के अन्य अंगों का ध्यान, करता शिष्य किस विध भगवान" ।
सुन 'सेवक' ने वह जिज्ञास, रूप प्रभु का ला चित्त खास ।
कथन किया उस ने हे मीत, जिस की गुरु चरणों से प्रीत ।
और हो गुरु से शुद्ध प्यार, वह ही जाने ध्यान का सार ।
गुरु जीवन–आधार लो जान, गुरु प्राण के प्राण लो मान ।
गुरु किरपा के पाने हेत, समर्पित कर मन होय सचेत ।

दो0 – मन हो गुरु के रूप में, लीन जभी मम मीत ।
ध्यानी जन वह जानिये, स्पष्ट कथी है रीत ।। 2666 क
स्पष्ट कथी है रीत यह, गुरु का करिये ध्यान ।
किसी एक ही अंग का, अथवा देह महान ।। 2666 ख

गुरु के हर इक अंग का ध्यान, करता जन का बहु कल्याण ।
अंग सभी जो गुरु के भाई, देव रूप जानो सुखदाई ।
जिस भी अंग में मन टिकायें, ईश्वर के वहीं दर्शन पायें ।
पूर्ण देह में ईश समाये, जिमि ईख में रस रह पाये ।
मन टिके जिस अंग में भाई, परमानन्द प्रकट हो जाई ।
गुरु के वरद हस्त का ध्यान, लोकोत्तर ही ध्यान लो मान ।
उस से मिली जो आशिष होय, भाग्य विधाई जन की सोय ।
उस हस्त से तेज जो आय, पाप ताप का क्षय कर पाये ।

दो0 – वरद हस्त से निकल कर, आता जो प्रकाश ।
अमृत की इक धार वह, करती पाप विनाश ।। 2667

वक्षस्थल का करे जो ध्यान, मिले वहां ब्रह्म तेज महान ।
उस की उपमा जग में नाहीं, ऐसा तेज न जग के माहीं ।
ब्रह्म तेज जो वह दिख पाये, वहां पै तम सकल बिलगाये ।
उस तेज का करत जो ध्यान, उपजत उस के अन्तर ज्ञान ।
प्रभु का दिव्य रूप पहचाने, लेश न मन फिर संशय आने ।
दो घड़ी चित्त वहां टिकावे, परम सुखी वह जन हो जावे ।

प्रभु का निराकार यह रूप, प्रभु के हिरदय में जो गूप ।
उस को वह ही जन लख पाये, प्रभु चित्त से चित्त मिलाये ।

दो0–प्रभु चित्त से चित्त मिले, भये चित्त में ज्ञान ।
तभी ध्यानी को मिलत, रहस जगत का जान ।। 2668

प्रभुजी का मुख कमल भी देख, सहज उन की मुस्काहट पेख ।
मुस्काहट में इक जादू जान, करे भक्त का जो कल्याण ।
मुख पंकज उस कमल समान, जिस पर भंवरे बैठें आन ।
भक्त जनों के नेतर जानो, मुख कमल पर भंवरे मानो ।
हे मन तू भी प्रभु निहार, जग जीवन का यही है सार ।
प्रभु को भूल के मीत प्यारे, कोटि जन्म से रहे दुखारे ।
तीन ताप ने तुझे तपाया, तीन ऋणों से ना छुट पाया ।
अब कीनी है प्रभु ने दाया, अपना सुन्दर रूप दिखाया ।
प्रभु का रूप तू निरख प्यारे, बन्धु मित्तर वही तुम्हारे ।

दो0–प्रभु ही तेरे मीत हैं, प्रभु ही राखनहार ।
प्रभु माता प्रभु ही पिता, विद्या वित्त अपार ।। 2669 क
प्रभु को निरखत तुम रहो, अति सुन्दर जो रूप ।
निरख निरख तू फिर निरख, सुन्दर प्रभु स्वरूप ।। 2669 ख

प्रभु स्वरूप तू निरखत रहना, यदि हो जग का दुःख न सहना ।
तीन तापों से यदि न तपना, आधि व्याधि से यदि हो बचना ।
प्रभु का ही तू रूप निहार, चित्त में केवल वह ही धार ।

चित्त तेरा प्रभु का आवास, तन अपना कर प्रभु का दास ।
प्रभु बनें तभी रक्षक तेरे, दुःख दारिद न आवें नेरे ।
चमत्कारी है प्रभु का रूप, इसी को रख तू मन में गूप ।
सुख में है यह मित्तार तेरा, दुःख में सम्बल यही घनेरा ।
प्रभु ही तेरे एक सहायी, ध्यान प्रभु का बिसर न जायी ।

दो0–ध्यान प्रभु का न विसर, हे तू मेरे चीत ।
इस जग में, परलोक में, वही तुम्हारा मीत ।। 2670

प्रभु को विसर न मेरे भाई, वह तो तेरा सगा सहायी ।
उस बिन सुख कहां तू पाये, जन्म जन्म तो पाप सताये ।
छूटन चाहे बान्धा जाये, यत्न करे कुछ काम न आये ।
हे प्रभो अब बनो सहायी, आवागमन बहु दुःखदायी ।
भटक भटक मैं हूँ बहु हारा, तेरे दर पै मिला सहारा ।
भक्त अनेकों चरणि लगाये, विदित सबन जो उन सुख पाये ।
हरानन्द का कीन उद्धार, रामरती का भाया सुधार ।
मरणासन्ना वृद्धा तारी, दर्शन देकर आप उबारी ।
जिस जिसने है कीना याद, तुरन्त सुनी उसकी फरयाद ।
पाप भंजन तुम हो भगवान, पापी मुझको भी लो जान ।
इसी नात से मुझे पहचान, बहुड़ो अब तो हे भगवान ।

दो0–पापी को तुम शरण में, लेते हो भगवान ।
कलियुगी मैं पापी हूँ, दो शरण का दान ।। 2671

पाप मेरे हैं बहु घनेरे, देख मुझे जग लगे न नेरे ।
किस विध मेरा हो कल्याण, कहां जाऊँ जो मिले त्राण ।
अब तो तेरा एक सहारा, तुम सम्भालो मिले किनारा ।
अथवा भव जल में बह जाऊँ, अपनी विपदा किसे सुनाऊँ ।
प्रभो संभालो दीन निमाना, तुझ बिना नहीं मम कल्याणा ।
मुझे न त्यागो हे भगवान, मेरा तुझ बिन कहां इस्थान ।
ध्याया जिस तुम उसको तारा, सिमरा जिस तुम उसे उबारा ।
मैं ध्याता तू ध्येय स्वामी, मैं सिमरूँ हे अन्तर्यामी ।

दो0 – सिमरण तेरा मैं करूँ, ध्यान धरूँ सब काल ।
मेरी रक्षा कीजिए, विनती दीन दयाल ।। 2672

तुझे छोड़ मैं किस जा जाऊँ, तुझे भूल कहां मन लगाऊँ ।
तुम्ही बताओ मेरे नाथ, डोरी जीवन बस तव हाथ ।
तुम से ही मैं रक्षा पाऊँ, तुम मारो तो मर मैं जाऊँ ।
हानि लाभ और सुख दुख नाथ, जीवन मरन सब तेरे हाथ ।
तेरी शक्ति तू ही जाने, को न इसको और पहचाने ।
दृढ़ है मेरे चित्त विश्वास, भजन बिना जीवन का नास ।
प्रभु भजें तो सब सुख पावें, भूल प्रभु को दुख में जावें ।
प्राण बिना जिमि देह विनाश, भजन बिना तिमि आतम नाश ।

12. मोक्ष का मार्ग

दो0 – प्रभु भजन बिना जीव का, होता है इमि नाश ।
प्राण बिना जिमि देह यह, सके न इक ले श्वास ।। 2673

सुन कर सब ने संत यह वाणी, प्रभु भक्ति की महिम पहचानी ।
कहा एक ने "नाथ प्यारे, वचन आप के सुन कर सारे ।
इच्छा हमरे मन हो आई, पूछें वह जो नहीं बताई ।
मानव तन को है अब पाया, इस का हम न लाभ उठाया ।
ऐसा वर्णित करें उपाय, मोक्ष का मार्ग जिमि मिल पाय" ।
श्रवण कीन जब उस की बात, सेवक कथन किया "हे तात ।
ऐसा प्रश्न उसी मन आवे, जन संस्कारी जो जग जावे ।
उसके मन रहता विश्वास, मोक्ष जन्म का लक्ष्य है खास ।

दो0 – लक्ष्य जन्म का मोक्ष है, ऐसा जिस मन होय ।
गुरु किरपा से कर सके, साधन को जन सोय ।। 2674क
उच्च लक्ष्य जिस जीव का, करता दृढ़ अभ्यास ।
जिस का लक्ष्य ही हो लघु, करे न साधन खास ।। 2674ख

साधन से जन पाता सिद्धि, मिलेगी साधन से समृद्धि ।
साधन से ही दोष हों दूर, दुर्बल भी बन पाये शूर ।
उच्च लक्ष्य को यदि हो पाना, न भूलें साधन अपनाना ।
गुरु सिखलाये साधन जोय, श्रद्धा सहित करे जन सोय ।
मोक्ष के साधन अब बतलावें, जीवन भर उन को कर पावें ।

प्रथम बात तुम लो यह जान, मन को हेतु बन्धन मान।
बन्धन का मन कारण मान, कारण मोक्ष भी यह पहचान।
मन को जिस ने तन से जोड़ा, और न मन को तन से मोड़ा।
बार बार वह तन को पावे, मुक्त नहीं वह जन हो पावे।
आत्मा से जो मन को जोड़े, और न वहां से मुख को मोड़े।
तन को त्याग मुक्त हो जावे, फिर नहीं वह देह में आवे।

दो० – आत्म द्रष्टा मन बने, तन की सुध को भूल।
मोक्ष लाभ वह जन करे, शाश्वत यही असूल" ।। 2675 क
सुन कर इस उपदेश को, बोला एक सुजान।
आत्म दर्शन जिमि करें, दीजो सरल ज्ञान ।। 2675 ख

सेवक कहन लगा "हे भाई, प्रभु जी ने जिमि है कथ पाई।
वही विधि मैं तुम्हें बताऊँ, विधि सनातन सभी कथ पाऊँ।
कण्ठ तले जो शुद्ध स्थान, आत्मा का वहां मिलता ज्ञान।
दिव्य रूप उस का प्रकटावे, गुरु किरपा को जन जब पावे।
मन रमे उस रूप के माहीं, विलीन भये उसी वह थाहीं।
शुद्ध बुद्ध आत्मा का रूप, उस का दिव्य तेज स्वरूप।
यह तो स्वयं मेरा है रूप, बैठा हूँ इस तन में गूप।
ऐसा निश्चय ले जब धार, करें स्वयं का तभी उद्धार।

दो० – दृढ़ता मन में धार कर, करे जो आत्म दर्श।
कर सके नहीं लेश फिर, माया उसे स्पर्श ।। 2676

बार बार यह मनहिं विचारे, मैं शुद्ध मैं बुद्ध हूँ प्यारे ।
तीन गुणों से मैं हूँ न्यारा, मेरा रूप दिव्य है प्यारा ।
काल का मुझ को है न भय, तीनों काल मैं हूँ निर्भय ।
मेरे आश्रित तन यह भारी, मेरे आश्रित मन बलकारी ।
मेरे आश्रित पांचों प्राण, मेरे आश्रित सकल जहान ।
मेरे आश्रित जग की माया, मेरे आश्रित सब की काया ।
मेरे आश्रित ही सब ज्ञान, मेरे आश्रित योग ध्यान ।
मेरे आश्रित मिले आनन्द, मैं स्वयं हूँ सच्चिदानन्द ।

दो0–चिदानन्द हूँ मैं स्वयं, पडूँ न मद के कूप ।
रहूँ जगत में सूर्य सम, भूलूँ न निज रूप ॥ 2677क
मनन करूँ निज रूप को, निरखूँ अपना रूप ।
प्रेम करूँ निज रूप से, चिदानन्द स्वरूप ॥ 2677ख
इस विध अपने रूप को, नित्य ध्यावे जोय ।
जग का बंधन काट कर, मुक्त होयगा सोय ॥ 2677ग
मुक्त होयगा सोय जन, ध्यावे जो निज रूप ।
जग की माया विसर कर, रहत चित्त में गूप ॥ 2677घ

मन में ही जो ध्यान लगावे, आत्म दर्शन वहां कर पावे ।
कामना जग की न हो चित्त, क्रोध करे नहीं किसी निमित्त ।
लोभ लुभा सके नहीं उसको, मोह डाले न मोह में उस को ।
अहंकार से रहे जो दूर, आत्मदर्शी वही जन शूर ।
आत्म दर्शन जिस को होय, मोक्ष का लाभ करे जन सोय ।

आत्म दर्श से बुद्ध पवित्त, आत्म दर्श से निर्मल चित्त।
आत्म दर्श से धुलते पाप, आत्म दर्श से लगे न शाप।
आत्म दर्श से सुधरें काम, आत्म दर्शी हो जन निष्काम।

दो0 – आत्मदर्श कर कामना, जग की हो निर्मूल।
आत्मदर्शी पुरुष के, दूर सभी हों शूल ।। 2678

आत्म दर्शी जन होय जोय, जीवन सफल करे वही सोय।
विषयों को न चित्त में लाय, आत्मरूप सदा जन ध्याय।
आत्मा अजर अमर ले जान, आत्मा ज्योति रूप पहचान।
आत्मा नित्य व शाश्वत मीत, आत्मा से जन कर ले प्रीत।
आत्मा मरे न को को मारे, वश उसी के जगत में सारे।
न वह मरा न कभी है जन्मा, अतः कहावे सदा अजन्मा।
तन का त्याग करे वह ऐसे, कपड़े जीर्ण उतारें जैसे।
नूतन देह को करे ग्रहण, नये वस्त्र जिमि जन ले पहन।

दो0 – नूतन कपड़े जिमि धरें, करें जीर्ण का त्याग।
तिमि वह नूतन तन धरे, जीर्ण शीर्ण को त्याग ।। 2679क
नहीं जले यह आग में, नहीं सुखावे वात।
नीर न गीला कर सके, मुख्य जान यह बात ।। 2679ख

रहे अव्यक्त तन में ऐसे, ईश्वर रहत जगत में जैसे।
उसे न चिन्तन में को लाये, वह तो अचिन्त्य रूप कहाये।

उसका रूप सदा अविकारी, बात सबन यह है स्वीकारी ।
लखो उसे अचरजवत कोई, अचरज जान सुने जन सोई ।
कर श्रवण फिर भी न जानें, अचरज उसे सभी जन मानें ।
सभी देहों में वह समाया, धार असंख्य जगत में काया ।
काया मरे पर मरे न सोय, उस में शक्ति अलौकिक होय ।
बार बार वह धारे काया, चक्र चुरासी यही कहाया ।

दो0–बार बार जो तन धरे, बार बार दे त्याग ।
उसी अलौकिक शक्ति से, हे मन कर अनुराग ।। 2680क
जो मरता जो जन्मता, उस से न कर प्यार ।
अजर अमर जो आत्मा, उस को नहीं विसार ।। 2680ख

आत्मा का जो करता ध्यान, सुखी रहत वह सदा पुमान ।
आत्मा को सुख रूप लो जान, आत्म ध्यान से उपजे ज्ञान ।
आत्म ध्यान से मन हो शुद्ध, आत्म ध्यान से जन प्रबुद्ध ।
नित्य करे मन आत्म ध्यान, इसी में जीवन का कल्याण ।
आत्म रूप जो विसरे चित्त, सुन पाये नहीं किसी निमित्त ।
वेद सकल यही कह पावें, आत्म रूप न जन विसरावें ।
सब शास्त्रण का यही फरमान, आत्म ध्यान से हो कल्याण ।
महापुरुष सब यही बतावें, आत्म रूप में चित्त लगावें ।

दो0–आत्म रूप में मन धरे, आत्म रूप में बुद्ध ।
आत्मरूप सिमरन करे, रहे सदा जन शुद्ध ।। 2681क

आत्म ध्यान रहस्य को, कर श्रवण इक साध ।
कहन लगा "हे नाथ जी, आत्म ज्ञान अगाध ।। 2681 ख

श्रवण किया जब आप से, सरल रूप में ज्ञान ।
हमरे मन में बस गया, आत्मा का ही ध्यान ।। 2681 ग

हो यदि प्रभो और भी, कथन करें उपदेश ।
वचन आपके श्रवण कर, मिलता सुख विशेष ।। 2681 घ

श्रवण करी जब बात यह, सेवक कीन बखान ।
प्रिय मित्र यह जान लो, आत्म ज्ञान महान ।। 2681 ङ

जीवात्मा का ज्ञान ही, श्रवण किया तुम मीत ।
आत्मा का जो ईश है, उसकी कर प्रतीत ।। 2681 च

जीव को जिस ने जग पठाया, दीनि जीव को जिस ने काया ।
जिस ने भाग्य लिखा है माथ, जग की डोर है जिस के हाथ ।
कठपुतली वत जगत नचावे, नाचे तिमि जिमि प्रभु नचावे ।
उस ईश्वर को लेवो जान, उसकी कर लो तुम पहचान ।
सर्वव्यापक वह सुखदायी, अंश उसी का जीव कहायी ।
उस ने रची है सृष्टि मीत, ध्यान योग से भये प्रतीत ।
गुरु किरपा वश मिलत सुयोग, जीव का ईश्वर से हो योग ।
जीव अकेला रहत दुखारी, ईश्वर से मिल होत सुखारी ।
इसी भेद को गुरु बतलावे, जीव ईश से जिमि मिल जावे ।

दो0–जीव ईश के मेल को, ही कथा है योग ।
मानव तन को पायकर, क्यों करें नहीं योग ।। 2682

ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार है उस का रूप ।
साकार रूप में भी लो जान, साकार रूप सद्‌गुरु को मान ।
विश्वरचयिता उसी को जान, भरता और संहरता मान ।
सकल ज्ञान का वही स्रोत, दिव्य महिमा में ओत प्रोत ।
उस के दर्शन जो जन पाये, वह उसी का रूप हो जाये ।
ऐसा उस का दिव्य प्रभाव, कौन सके कथ पूरण भाव ।
निरञ्जन मोक्ष प्रदाता ईश, आश्रय सब का इक जगदीश ।
कोटी सूरज सम प्रकाश, जिस से पूरण विश्व आकाश ।

दो0–सकल विश्व में रम रहा, दिव्य रूप जो ईश ।
योगी जन दर्शन करें, भ्रूमध्य जगदीश ।। 2683क
भृकुटिमध्य जगदीश का, करे जो दर्शन नित ।
उस योगी का जगत में, हो आसक्त न चित्त ।। 2683ख

भृकुटि मध्य जगदीश विराजे, कोटी सूरज सम वह साजे ।
त्रयीवेणी का जानो घाट, तीरथ जो है मध्य ललाट ।
गंग यमुन का संगम जान, संग सरस्वती भी पहचान ।
ईड़ा जान गंगा का रूप, पिंगला मान यमुन स्वरूप ।
सुषुम्ना सरस्वती है मीत, देखे वह जिसे प्रभु से प्रीत ।
उसी घाट जो जीव नहावे, निश्चित शुद्ध बुद्ध हो जावे ।
ईश्वर संग हो उस का योग, मिलता भाग्य से यह सुयोग ।

ईश्वर में जो विश्व का रूप, दीखत वह विराट स्वरूप ।

दो0 – भये दर्श जब ईश का, भ्रूमध्य के बीच ।
कृतकृत्य तभी जन भये, धुले पाप की कीच ।। 2684क
धुले पाप की कीच जब, शुद्ध बुद्ध जन होय ।
ईश्वर के बिन दर्श के, जन चौरासी गोय ।। 2684ख
शुद्ध बुद्ध जब जन भये, निर्मल होवे चित्त ।
दुःख नशें सुख ऊपजें, जीवन परम पवित्त ।। 2684ग
बिन ईश्वर के दर्श के, मिटे न जन का ताप ।
तीन ताप से तप्त जन, भोगत है सन्ताप ।। 2684घ
जीव करे नित साधना, होय ईश का दर्श ।
कर सके नहीं फिर कभी, ताप व पाप स्पर्श ।। 2684ङ

ताप व पाप न जीव सतावें, ईश्वर का जब दर्शन पावें ।
ईश्वर सुख सागर लो जान, सच्चिदानन्द उसे ही मान ।
उसको प्राप्त करे जन जोय, ताप उसे नहीं जग में होय ।
मानवतन का यही निशाना, साधन कर ईश्वर को पाना ।
है सुगम नहीं पाना लक्ष्य, करना कठिन ईश्वर प्रत्यक्ष ।
सुन कर जन बोला हे नाथ, किमि लागे तब सिद्धि हाथ ।
मानव देह भाग्य से पाया, सिद्धि हेतु कुछ कहो उपाया ।
बिन सिद्धि न ज्ञान का अर्थ, सिद्धि पाय जन बने समर्थ ।

दो0-कोटि जन्म से जीव यह, भटकत बन असमर्थ ।
ईश्वर को न पाय सका, स्पष्ट करें प्रभु अर्थ ॥2685

किस उपाय से सिद्धि पाये, किस रीति से ईश लखाये ।
किस रीति से निज को देखे, किस रीति से ज्ञान को पेखे ।
किस रीति से होय उद्धार, किस रीति से लागे पार ।
किस रीति से ईश पतियाये, किस रीति से योग कमाये ।
ईश्वर जीव का हो किमि मेल, न जानूँ यह सुगम है खेल ।
ऐसा नाथ उपाय बताएँ, जिमि सफलता जीव पा जाएँ ।
जब जन होत परम निःसहाय, गुरु शक्ति ही बनत सहाय ।
भय संसृति का जभी डराय, गुरु शक्ति ही जनहिं बचाय ।
नाथ कृपा कर कहें उपाय, मानव जन्म सफल हो पाय ।
जीव का ईश्वर से हो योग, कथें कुछ ऐसा हम को योग ।

दो0-ऐसा योग बखानिये, हो सुगम जो नाथ ।
हम सरीखे जीव तरें, सिद्धि लागे हाथ ॥2686क
सुन कर उसकी बात को, कहा 'सेवक' मम मीत ।
तुमने स्वयं स्पष्ट किया, रहस योग सप्रीत ॥2686ख
ईश्वर वा इस जीव से, सत्ता एक महान ।
परब्रह्म उस को कहें, उस को लो पहचान ॥ 2686ग

ईश्वर संग जो जीव मिलावे, ईश्वर का साक्षात करावे ।
ऐसी शक्ती का जो स्वामी, घट घट वासी अन्तर्यामी ।
पारब्रह्म वही कहलाये, सद्गुरु रूप जगत में आये ।
विश्व सकल उस के आधीन, रहत जगत में भी हो लीन ।

योग शक्ति उसके घट माहिं, सूरज में जिमि तेज समाहिं।
रिद्धि सिद्धि का उसमें वास, जन राखे उस पर विश्वास।
उसका भक्त जो होवे मीत, स्मरण करे उस को सप्रीत।
दृढ़ राखे उस पर विश्वास, उसका नाम जपे हर श्वास।

दो0–भक्त मिले वह ईश से, योग सफल हो मीत।
बिन गुरु योगी के प्रिय, शांत होय न चीत ।। 2687क
सहसार प्रदेश में, परब्रह्म का वास।
सद्गुरु के ही रूप में, उसका वहां निवास ।। 2687ख
परब्रह्म से क्या परे, गुरु से बढ़ को होय।
गुरु किरपा जिस पर भये, जन जाने यह सोय ।। 2687ग

गुरु चरणी जो चित्त लगावे, और विमुख जग से हो पावे।
निजकर्मों से गुरु आराध, सिद्धि पाता है जिमि साध।
मोक्ष लाभ उसको जिमि होय, बात खोल कर कह दूँ तोय।
सद्गुरु संग में रह कर साध, बुद्धि की हरे सकल व्याध।
सात्विक बुद्धि जन वह पाये, मोक्षमार्ग पर चल दिखलाये।
पूछी एक भक्त तब बात, सात्विक बुद्धि क्या है तात।
उसका गुण हम को बतलाएं, यह सीख हम आप से पाएं।
'सेवक' ने सुन उस की बात, कहा सुनो मम तुम प्रिय तात।

दो0–सात्विकी बुद्धि जानिये, जान सके जो भेद।
प्रवृत्ति और निवृत्ति का, हे मीत बिन खेद ।। 2688क

जान सके जो भेद को, बन्ध मोक्ष में मीत ।
कार्य क्या अकार्य क्या, हो जिस को प्रतीत ।। 2688ख

ऐसी सात्विकी बुद्धि जोय, विषयों से विमुख होय सोय ।
राग द्वेष का कर के त्याग, एकान्तवास करे बिन राग ।
लघु आहार ही उस को भाय, ध्यान योग में चित्त लगाय ।
विरागमयी जो जीवन होय, अभिमान करे न भूल भी सोय ।
कामक्रोध से रह कर दूर, शान्त रहे निर्भय हो शूर ।
ऐसा जन ब्रह्म होने योग, जीव ब्रह्म का इस विध योग ।
ब्रह्म से मेल जीव का होय, करे न शोक व इच्छा सोय ।
आत्मा उस की निर्मल जान, देखे सब को एक समान ।
परा भक्ति को वह जन पाता, उपर्युक्त जो गुण अपनाता ।

दो0 – उपर्युक्त जो गुण कथे, और कहा ब्रह्मयोग ।
जिस जन में ये ऊपजें, पाय वह भक्ति योग ।। 2689

भक्ति पाय जन होय कृतार्थ, सिद्ध होत उस का परमार्थ ।
ऐसा भक्त ही ज्ञानी होय, रूप ईश्वर का जाने सोय ।
ईश्वर की वह शक्ति जाने, महिमा ईश्वर की पहचाने ।
ईश्वर के जो गुप्त हैं भेद, जाने वह बिन पाये खेद ।
ईश्वर क्या, और हूँ मैं क्या, और यह सारा विश्व है क्या ।
ऐसे ऐसे प्रश्न जो भारे, उत्तर मिलें भक्त को सारे ।
ऐसा जन ईश्वर हो जाये, ब्रह्म होय व ब्रह्म समाये ।

भक्तियोग है योग की सीम, भक्ती का पथ कथा असीम।
अव्यय शाश्वत पद हो पाना, प्रीत सहित यह मग अपनाना।

दो0 – प्रीत सहित जो जन चले, इसी योग के मार्ग ।
उस जन को वह पद मिले, गुरु से कर अनुराग ।। 2690

ब्रह्मपद में गुरुभक्त समाय, ब्रह्मपद को योगी पा जाए।
यम नियम जभी पाल दिखाये, ब्रह्मपद का मार्ग खुल जाये।
आसन को जो दृढ़ कर पाये, ब्रह्मपद मार्ग पर चल पाये।
प्राणायामी हो जो साध, लेता ब्रह्मपद को आराध।
प्रत्याहारी जो जन होय, इस मग को जाने जन सोय।
बन्ध मुद्रा जो जन लगावे, उसे सुगम यह मग हो पावे।
जिस की धारणा ब्राह्मी मीत, उस को हो ब्रह्मपद प्रतीत।
ध्यानी ब्रह्मध्यान लगाये, ब्रह्मपद को वह शीघ्र पाये।

दो0 – स्माधी में जब स्थिर हो, ब्रह्मज्ञानी साध ।
ब्रह्मरूप वह होय कर, लेत मोक्ष आराध ।। 2691क
प्रभु जी का उपदेश यह, श्रवण करो मम मीत ।
यह जीवन है मोक्ष हित, रहे सदा प्रतीत ।। 2691ख
रहे सदा प्रतीत यह, दुर्लभ मानव देह ।
भक्ति योग से मिलत है, मुक्ती बिन संदेह ।। 2691ग

भक्ति योग जिस जन अपनाया, जीवन जिस न व्यर्थ गंवाया।
देह व गेह का मोह विसार, प्रभु पद से जिस कीना प्यार।

धर्म कर्म जिस सकल समर्पे, प्रभु पद पर ही सब कुछ अर्पे ।
प्रभु की केवल शरणं गाहे, दैवी सम्पद को ले गाहे ।
सब पापों से मुक्त वह होय, प्रभु–पग–रज को जन संजोय ।
त्यागे सकल जो निज अभिमान, प्रभु किरपा को दे अधिमान ।
प्रभु के आश्रित ही रह पाय, अभिमान लेश न मन में लाय ।
प्रभु का ही हो चित्त में वास, प्रभु उच्चरे हर जिसका श्वास ।
प्रभु समर्पे तन मन धन जोय, ग्लानी लेश न जिस चित्त होय ।

दो0–ऐसा प्रभु का ध्यान जो, करता निशिदिन मीत ।
मोक्ष मिले उस जीव को, जान सुगम यह रीत ।।2692

13. अभिमान से कैसे बचें ?

सुनकर 'सेवक' का उपदेश, एक भक्त कहा हे हृदयेश ।
जीव कर्म को जब कर पावे, तन मन उसमें जभी लगावे ।
जिमि उपजे नहीं मन अभिमान, ऐसा दीजिए हमें ज्ञान ।
सुनकर भक्त का शुभ विचार, 'सेवक' सिमरा प्रभु इक बार ।
सिमर प्रभु को मिलता ज्ञान, नहीं तो जन रहता अनजान ।
प्रभु का रूप मनहिं जब आये, तेज प्रभु का बुद्ध समाये ।
भ्रांत मती तब हो सब दूर, उपजे चित्त में ज्ञान का नूर ।
प्रभु जी मन में जो बतलाया, 'सेवक' उत्तर वह दे पाया ।

दो0–जो बतलायें स्वयं प्रभु, वह हो साचा ज्ञान ।
इस ग्रंथ में जो लिखा, प्रभु का वह सब दान ।।2693क

दान प्रभु ने जो दिया, पढ़ें सुनें सब लोग ।
बहुत अनोखा दान यह, पूरण जिस में योग ।।2693ख
पूरण जिस में योग है, लें सभी जन जान ।
ऐसा ग्रन्थ उतार कर, कीना जग कल्याण ।। 2693ग

कहा 'सेवक' ने हे मम मीत, धार के प्रभु को अपने चीत ।
निज प्रश्न का उत्तार पाओ, संशय मन का सकल दुराओ ।
जो करे नहीं जन अभिमान, हम जानें उसे साचा ज्ञान ।
जो कर्ता निज को जन माने, व अभिमान को मन में आने ।
वह जगत में रहे अज्ञानी, वह तो निर्बुद्धी अभिमानी ।
उस को वास्तव में नहीं ज्ञान, इस कारण करता अभिमान ।
कर्म जगत में जो हो पाये, उस के कारण पाँच बताये ।
मानव केवल न है कारण, क्यों करे अभिमान अकारण ।

दो० – जन अहंकारी न भये, निज को सब कुछ मान ।
पांचों कारण जान कर, त्याग देय अभिमान ।। 2694क
एक भक्त ने तब कहा, नाथ बतायें स्पष्ट ।
किन कारण को जानकर, अहंभाव हो नष्ट ।। 2694ख

कौन से कारण हैं वे नाथ, जिन्हें जान जन बने सनाथ ।
राखें जो अभिमान से मुक्त, और रहे मन योग में युक्त ।
सुन कर उस की वह जिज्ञास, 'सेवक' कही तब बात जो खास ।

कहा 'सेवक' ने लो तुम जान, कर्म के कारण पांचों मान[1] ।
कर्ता उन में इक है भाई, दूसर है इस्थान कहाई ।
तीजा साधनों को लो जान, पृथक पृथक जो बहु लो मान ।
चौथा चेष्टा का है रूप, प्रकट भये जो विविध स्वरूप ।
पंचम दैव को कारण मान, कर्म न सब इन बिन तुम जान ।

दो० – यही पांचों प्रधान हैं, पांचों हैं प्रवाण ।
पांचों से ही जगत के, कारज होते जान ॥ 2695

पांचों के बिन कुछ नहीं होय, कर्म के कारण पांचों सोय ।
पांचों मिल सब करते काज, जग में पांचों का ही राज ।
अब हम तुम को यह बतलायें, स्पष्ट रूप से सब समझायें ।
इन पांचों का प्रभाव महान, अहं मिटे जन ले जब जान ।

(क) अधिष्ठान

भये कर्म जिस भी इस्थान, स्थान की उस पर छाप महान ।
जीव जगत में हम बहु पायें, स्थान भेद से भिन्न लखायें ।
बीज बोओ जो भिन्न स्थान, मिले उपज में भेद महान ।
स्थान कर्म का कारण एक, भूले जन नहीं इसको नेक ।

दो० – भूलें न हम बात यह, कारण महत स्थान ।
कर्ता के अधिकार से, बाहिर इसको जान ॥ 2696क

---

[1] देखें श्रीमद्भगवत् गीता XVIII. 14
कर्म के पांच कारण हैं – (1) अधिष्ठान, (2) कर्ता, (3) करण, (4) चेष्टा, (5) दैव ।

(ख) कर्ता

कर्ता कारण दूसरा, किसी कर्म का मान ।
मानें कारण मुख्य यह, करें न पर अभिमान ।। 2696ख

(ग) करण

तीजा कारण लो अब जान, जिसका करण जानो अभिधान ।
करण कारण न लघु कर मान, विविध रूप इस के पहचान ।
भिन्न भिन्न यन्त्र जो हैं मीत, किस को नहीं उन की प्रतीत ।
उन बिन सके न हो कुछ काम, करण करावें कर्म तमाम ।
बिन साधन के कर्ता भाई, कुछ भी करने में असहाई ।
कर्ता करण का ले आधार, अतीव कठिन भी कर ले कार ।
तरे समुद्र चढ़े आकाश, तम में सकता कर प्रकाश ।
भयंकर शत्रु करत अधीन, आधार करण का ले प्रवीण ।

दो0 – करण का आधार लेय, कठिन करें जन काम ।
क्यों करें अभिमान फिर, निज को सब कुछ मान ।। 2697क

(घ) चेष्टा

चौथा कारण और है, उसको भी लें जान ।
उस का महत्व जान कर, दूर भये अभिमान ।। 2697ख

चेष्टा उसका है अभिधान, नाना विध उसको लो जान ।
कर्म कुशलता चेष्ट कहाये, इक से इक जन कुशल हो पाये ।
पूरण कुशल न जन जग माहीं, मान करे जो अपने ताहीं ।

इसी बात को ले जब जान, निरहंकारी होय पुमान ।
पूर्णता की सीमा भगवान, इसे जाने सो होय सुजान ।

(ङ) दैव

सकल कर्म जिसके अधीन, पंचम कारण वही लो चीन ।
दैव उसी को कहते मीत, देवों का अधिदेव यह रीत ।
दैव बने उसे तब सहायी, कर्म करे जो निज मन लाई ।

दो0-पांचों कारण कर्म के, करते कर्म तमाम ।
अहंकार को त्याग दें, भूलें न कभी राम ।। 2698

निरभिमानी सत्य पहचाने, कर्म के कारण भी वह जाने ।
देश काल की करे पहचान, कर्म करे मर्यादा जान ।
फिर वह साधन सकल जुटाये, यत्नशील रह ना घबराये ।
हानि लाभ में रहे समान, दैव की इच्छा को पहचान ।
दैव निर्णायक है मम मीत, कर्म का फलदायक यह रीत ।
वह पहचाने कर्म का सार, और जो कर्ता का अधिकार ।
कर्म का फल वही दे पाये, इसमें लेश न भ्रान्ति लाये ।
जन तो भ्रान्तमती हो जाये, कदापि दैव न धोखा खाये ।

दो0-धोखा लगे न दैव को, नाप तोल कर देय ।
आछल पाछल लखि सब, कर्ता को फल देय ।। 2699क
कर्ता चाहे बहुत कुछ, यह उसका अभिमान ।
उतना ही उसको मिले, जितना हक हो जान ।। 2699ख

जिस किसी के कर्म हों जैसे, फल मिलें उसको सभी वैसे ।
कर्म पै कर्ता का अधिकार, दैव का फल पै है अधिकार ।

स्वतन्त्रता से करो सब काम, भूलो न कभी राम का नाम।
फल की इच्छा चित्त न लाय, स्वीकार करे जो कुछ मिल पाय।
अमरित सम उसको सब लागे, सुख सम्पद में वह जन पागे।
अभिमानी जन न सुख को पाय, चित्त में चिन्तित ही रह पाय।
हर इक कर्म में लो यह जान, इह पांचों को कारण मान।
फिर अहंकार न आये पास, सत्य पै जन को हो विश्वास।

दो0 – सत्य बात जब मन बसे, अहंकार हो नास ।
निरहङ्कारी साध को , मिलत है सिद्धि खास ।। 2700क
सुनकर इस उपदेश को, मन सभी के मोद ।
निकसा उनके मुखन से , हमें मिला बहु बोध ।। 2700ख

बहुत बोध है हमने पाया, कर्मन का गुरु रहस बताया।
कर्म के हेतु हमने जाने, पांचों कारण हम पहचाने।
सबका जान के सम प्रभाव, उपजे न अहंकार का भाव।
निरहङ्कारी जन सुख पावे, अहंकारी जन मुँह की खावे।
आज मिला हमें पूर्ण ज्ञान, समझा हमने सह प्रमाण।
भूलेगा नहीं यह उपदेश, स्मरण रहेगा हमें हमेश।
कर्ता बन सब कर्म करावें, प्रभु को पर न भूलन पावें।
प्रभु प्रेरक व फल प्रदाता, सब साधन का वही विधाता।

दो0 – दैव विधाता कर्म का, मिला आप से ज्ञान ।
अहं बीज है नाश का, यह भी लीना जान ।। 2701

14. दानि-शिरोमन श्री प्रभु रामलाल

सुनकर सेवक उनकी बात, कहा सुनो तुम मेरे तात ।
जो बात तुम कथन में लाई, वह बसी मम चित्त है भाई ।
भूल प्रभु को किस सुख पाया, सुखी वही जो शरण में आया ।
प्रभु स्वामी हम सेवक दीन, प्रभु ने सुख संपद सब दीन ।
प्रभु से ध्यान ज्ञान भी पाया, प्रभु किरपा से नाशी माया ।
ऐसा स्वामी कौन उदार, सेवा बिन जो राखे द्वार ।
कुपात्र को भी पात्र बनावे, द्वार आये को न ठुकरावे ।

दो0-द्वार आये जो दीन जन, जग ठुकराया होय ।
प्रभु लगायें निज चरण से, पात्र बनावें सोय ।। 2702

पाते हैं जिस गति को ज्ञानी, प्राप्त करें जिस गति को दानी ।
फल पायें जो कर्मी वीर, कर्म परायण मानव धीर ।
परम वैरागी जन जों होय, जिस फल को है पाता सोय ।
प्रभु सेवक वह फल पा जाय, प्रभु की किरपा उसे लखाय ।
परम उदार प्रभु जी दानी, सेवक जन के वे कल्याणी ।
श्रद्धा से जो प्रभु पुकारे, उस के कारज सुधरें सारे ।
दानिजनों के प्रभु शिरोमन, एक बार जो मांगे को जन ।
उस को प्रभु जी करत निहाल, रंक से नृप बने तत्काल ।

दो0-दानि-शिरोमन हैं प्रभु, राम लाल गुरु देव ।
सब देवों से वे बड़े, करें उन्हीं की सेव ।। 2703क

कर्म जाल में जन पड़ा, भोगे दुःख महान ।
प्रभु को केवल सिमर कर, मिलता जन को त्राण ।। 2703ख

मिलता दुख से त्राण है, प्रभु कृपा से मीत ।
इस हेतु जन सदा करे, प्रभु चरणों से प्रीत ।। 2703ग

प्रभु ने किस पै दया न कीनी, मुलखराज निज मुख कह दीनी।
जिस जिस को प्रभु पार लगाया, संकट से उन जिसे बचाया।
चन्द्रमोहन सब कीन बखान, प्रभु दिया जिसे दया का दान।
ब्रह्मचारी गोपालानन्द, बखान किया उस भी सानन्द।
प्रभु अहैतुक होयें कृपाल, भक्तों पर प्रभु सदा दयाल।
भक्तिभाव जिस के चित्त होय, प्रिय लगे जन प्रभु को सोय।
भूलनहार जीव है भाई, प्रभु की सुधि वह देत भुलाई।
प्रभु न संग को फिर भी त्यागें, दीन दयाल दया में पागें।

दो0 – दीन दयाल दयानिधि, दीन जनों के मीत ।
भक्ति भाव जब मन बसे, होत प्रभु से प्रीत ।। 2704

स्नेह से स्मरण करें हम राम, प्रभु का रूप सुखों का धाम।
प्रभु के वचन मधुर मन लागें, सब दोष हम चित्त के त्यागें।
निर्बल के प्रभु बल हैं मीत, करो सदा उन से तुम प्रीत।
निसहाय के सखा वे भाई, करो सदा प्रभु चरण मिताई।
निसंबल के वे संबल जान, करो सदा प्रभु के गुणगान।
निभागों के प्रभु खुद हैं भाग, हे मन उन को कभी न त्याग।

गुणहीनों के वे ही हैं गुण, हे मीत तू ध्यान से सुन ।
गाहक वही गरीब जनों के, गहो चरण तुम राम प्रभु के ।

दो0–राम प्रभु के चरण गह, कर न चित्त उदास ।
राम मिलें, सबही मिलें, दृढ़ रख निज विश्वास ।। 2705क
दृढ़ रख निज विश्वास तू, प्रभु हैं तेरे साथ ।
पगपग पर वे साथ हैं, थाम प्रभु का हाथ ।। 2705ख

अकुलीन के वे कुल हैं भाई, दीन जनों के वही सहायी ।
भूखों के हैं मायी बाप, निराधार के आश्रय आप ।
भवसागर के तू सेतु जान, सुखसागर के हेतु पंहचान ।
ऐसे रामलाल भागवान, जिन का हम हैं करते ध्यान ।
पतित जनों को करते पावन, धर्ममेघ के भादों सावन ।
चरणामृत दे 'सेवक' तारा, कलि में रामलाल अवतारा ।
रामलाल का धरे जो ध्यान, मिले उसे भीतर ही ज्ञान ।
स्मरण करें सब प्रभु का रूप, साधन योग का पथ अनूप ।
साधन योग की यदि जिज्ञास, प्रभु का ध्यान उत्तम अभ्यास ।

दो0–राम प्रभु का ध्यान ही, जान योग अभ्यास ।
सिद्धि सद्य ही मिलत है, 'सेवक' का विश्वास ।। 2706

हे राम मुझ सा नहीं कोई, दीन मलीन विषय रस बोई ।
तुम समान नहीं को कृपालु, दीन जनों पर सदा दयालु ।
तव भक्ति त्रय ताप निवारे, ऋषी मुनी इमि गावत सारे ।

बिन सत्संग न भक्ति होई, प्रभु कृपा से मिलत है सोई ।
जिस पर प्रभु की कृपा होई, सत्संगति पावे नर सोई ।
सत्संगति से प्रभु मिलाप, सत्संगति का महाप्रताप ।
सत्संगति से प्रभु पग प्यार, सत्संगति भक्ती आधार ।
प्रभु किरपा गुरु संग मिलाया, किस विध वरणूँ प्रभु की दाया ।

दो० – प्रभु की दया न कथ सके, 'सेवक' परम मलीन ।
किरपा जिन की से मिले, गुरु, जिन शरणी लीन ।। 2707क
प्रभु की दया न कथ सकूँ, जन – स्नेही दयाल ।
जिन की करुणा से तरे, दीन हीन सब काल ।। 2707ख

बिन कारण के वें उपकारी, रामरती उन नारी तारी ।
हिंसा शील भयंकर नागे, दया न जिन के मन में पागे ।
उन पर भी उन कीनी दाया, क्या समझे को प्रभु की माया ।
वृद्धा नागिन थी बीमार, पीड़ा से थी वह लाचार ।
उस का पाप न प्रभु विचारा, उस का कष्ट तुरंत निवारा ।
पाप मेरे भी प्रभु विसारे, गिने दोष मेरे न सारे ।
दीनानाथ दया कर पाये, अघ मेरे उन सकल भुलाये ।
निज भक्ति का दीना दान, दया निधी की दया महान ।

दो० – दयानिधि की भक्ति से, जो सुलभ सुखदाय ।
भक्त अनेकों हैं तरे, सद्गुरु कृपा पाय ।। 2708

भक्ति प्रभु है सुलभ बखानी, और परम सुखदायी मानी ।
तीन ताप जग में जो गाये, और शोक जो सकल लखाये ।

जिन के भय से जन डर पावें, भक्ति करें वे निकट न आवें ।
ऐसी भक्ति मिले उस जन को , युक्त करें गुरु जिसके मन को ।
गुरु अपनावें जिस कों भाई, भक्ति अवश्य मिले सुखदायी ।
गुरु मिलें पर उसको मीत, प्रभु मिलन की जिस मन प्रीत ।
सद्गुरु दर्शन और स्पर्श, प्रदान करत अलौकिक हर्ष ।
सद्गुरु संग सुखों का मूल, जन्म जन्म के हरे वह शूल ।
ऐसा सद्गुरु तब मिल पाये, प्रभु की किरपा जब हो जाये ।

दो0–प्रभु किरपा जब होत है, मिलते हैं सद्गुर ।
सद्गुरु जब प्रसन्न हों, प्रभु दर्शन न दूर ।। 2709

हे मन समझ सके तो जान, गुरु व प्रभु हैं एक समान ।
दिव्य शक्ति जो गुरु घट मीत, करे जो जन उस की प्रतीत ।
समझ सके वह ही यह भेद, बिन समझे न मिटता खेद ।
यह तू समझ पत्थर की लीक, मत जानो तुम इसे अलीक[1] ।
प्रभु का ज्ञान मिले बिन मीत, दूर होत नहीं जग की भीत ।
गंगा पर भी रहत प्यासा, सुरतरु से नहीं पूजे आसा ।
जागत सोवत सुख न पावे, जन्म जन्म जन धक्के खावे ।
छूटन चाहे बांधा जावे, यत्न किसी भी कार नं आवे ।
अमृत भोजन भये विषैला, प्रभु सिमरन बिन सभी घोटाला ।

दो0–राम प्रभु को सिमर मन, चाहे यदि कल्याण ।
जिस मन में न राम होंय, वह मन तो सुनसान ।। 2710

[1] अलीक – असत्य ।

साध संग है सुरतरु भाई, प्रभु सिमरन सब को सुखदाई ।
त्रिविध ताप हरे प्रभु ध्यान, प्रभु सिमरन बिन मिले न ज्ञान ।
कामना सब करे यह पूरी, रहे न इच्छा लेश अधूरी ।
पुण्य कमल का पुण्य सरोवर, शुभ कर्मों का यही धरोहर ।
लाभ का भी लाभ है भाई, सुख को भी है यह सुखदाई ।
मोद को भी यह मोद प्रदाता, प्रभु ध्यान सम न को दाता ।
भय को भी भय है भयदायी, शरण पड़े को परम सहायी ।
नीच ऊँच का यहां न भेद, शंसत इस को सकल हैं वेद ।
सुलभ सुखद सुपुण्य सुहावन, प्रभु ध्यान सम कर्म न पावन ।
वेद पुराण सब कहें पुकार, प्रभु का ध्यान देवे फल चार ।
धर्म अर्थ और तीजा काम, मोक्ष प्रदायी प्रभु का नाम ।

दो0 – जपत प्रभु का नाम न, और न करता ध्यान ।
मानव तन में है बसा, मूढ़ जीव वह जान ।। 2711 क
हे मन अब तू चेत कर, पाया मानव देहं ।
क्यों भूला संसार में, झूठा जग का नेह ।। 2711 ख
राम राम तू सिमर ले, सिमर सिरफ तू राम ।
रहे भरोसा राम पै, राम संवारें काम ।। 2711 ग
योग युक्त इस विध रहो, अष्ट पहर सब काल ।
जीभ रटे तव राम को, मन में राम हो लाल ।। 2711 घ
तेरा मन पपीह सम, मेघ राम का ध्यान ।
राम कृपा है स्वाति सम, इस में ही सुख मान ।। 2711 ङ

योग बिना सब साधन, सरित कूप सम जान ।
मन पपीहा न करे, उन के जल का पान ।। 2711 च
मेघा वर्षे पाषान भी, गर्जे तर्जे आन ।
पपीहे की परीत जो, उस में लेश न हान ।। 2711 छ
यह तो कठिन परीक्ष है, त्यागे न निज नेह ।
हे मन तू यह सीख ले, प्रभु पग बढ़े स्नेह ।। 2711 ज
प्रभु दें दुःख हज़ार भी, संकट कोटि होय ।
प्रभु प्रभु ही चित्त रटे, योग युक्त रह सोय ।। 2711 झ

हे मन नहीं कभी तू भूल, प्रभु सिमरन बिन जग है शूल ।
प्रभु कृपा नहीं यदि तू पाय, अमरित भी विष सम हो जाय ।
कल्प तरु तुझे दारिद देय, कामधेनु से शाप ही लेय ।
जागत सोवत नहीं सुख पाय, जन्म सकल तव दुःख में जाय ।
छूटन हित जो करे उपाय, बन्धन कारण वही हो जाय ।
तीन काल तू मनहिं विचार, प्रभु सिमरन बिन नहीं उपचार ।
प्रभु ही जिन की गति है मीत, प्रभु ही जिनकी मति है मीत ।
प्रभु पग के जो हों अनुरागी, जग माने उनको बड़भागी ।

दो०–प्रभु प्रेमी जो हो गये, और जो हैं इस काल ।
प्रभु प्रेमी जो होयेंगे, उन पै प्रभु दयाल ।। 2712क
सब साधन की साध यह, प्रभु पग लिव जो लाग ।
'सेवक' का प्रभु चरण में, रहे सदा अनुराग ।। 2712ख
एक भक्त ने श्रवण कर, कही स्वमन की बात ।
"प्रभु सिमरन से हे प्रभो, सुख मिलत साक्षात ।। 2712ग

15. श्री प्रभुजी के चरणों के ध्यान में मन कैसे स्थिर हो ?

आप हमें अब और सुनायें, प्रभु ध्यान की बात बतायें।
जिस विध चित्त रहे प्रभु शरण, श्रद्धा सहित गहे प्रभु चरण।
करें सदा प्रभु का गुण गान, हम दासों का हो कल्याण।
ऐसी कोई बतावें रीत, प्रभु चरणों में बढ़े जो प्रीत"।
सुनकर उसके जो था चीत, सेवक कथन किया "हे मीत।
मैं वन्दौं वे प्रभु पग भाई, भव बन्धन जिससे कट जाई।
ब्राह्मण कुल जिन लीन अवतार, योग से कीना जग उद्धार।
नारद शारद और महेश, जिनके गुणगाण गायें अशेष।
ब्रह्मा विष्णु और सब देव, रहें सदा जिनकी ही सेव।
परब्रह्म सद्गुरु के रूप, सहस्र कमल में बसते गूप।

दो0–सहस्रदल में जो रहें, निर्मल देवें ज्ञान।
उसी प्रभु को सदा भजूँ, इसमें ही कल्याण ॥ 2713

भव बन्धन अज्ञान जो भाई, प्रभु ध्यान से मिट वह जाई।
जटाजूट में प्रभु वीराजें, जन के सहस्त्र दल में साजें।
भक्तजनों के वे हितकारी, रामरती थी उनने तारी।
ध्यान भजन के वे प्रदाता, गुणगाण जिनके जग सब गाता।
हरिहरानन्द जिस उबारा, 'सेवक' का बस वही सहारा।
रामा को जिस सिद्धी दीनी, दया उसी की 'सेवक' चीनी।
बुढ़िया के जिस प्राण बचाये, 'सेवक' उसका रूप ध्याये।
नर्बदा के जिस तीर्थ कीने, दर्शन मुनी जनों को दीने।

उसका दर्शन 'सेवक' पाये, अन्तर में जब ध्यान लगाये ।

दो0–प्रभु किरपा ही ध्यान को, दृढ़ करे मम मीत ।
अति चञ्चल सब जानते, रहे न वश में चीत ।। 2714क
जटाजूट में प्रभु लसें, मन मेरे में मीत ।
दया प्रभु की महान है, मुझ को यह प्रतीत ।। 2714ख

प्रभु कृपा से ध्यान को पाया, प्रभु कृपा से चित्त वश आया ।
प्रभु कृपा से सद्गुरु पाया, ज्ञान मिला संदेह नशाया ।
प्रभु कृपा से नर तन पाया, मोक्ष का मार्ग प्रभु लखाया ।
प्रभु कृपा से प्रभु का रूप, चित्त में दृढ़तर भाया अनूप ।
यह भी भास कराया नाथ, तब तक भटकत जीव अनाथ ।
जब तक प्रभु चरणों का ध्यान, भये न दृढ़ बन चित्त में आन ।
भय जगत का न मिट पाये, यदि न मन प्रभु मूर्त समाये ।
जूट जटा प्रभु रूप प्यारा, श्वेत वेश भी उन का न्यारा ।
मन बसे जब रूप वह आई, चक्र चौरासी तब नसाई ।

दो0–जग का चक्र तभी मिटे, प्रभु बसें जब चित्त ।
प्रभु किरपा से इमि भये, और न किसी निमित्त ।। 2715

इस तन का मैं फल यह मानूँ, प्रभु रूप को चित्त में आनूँ ।
सफल भये तब जीवन मेरा, व्यर्थ परिश्रम इस बिन तेरा ।
हे मन रहकर सदा सचेत, सिमर प्रभु तू मोक्ष के हेत ।
प्रभु रूप तुझे लागे प्यारा, जागत सोवत वही सहारा ।

तुरिया में यह ही ले जाये, ज्योति में वहां ज्योत समाये।
रूप प्रभु हो सन्मुख तेरे, प्रभु सिमरन बिन दुख घनेरे।
प्रभु के दिव्य रूप को देख, और अलौकिक शक्ति पेख।
हे मन ! सदा रहे तव वास, प्रभु चरणों में सह विश्वास।

दो0 – प्रभु चरणी विश्वास जो, यह जीवन की रास ।
धन सम्पद वा सुख यही, यही ज्ञान है खास ।। 2716

देख प्रभु को वनहिं विराजे, सद्गुरु महा प्रभु संग साजे।
महासिंह जब गुफा में आया, राम प्रभु ने उसे भगाया।
उसी राम को करके याद, नशे सकल तब जगत विषाद।
राम अवतारी गुरु अधीन, सन्मुख गुरु के परम वे दीन।
गुरु प्रति कर यही दृढ़ भाव, निरभिमानी भये स्वभाव।
गुरु पग रज हो तव शृंगार, चित्त बसे न कभी अहंकार।
अघोरी ने था प्रभु छकाया, मेंढकी का जलेब बनाया।
सद्गुरु महाप्रभु तभी आये, प्रभु अवतारी उठ कर धाये।
हे मन दृश्य अलौकिक सारा, तुम ने क्या है इसे विचारा।
लीला बहुत प्रभु जी कीनी, भक्त जनों ने जो है चीनी।
उस का करेगा जब तू ध्यान, तभी मिलेगा प्रभु का ज्ञान।

दो0 – ज्ञान प्रभु का पाय कर, मुक्ति को ले साध ।
लीला प्रभु की निरख ले, शक्ती प्रभु अगाध ।। 2717

ध्यान प्रभु का तिमिर संहर्ता, मन मदांध को वश है करता।
ध्यान प्रभु का अंकुश जानो, चित्त को मस्त गजेन्द्र मानो।

बिन अंकुश न गज वश आवे, ध्यान बिना न चित्त टिक पावे ।
प्रभु का ध्यान वनराज[1] समान, मन गजराज[2] का हंता जान ।
घनघटा जो ध्यान की आये, मन मयूर पै मस्ती छाये ।
जगती की सुध बुध वह भूले, प्रभु प्रीत में झूला झूलें ।
प्रभु का ध्यान उस मन्त्र समान, फनियर को करे वश जो आन ।
प्रभु का ध्यान पाश वह चीन, जिस में आ फंसे मन मीन ।
चंचल मन वश में तब आये, प्रभु चरणों में जब लग पाये ।

दो0–प्रभु चरणों में जब लगे, मन चंचल मम मीत ।
चंचलता को त्याग कर, टिके वहीं सप्रीत ।। 2718

हे मन अब तू सोच ज़रा, कब तक रहेगा विषरस भरा ।
क्रोध काम मद लोभ आगार, तू तो विष का पयोध अपार ।
अहंकार का यहां तोफान, प्रलय का दृश्य बनावे आन ।
कबहुँ तू विश्राम न पाया, भ्रमत भ्रमत सुख सब विसराया ।
विषयों के संग रह दुख पाया, फिर भी रहे वहीं अरुझाया ।
अतुल शक्ति तुझे प्रभु ने दीन, इन्द्रियों के क्यों रहे अधीन ।
निज शक्ति को तू पहचान, परास्त भयें तव रिपु महान ।
तेरे तो हैं सभी अधीन, बना तू क्यों है इतना दीन ।

दो0–शक्तिशाली तू बड़ा, ज्ञानवान भी मीत ।
प्राणों का भी प्राण तू, यह दुर्गत किस रीत ।। 2719

[1] वनराज – सिंह ।   [2] गज़राज – हाथियों का राजा ।

समझ लेवो तुम इस का सार, त्यागा तुम ने प्रभु आधार ।
माया को तू लीना थाम, दिन की छाया रहे न शाम ।
नश्वर का जो लेय सहारा, उसे न मिलता पार किनारा ।
मंझधार ही वह बह जाय, कोई न आ कर उसे बचाय ।
हे मन संभल संभल़ तू मीत, केवल प्रभु से कर ले प्रीत ।
राम प्रभु है हाथ बढ़ाया, यदि न उस को पकड़ तू पाया ।
बह जायेगा जग की धार, कभी न लागेगा तू पार ।
प्रभु दयालु स्वयं हैं आये, दीन दयाल दया कर पाये ।
उन पर करके दृढ़ विश्वास, चरण पकड़ कर बन जा दास ।
आनाकानी आये न काम, भाग्य से मिले हैं तुम को राम ।
बारंबार न जग में आयें, युग अनेकों बीत ही जायें ।

दो0–युग अनेकों बीतें जब, प्रभु तभी जग आयें ।
भाग्यवान जो जीव हों, उस काल उपजायें ।। 2720

सुन कर एक भक्त कह पाया, "यह उपदेश है बहु सुहाया ।
मेरा मन पर हठ न त्यागे, रात दिवस विषयों में पागे ।
उस का ऐसा हठी स्वभाव, असर करे न कोई सद्भाव ।
बारबार वह मुँह की खाय, फिर भी भागा वहीं पै जाय ।
मन तो उस कुत्ते की नाईं, जूत पड़ें फिर भी तहं जाईं ।
शरम उसे न लेश भी आये, लोभ उसे पुनः ले जाये ।
लोलुप मन का यही हवाल, किसी विध नाथ ! करें संभाल ।
कर कर यत्न तो मैं हूँ हारा, दीखत न अब कोई सहारा ।

करें आप ही इस पै दाया, मुझे तो इस ने बहुत सताया ।

दो0 – मुझे सताया है इस, नाथ कहूँ क्या बात ।
रात दिवस पाछे पड़ा, दुखी किया इस गात ।। 2721 क
ऐसा चंचल चित्त यह, विषयों से भरपूर ।
इसमें बसता लोभ है, क्रोध व काम ग़रूर ।। 2721 ख
इन से छूटन हेत जी, कहिये आप उपाय ।
जीवन मेरा नाथ जी, तभी सुखी हो पाय ।। 2721 ग
चित्त करे शैतानियां, पकड़ न मेरे आय ।
जब चाहूँ मैं बांधना, भाग कहीं वह जाय ।। 2721 घ
ऐसा नटखट है चित्त, उपमा न मिल पाय ।
सोच सोच कर नांथ जी, बुद्धि मम चकराय ।। 2721 ङ
आप योग हैं जानते, मन वश करने हेत ।
को सा गुर बतलाइये, सुनुँ मैं होय सचेत" ।। 2721 च
इच्छा उसकी जान कर, 'सेवक' कीन विचार ।
बात सत्य इसने कथी, मन समक्ष है हार ।। 2721 छ
मन की जग में जीत है, और सबन की हार ।
विरला ही को जगत में, जो सका मन मार ।। 2721 ज
क्या बतलाऊँ मैं इसे, मैं भी सर्व समान ।
जब मैं जाता हार हूँ, प्रभु बचाते आन ।। 2721 झ
सत्य बात तब मैं कही, राखी नहीं दुराव ।
हे बन्धो ! हम सबंन का, दुर्बल बहु स्वभाव ।। 2721 ञ

मैं तो जब हूँ हारता, गहूँ प्रभु के चरण ।
दीन बन्धु प्रभु राम जी, तभी लेत निज शरण ।। 2721ट

प्रभु चरणों का चिन्तन मीत, मन वश करन की सुन्दर रीत।
वेदादि सब ग्रंथ उचारें, प्रभु का रूप सदा मन धारें।
मन की थिरता हेत उपाय, भूल जगत जन प्रभु को ध्याय।
अन्य उपाय बहु कामं न आवें, प्रभु किरपा से सिद्धि पावें।
जिस को मन में ब्रह्मा ध्यावे, शंकर भी जिस का गुण गावे।
शुक सनकादि जो विचरें मुक्त, जिस के ध्यान में रहते युक्त।
प्रभु राम लाल वही सर्वेश, उन का ध्यान हम करें हमेश।
योग का समझो यह ही सार, प्रभु के चरण लो मन में धार।

दो0 – प्रभु चरणों को धार लो, मन में मेरे मीत ।
प्रभु शक्ति से थिर भये, रहे न चंचल चीत ।। 2722

चित्त के सम अस्थिर ही जानें, लक्ष्मी को सब चञ्चल मानें।
लक्ष्मी जब प्रभु चरणन पाय, स्थिर वास वहां कर दिखलाय।
प्रभु चरणन तिमि हम मन धारें, मन की चंचलता को टारें।
प्रभु चरणन हर विध सुखदायी, भक्त जनों ने महिमा गायी।
जिस जन मन है प्रीत समाई, उस जन ने ही स्थिरता पाई।
मीरा सूर तुलसी विख्याता, रोम रोम था प्रभु गुण गाता।
प्रभु चरणों को जब उन ध्याया, मन की स्थिरता को तब पाया।
रामा ने भी मन में ध्याये, प्रभु चरण जब उसे मिल पाये।

दो0–प्रभु चरणों का ध्यान धर, रामा का मन लीन ।
प्रभु चरणों के पाश में, मन बंधा बन मीन ।। 2723क
मुलखराज का चित्त भी, स्थिर भया मम मीत ।
प्रभु चरणों को पाय कर, अटल भयी थी प्रीत ।। 2723ख
हरानन्द को हो गया, प्रभु चरणी जब प्रेम ।
त्याग जगत, उसका भया, समाधि का दृढ़ नेम ।। 2723ग

सुन गोपालानन्द का हाल, प्रभु कृपा थी भयी जिस काल ।
जागृत भया प्रभु चरणि प्रेम, मिला प्रभु से योग और क्षेम ।
अखण्ड समाधि उसने पायी, प्रभु प्रेम की है प्रभुताई ।
थी दुख सुख की सुधी भुलाई, प्रभु के भजन में ही लिव लाई ।
शीत व घाम न उसे व्यापे, कीर्तन में प्रभु नाम अलापे ।
प्रभु के रहत रंग में राता, उस का नग्न शीत में गाता[1] ।
प्रभु प्रीति की यही बढ़ाई, प्रभु में हो मन वृत्ति स्थायी ।
बन सके नहीं बाधक कोई, तन के दुख का भान न होई ।

16. श्री मुलखराज जी तथा अन्य भक्तों की प्रभु कृपा से ध्यान अवस्था

दो0–प्रभु प्रीत जब मन बसे, शक्ति चित्त संजोय ।
जग के सुख दुख का तभी, असर न मन पर होय ।। 2724क
ऐसा ही तुम जान लो, मुलख राज का हाल ।
प्रभु प्रेम जब मन बसा, सके न तन संभाल ।। 2724ख

[1] गात–शरीर । गोपालानन्द सर्दियों में भी मस्ती की अवस्था में नग्न रहता और वस्त्र न ओढ़ता ।

देह गिरा तो गिर गया, लगी चोट सो लाग ।
ध्यान प्रभु के चरण में, देह की न संभाल ।। 2724ग

प्रभु पास जब मुलख था आता, मार्ग चलता झूमता गाता ।
प्रभु की शक्ति उसे संभाले, बिन टक्कर व ठोकर चाले ।
प्रभु के दर जब आ वह पाता, बाहिर ही तन था गिर जाता ।
सेवक देह उठा कर लाते, और प्रभु के चरणि लिटाते ।
प्रीत की ऐसी मन में पीर, प्राण त्यागत तुरंत शरीर ।
प्राण-नाथ के पास प्राण, त्याग देह को पहुंचत आन ।
समझ लेवो तुम अब मम मीत, प्रीत की योग में जो है रीत ।
प्रीत बिना नहीं ऐसा होय, चित्त वृत्ति न स्थिरता गोय ।

दो0–प्रीत की रीति मैं कही, मन का बन्धन जान ।
बिन बंधन न मन बंधे, यह तो सरल ज्ञान ।। 2725क
सुन कर इस उपदेश को, इक सज्जन कथ दीन ।
"नाथ आप की बात को, कर श्रवण हम लीन ।। 2725ख
मन में इच्छा है भाई, सुनें आप से देव ।
मुलख राज की साधना, और प्रभु की सेव ।। 2725ग
परम भक्त गुरु देव का, मुलख राज महाराज ।
उन के जीवन की घटन, सुन पायें हम आज" ।। 2725घ

कथन करी जब उस यह वाणी, सेवक निज मन बहु सन्मानी ।
सद्गुरु मुलखराज की याद, चित्त में उपजाती आह्लाद ।

स्मृति मुलख की जब चित्त आये, मनहर दर्शन दिव हो पाये ।
मुलख की याद ईश की याद, मम मन की यह एक ही साध ।
सिमरूँ मुलख तो मन आह्लाद, उपजत मुलख को भूल विषाद ।
यही भक्ति मम यही है योग, मुलख से हो न लेश वियोग ।
जीवन की है एक ही साध, बनी रहे बस मुलख की याद ।
जीवन का है लक्ष्य यह एक, सिमरूँ मुलख को क्षण प्रत्येक ।

दो0-रहे सदा मम चित्त में, सिरफ मुलख की याद ।
यही धारणा, ध्यान यह, जानूँ यही समाध ।। 2726

सिमर मुलख को मैं कथ दीन, हे मीत तुम प्रश्न जो कीन ।
मुझ पर कीना तुम उपकार, मम मन पहुँचा सद्गुरु द्वार ।
योग हेतु जग मुलख त्यागा, भूल सकल गुरु चरणी लागा ।
अठसठ तीर्थ भये गुरु चरण, दृढ़तर दृढ़तम गही गुरु शरण ।
राम रमा जो सब जग माहीं, रामलाल था उसके ताहीं ।
सीख राम की वह सम्भाले, वेद वचन सम उसको पाले ।
सीख राम ने थी दे पाई, "बैठ नित्य ध्यान में जाई ।
एक पहर रात्री का तात, बीते ध्यान में समझो बात ।

दो0-चार पहर जो रात के, उनमें बीते एक ।
ध्यान समाधि में प्रिय, लेय प्रभु की टेक" ।। 2727

सीख मुलख ने वह अपनाई, बैठा ध्यान में रात्रि जाई ।
थकान सकल दिवस की भारी, मांगे नींद वह रात्रि सारी ।

अल्प काल दृढ़ आसन लाया, निद्रा ने आ उसे दबाया ।
बैठ सका नहीं इक वह पहर, झोंकों की थी उमड़ी लहर ।
मुलख के मन में भ़ई ग्लानी, गुरु आज्ञा की देखी हानी ।
अपनी सुस्ती को धिक्कार, सोचा उसने तब उपचार ।
चोटी के संग रस्सी बांध, खूण्टी साथ दीनी वह सांध ।
ध्यान में बैठ गया तत्काल, गुरु आज्ञा को मुलख सम्भाल ।
मीठी नींद पुनः आ पाई, झोंके ने तब कमर झुकाई ।

दो० – झोंका आया मुलख को, झुक गया तब माथ ।
लगी डोर को खींच थी, खिचे बाल भी साथ ।। 2728क
मुलख भया सचेत तब, लागा करन ध्यान ।
ग्लानी उसके चित्त में, विघ्न नींद का जान ।। 2728ख

इमी मुलख ने रात बिताई, मन में उलझन बहुत समाई ।
गुरु आज्ञा को किस विध पालूँ, निद्रा को किमि वश कर डालूँ ।
प्रात भई उठकर चल पाया, प्रभु के द्वारे मुलख था आया ।
प्रभु चरणों में माथ झुकाया, आशीर्वाद प्रभु का पाया ।
प्रभु मुलख से तभी कह पाये, अपने सर के बाल दिखाये ।
तेरे बाल जभी खिच पाये, पीड़ वही आ हमें सताये ।
तेरी रक्षा प्रभु ने कीनी, वही व्यथा थी हमको दीनी ।
आगे से इस हठ को त्याग, सहज स्वभाव से योग में लाग ।
मन का वेग नींद को बाधे, चोटी बांधन से न साधे ।

दो0 - व्यर्थ देह को कष्ट दे, प्रकृति के प्रति कूल ।
उसको सिद्धि नहीं मिले, यह नियम मत भूल ।। 2729क
मुलखराज ने यहं सुना, प्रभु जी का उपदेश ।
नेम बनाया आपना, जैसा गुरु आदेश ।। 2729ख
'सेवक' मन में धार कर, मुलख राज के चरण ।
कहन लगा सब जनन से, गहें मुलख की शरण ।। 2729ग
मुलखराज का दृढ़ नियम, और गुरु विश्वास ।
याद करें जब ला चित्त, बनें गुरु के दास ।। 2729घ
दास गुरु का जो बने, सिद्धि आये समक्ष ।
गुरु किरपा से पाय वह, निज जीवन का लक्ष ।। 2729ङ
जीवन सद्गुरु मुलख का, ज्योतिर्मय मीनार ।
उसे निरख कर जो चले, लागे भव से पार ।। 2729च

हे मित्र ! मैं और बताऊँ, मैं जिज्ञासुन को समझाऊँ ।
जिज्ञासुन के न कान अघायें, गुरु की शिक्षा को अपनायें ।
गुरु का योग शिष्य जो पाये, और गुरु का अंग बन जाये ।
उस को सिद्धियाँ मिलें अनेक, शास्त्र कथन करें प्रत्येक ।
सिद्ध पुरुष का विग्रह भाई, शक्ति का वह पुँज हो जाई ।
शक्ति का प्रति अंग स्रोत, दिव्य गुणों से ओत प्रोत ।
उस का दर्शन जो कर पाये, धन्य जन्म उस का हो जाये ।
उस से छू भी यदि कुछ जाये, उस में अद्भुत शक्ती आये ।
ऐसी घटना एक थी भाई, विकट थी विपदा जिमि टल गई ।

दो0–एक दिवस की वारता, प्रभु आसन आसीन ।
इक देवी ने आन कर, नम्र निवेदन कीन ।। 2730

हे नाथ ! मैं अभागिन नार, मेरे पति पै भूत सवार ।
मार पीट करता घर माहीं, को समझावे उस के ताहीं ।
काम काज सब छोड़ के नाथ, बैठा है धर हाथ पै हाथ ।
खान पान से हम परेशान, उस की दशा से भी हैरान ।
बात सुने न वह महाराज, हो दुखी मैं आई हूँ आज ।
अनेकों कीने हम उपचार, को भी औषध आई न कार ।
झाड़ फूँक भी सब कर देखे, वे भी लागे किसी न लेखे ।
जो भी उस के पास जा पाय, और उसे कुछ बात बताय ।
उठ कर उस को ही वह मारे, यत्न हमारे सब हैं हारे ।

दो0–तभी हार कर नाथ जी, आई तेरे द्वार ।
शरण पड़ी इस दीन को, राखो राखनहार ।। 2731क
जभी सुनी उस नार की, प्रभु जी आर्त पुकार ।
सोचन लागे नाथ जी, उस का कुछ उपचार ।। 2731ख

मन में सोच प्रभु फरमाये, उस देवी को वे कह पाये ।
तेरे दुख को सुन मैं पाया, इस का अब बताऊँ उपाया ।
मुलखराज के जाओ पास, करो तुम उस से यह अरदास ।
"निज कुर्ता हे बन्धु ! देवो, बदले में नूतन ले लेवो ।
प्रभु आज्ञा से हैं हम आये, हे बन्धो ! तुम बनो सहाये" ।
उस देवी ने मानी बात, मुलख कीना जा कर साक्षात ।

विनय कीन जिमि प्रभु बताई, मुलरव ने देर लेश न लाई ।
अपना कुर्ता तभी उतारा, उस देवी को दे वह डारा ।

दो0-शिष्य प्रभु का जो भये, मुलरव राज सा मीत ।
उसी में सिद्धि सब बसे, भये तुम्हें प्रतीत ।। 273 2क
कुर्ते को वह लेय कर, आई प्रभु के पास ।
कहा प्रभु ने तभी उसे, जाओ पति के पास ।। 273 2रव

इस कुर्ते को जा पहनाओ, लौट हमें फिर सब बतलाओ ।
प्रभु की किरपा यदि हो जाये, रोग मुक्त तव पति हो पाये ।
पत्नी गई तब पति के पास, था उन्मादी बैठा रवास ।
कुर्ता जब पहनाने लागी, तड़पा जिमि तन आगी लागी ।
जब उस कुर्ता फैंक गिराया, सब उसका उन्माद नशाया ।
प्रभु कृपा से स्वस्थ हो पाया, मुलरवराज की यह थी दाया ।
मुलरवराज का जीवन जानो, चमत्कार का पुँज पहचानो ।
स्पर्श मात्र से रोग दुरावें, दृष्टि डाल ध्यान दे पावें ।

दो0-मुलरवराज का दिव चरित, गाथ अलौकिक एक ।
श्रवण करें बहु भक्त जन, श्रद्धा से प्रत्येक ।। 273 3क
मुलरवराज को स्मरण कर, भक्त करे जो काम ।
प्रभु किरपा से सिद्ध हो, लागे न बहु दाम ।। 273 3रव

हे भक्त जन मैं बतलाये, निज सद्गुरु के चरित सुहाये।
मुझ में शक्ति नहीं मम मीत, अस्तुति करूँ गुरु की जिस रीत।
गुरु हृदय का थाह[1] किस पाया, ईश्वर तो है वहीं समाया।
दाता कोई न गुरु समान, ढूँढ के देखो तीन जहान।
तीन लोक भी खोजे कोय, गुरु समान नहीं दाता होय।
शिव वा ब्रह्मा विष्णु महेश, देवी देव कुबेर गणेश।
लोक लोकान्तर के सब देव, करते हैं वे गुरु की सेव।
जिस किसी उच्च गति है पाई, गुरु सेवा कर पाई वह भाई।

दो0–गुरु सेवा से ही मिले, दिव पदवी का दान ।
योग समाधी भी मिले, हो आत्म कल्याण ।। 2734क
एक भक्त ने श्रवण कर, प्रकटाई जिज्ञास ।
"समाधि गुरु का दान है, या यह फल अभ्यास ।। 2734ख
समाधि फल अभ्यास का, और संग वैराग ।
ऐसा हमने है सुना, हे देव महाभाग ।। 2734ग
दान गुरु किमि करत हैं, इस योग का देव ।
स्पष्ट बात हम को कहें, हमें मिले कुछ भेव" ।। 2734घ

उसकी सुन कर तात्विक बात, 'सेवक' बोला हे मम तात।
प्रश्न तुम्हारा सुन्दर मीत, सुनो योग की गुप्त यह रीत।
संस्कारी जो होते लोग, पूर्व जन्म जिन कीना योग।

[1] थाह – गहराई की सीमा

गुरु के पास जभी चलि आयें, पूर्व कमाई का फल पायें ।
शक्ति पात जब गुरु कर पायें, मार्ग से अन्तराय हटायें ।
शक्ति पात यह योग कहाय, संस्कारी जन इस को पाय ।
मुलखराज योग यही पाया, दश वर्ष उस ध्यान लगाया ।
राम प्रभु से पाया योग, मिला अध्यात्म उस को भोग ।

दो0–राम प्रभु की शक्ति से, मुलख समाधि लीन ।
वर्ष निरन्तर दश रहा, समाधि में लिवलीन ।। 2735क
[1]नन्द गोपाल भी लिया, समाधि का इमि दान ।
अमरनाथ को भी मिली, यही समाधि महान ।। 2735ख

संस्कारिजन अनेकों आयें, दान समाधी का जो पायें ।
मुलखराज भी शक्ति पाई, गुरु पदवी जब से अपनाई ।
समाधि स्थित कीने बहु लोग, शक्ति पात है उत्तम योग ।
शक्तिपात जब गुरु कर पायें, योग भ्रष्ट तब मार्ग पायें ।
जन्मजन्मान्तर का अभ्यास, फल मिले उसका फिर खास ।
सञ्चित ज्ञान प्रकट हो पाय, गुरु शक्ति सभी कुछ दिखलाय ।
गुरु कृपा जन यदि नहीं पाहीं, शुभ संस्कार दबे रह जाहीं ।
गुरु किरपा जन पै जो होय, सुकर्मों का फल तुरत विगोय ।

दो0–शक्तिपात जो योग है, गुरु कृपा वही जान ।
संस्कारी जो जीव हों, इसका लाभ उठान ।। 2736क

[1]नन्द – ब्रह्मचारी गोपालानन्द ।

मुलखराज के चरण में, रह मैं देखा मीत ।
शक्तिपात से जन भये, बहुत समाधि स्थीत ।।273 6ख

सुन कर ऐसी बात यह, भक्त एक कह दीन ।
नाथ बतावें आप ही, समाधि जिन जन लीन ।। 273 6ग

जिन भक्तों को मिलत समाधी, नष्ट भये उन की जग व्याधी।
उन के कर्म पुण्य हम मानें, भाग्यवान हम उन को जानें।
समाधि योग सबन से ऊपर, इस जैसा न सुख को भू पर।
मन व बुद्ध को सुख यह दायी, यह योग है मोक्षा प्रदायी।
उनके सकल क्लेश मिट जायें, समाधि स्थित जो जन हो पायें।
मुलखराज की दया को पाय, समाधि स्थित बहु जन हो पाय।
श्रवण करें हम आप से नाथ, समाधि पा जो भये सनाथ।
मुलखराज सद्गुरु की दाया, से जिन जनन योग को पाया।
उन भक्तन के जानें नाम, श्रवण करें और पूजे काम।

दो0–जिन भक्तन ने योग था, शक्तिपात से लीन ।
श्रवण करें हम आप से, सब यह बात नवीन ।। 2737

समाधिस्थित भक्तन को जान, हम करें नित्य प्रभु का ध्यान।
हम भी प्रभु की किरपा पायें, उन की चरण शरण में आयें।
भाग्यवान वे जीव महान, प्रभु शक्ति से पायें जो ध्यान।
चंचल चित्त है बहु बलवान, उसे न वश करना आसान।
प्रभु शक्ति का मिले आधार, तभी लागे जन भव से पार।

भाग्यवान वे सज्जन सारे, प्रभु निज शक्ती से जो तारे ।
कृपामय प्रभु दीन दयाल, शरणागत को करें निहाल ।
एक बार जो चरणी लागा, प्रभु ने उसे कभी न त्यागा ।
प्रभु के दिव्य चरणों का ध्यान, करके मुक्ति पाये सुजान ।

दो0–हमें बतायें नाथ जो, भागयवान वे कौन ।
मुलरव राज की शक्ति से, थे समाधिस्थ जौन ।। 2738क
सुनकर इस जिज्ञास को, 'सेवक' कीन विचार ।
किस किस का वर्णन करें, गुरु की महिम अपार ।। 2738ख
ऐसे भक्त असंरव्य हैं, मिला समाधि दान ।
मुलरवराज की शक्ति से, सब का न मुझे ज्ञान ।। 2738ग
गुरु महिमा फिर भी कथूँ, स्मृती में कुछ लाय ।
कहन लगा हे मीत मम, श्रवण करो मन लाय ।। 2738घ
जो देता इस दान को, उस को होता ज्ञान ।
या भक्त वही जानता, जो पाता यह दान ।। 2738ङ
मुझ अज्ञानी जीव को, है न सब प्रतीत ।
सुना था जो गुरु मुरव से, वही बताऊं मीत ।। 2738च
चांदपुरी इक भक्त थी, सत्यवती था नाम ।
भजन सुनाया प्रेम से, अपने ही उस धाम । 2738छ
सत्यवती का भजन सुन, कहा स्वामी दयाल ।
"इस की प्रीती देरव कर, प्रभु भये हैं दयाल ।। 2738ज

क्यों न इसको वर मिले, मीरा सम जो होय ।
हिरदय में प्रभु को लखे, जग की सुधि को खोय" ।। 2738झ
कहा पिता ने "नाथ जी, तव कृपा बलवान ।
राखें जिस अवस्था में, वही हमें परवान" ।। 2738ञ

स्वामी जी जब सुनी यह बात, कर दीना तब शक्तिपात ।
तुरन्त भयी वह समाधि लीन, सुधि जगत की भयी थी क्षीन ।
एक मास तक रही तल्लीन, जगत भया आश्चर्य में लीन ।
देह बदन की सुधि थी नाहीं, शिला समान पड़ी इक थाहीं ।
गुरु शक्ति की महिम को देख, जगत करे निज भाव उलेख ।
को कहे यह ध्यान आसीन, को कहे यह समाधी लीन ।
को कहे इस को सुधी नाहीं, को कहे गुरु योग सिखलाहीं ।
को कहे हम जानते नाहीं, ऐसी हालत देखी नाहीं ।

दो0 – प्रथम बार हम को मिला, बेसुध पड़ा शरीर ।
रोग तो को न दीखता, मुद्रा शान्त गम्भीर ।। 2739

मात पिता मन उपजा सोग, सचमुच यह कहीं हो न रोग ।
पत्र लिखा उन सद्गुरु ताहीं, "दीन बन्धु हम चिन्ता माहीं ।
सत्यवती को बीता मास, होश उसे नहीं आयी खास ।
चिन्तातुर हम सब हैं देव, हार गये हम करके सेव ।
आप ही जानें सारा भेद, दूर करें अब हमरा खेद ।
ऐसी कोई विध बतलायें, सत्यवती को होश में लायें ।

हमको बस है एक सहारा, परम ठौर है तेरा द्वारा ।
इस पाती को पाकर नाथ, आज्ञा देकर करें सनाथ" ।
पाती पहुंची नाथ द्वार, पढ़कर स्वामी कीन विचार ।

दो0–पाती को उन देखकर, कीना चित्त विचार ।
जगत भुलाया योग को, को न जाने सार ।। 2740

ध्यान अवस्था प्रभु है दीनी, जगत न कीमत उसकी चीनी ।
अन्तर का जो करते शोध, जिनसे होता आतम बोध ।
जन्म जन्म के क्लेश मिटाये, जग ने साधन वही भुलाये ।
अमृत को माने विष समान, योग को भूला सकल जहान ।
योग भाया वन माहिं विलुप्त, जगत न जाने विद्यों गुप्त ।
योग समाधी लोग न जानें, उसको तो वे व्याधी मानें ।
प्रभु राम संसार में आये, वन का योग नगर में लाये ।
भाग्यवान वे नर और नार, कीना जिन प्रभु का सत्कार ।
सत्यवती को पात्र देखा, स्वयं किया था प्रभु उल्लेखा ।
मीरा सम यह होय तन्मय, चौरासी हो जिमि इसकी क्षय ।
दीर्घ समाधी जो पा जाये, दिव्य रूप वह जन हो पाये ।
विश्वबन्धु वह जीव महान, देव भी उसका करें सम्मान ।
प्रभु कृपा नहीं जन पहचानें, माया में ही रहें भुलाने ।
सतवती का चाहें उत्थान, माया ईश की बहु बलवान ।
यही सोच सद्गुरु लिखवाया, पत्र पिता को उन भिजवाया ।
"चिरञ्जीव! तुम व्यर्थ अधीर, व्याधिग्रस्त यह नहीं शरीर ।

दो0 – प्रभु ध्यान में है पड़ी, इसे न कोई व्याध ।
भागयवान यह पा सके, दशा योग आराध ।। 2741

प्रभु किरपा है इस अपनाई, मन की उच्च अवस्था पाई।
उच्चित तो नहीं इसे उठाना, दिव्य लोक से नीचे लाना।
परम भक्त व महान तपस्वी, ज्ञानवान और जन मनस्वी।
जो लक्ष्य उनका हो भाई, सतवती वही स्थिति है पाई।
राजपाट जिस हेतु त्याग, नृप जायें जिस पथ पै लाग।
वह पथ इसको मिल है पाया, सद्गुरु की असीम यह दाया।
मुक्ति जीवन लक्ष्य है भाई, ज्ञान बिना ना वह मिल पाई।
चित्त एकाग्र हो जब मीत, ज्ञान बसे तब ही उस चीत।
वही एकागता इस पाई, ध्यान अवस्था जो सुखदाई।

दो0 – समाधि में है मिल रहा, प्रभु का इस को ज्ञान ।
व्याकुलता तुम को भई, सको न तुम पहचान ।। 2742क
बिना समाधि नहीं मिले, प्रभु का दिव्य ज्ञान ।
अटल योग सिद्धांत यह, समझे जन सुजान ।। 2742ख

सतवती है ध्यान में लागी, जानूँ इसकी किस्मत जागी।
जगत से इसने नाता तोड़, प्रभु चरणों से लीना जोड़।
प्रभु हैं इसके रक्षक भाई, चिन्ता की यह बात न राई।
चिन्तातुर हो व्यर्थ ही मीत, प्रभु शक्ति की नहीं प्रतीत।
जग के सिरजन पालन हार, सत्या के वही प्रभु रखवार।

रक्षक जिस के हों गुरु दयाल, बाल नहीं बांका हो त्रिकाल ।
प्रभु के भक्त नहीं घाबरायें, प्रभु की महिमा ही लख पायें ।
प्रभु शक्ती का गहें सहारा, जिस से बड़ा नहीं आधारा ।

दो0 – भक्त प्रभु का जो भये, प्रभु शक्ति चित्त लाय ।
उस चित्त दुविधा न बसे, प्रभु सदैव सहाय ।। 2743

चिरञ्जीव तुम मत घाबराओ, प्रभु शक्ति पर आस्था लाओ ।
ध्यान अवस्था जिन दे पाई, वे रक्षक हैं इस के भाई ।
मुनी करे जिस हेत तपस्या, ज्ञानी की जो ज्ञान समस्या ।
योगी योग करे जिस हेत, सत्या उसी अवस्थ अचेत ।
जो अवस्था इस ने पाई, इसको है वह अति सुखदाई ।
उस सुख को वह ही पहचाने, और कोई न उस को जाने ।
यदि उस का सुख लेवें छीन, मन उस का तब होगा क्षीन ।
क्यों हम बाधा सुख में पायें, परमानन्द न छीन दिखायें ।

दो0 – परमानन्द में है स्थित, सत्यवती यह बाल ।
तुम जानों बेहोश है, इस कारण बेहाल ।। 2744

मैं कहूँ तुम नहीं घाबराओ, प्रभु के चरणों में मन लाओ ।
इस पाती को जब तुम पाओ, चित्त में प्रभु को सभी ध्याओ ।
समाधि को तब सत्या त्यागे, और गृहस्थ कार्य में लागे ।
प्रभु की आशिष सब के साथ, भजन प्रभु कर बनो सनाथ" ।
यह पाती जब उसने पाई, पिता के मन तसल्ली आई ।

उस ने चित्त में प्रभु ध्याया, चरण कमल में शीश झुकाया।
चमत्कार उस ने क्या देखा, कर कमल उस प्रभु का पेखा।
सत्या का सर जिस छू पाया, उसे ध्यान से और उठाया।
सत्या ने थे नयन उघारे, देखे तब उसने जन सारे।
धन्य धन्य उन सब ने कीना, सतगुरु शक्ति को था चीना।
सुख का सांस सभी ने लीना, सत्या को जब चेतन चीना।

दो0—पा सत्या को होश में, सुखी भया परिवार।
जयकारा गुरु का कहा, जिनके कर पतवार॥ 2745

17. समाधिस्थिता गौतमपत्नी अहिल्या का प्राचीन इतिहास

भक्त जनन ने सुनी यह बात, उनके भये रोमांचित गात।
कहन लगे "प्रभु शक्ति महान, जिसके सभी अधीन जहान।
जड़वत सत्या को जिस कीना, और पुनः सचेत भी कीना।
इस का रहस्य हमें समझायें, इस का लाभ हमें बतलायें।
क्यों जन दीर्घ समाधि लगाएं, इस का स्पष्ट भाव समझायें"।
सुन कर उन की ऐसी वाणी, सेवक ने कुछ मन अनुमानी।
और कीन तब प्रभु को याद, और मिला सद्गुरु प्रसाद।
स्मरण कराया इक इतिहास, वर्णन कीना तभी इस दास।
'सेवक' कहा हे प्यारे मीत, यह अनादि एक है रीत।
माया का जब होय प्रभाव, मन का बिगड़ जाये सद्भाव।

गुरु किरपा यदि जन पा जाये, समाधि स्थित तभी हो पाये ।

दो0–समाधि भीतर रह स्थित, मन टिके और बुद्ध ।
प्रभु कृपा से तभी भयें, दोनों ही वे शुद्ध ।। 2746क
मन चंचल मन मृदुल है, शीघ्र बिगड़े सोय ।
गुरु किरपा जब होत है, स्थिर तभी वह होय ।। 2746ख
चित्त पर न विश्वास है, बिगड़ पाय कब मीत ।
ऋषि पत्नी की बात सुन, बिगड़ा जिसका चीत ।। 2746ग
ऋषिवर ने यह जान कर, उसे लीन संभाल ।
समाधि दीनी गूढ़तर, तिमी रही बहु काल ।। 2746घ
सुन कर इस प्रसंग को, भक्त एक कह दीन ।
"कौन ऋषि था वह प्रभो, समाधि जिसने दीन ।। 2746ङ
बिगड़ पाया मन किस विधि, ऋषि पत्नी का नाथ ।
श्रवण करें हम आप से, सकल कथा इक साथ ।। 2746च

नाथ हमें सब आप बतायें, सह विस्तार हमें समझायें ।
समाधि योग का मिले ज्ञान, नाथ करें अब आप बखान" ।
'सेवक' ने तब कीन बखान, त्रेता युग की गाथ महान ।
सज्जनवर्य पुरातन काल, राम भये थे जब अवतार ।
उसी समय का यह इतिहास, समाधि का दृष्टांत जो खास ।
गौतम ऋषि था परम तपस्वी, योगी ज्ञानी और मनस्वी ।
देव भी करते उस का मान, परमसिद्ध सब उस को जान ।

अहल्या पत्नी उसकी प्यारी, तपश्चर्या में रहती नारी ।
आश्रम में पति संग रह पावे, अतिथि सेवा से न घबरावे ।

दो0–पति के रहती संग वह, स्वयं करे सब काम ।
अतिथि जनों को सेवती, ऋषि पत्नी अभिराम ।। 2747क
पति परायण नार वह, सेव करे हर काल ।
अतिथि जनों की प्रेम से, करत सेव संभाल ।। 2747ख
भेद भाव न चित्त बसे, सब सम सद्व्यवहार ।
राजा अथवा रंक हो, सब का हो सत्कार ।। 2747ग
एक दिवस की वारता, सुनो ध्यान से मीत ।
सिरफ अहल्या थी वहां, सेव करत सप्रीत ।। 2747घ
नृप इन्द्र तभी आ गया, आश्रम में उस काल ।
बैठ गया सप्रेम वह, पूछन लागा हाल ।। 2747ङ
गौतम तब तो था नहीं, गया अन्य प्रदेश ।
अनुचित प्रीती ऊपजी, अन्ध काम आवेश ।। 2747च
इन्द्र तो था विदा भया, अहिल्या मन मलीन ।
छिपा न गौतम से रहा, जो कर्म उस कीन ।। 2747छ

गौतम ने तब चित्त विचारा, अहल्या का किमि हो उद्धारा ।
मम अर्धांगी है यह नार, इस का मुझ पर है सब भार ।
काम क्रोध आदि अहंकार, सकल जीवों को करें खवार ।
इन का नाश तभी हो पाये, योग समाधी जब जन लाये ।

शंकर ने था काम जलाया, तीजा नेतर जब खुल पाया ।
नर नारायण के वश काम, योग किया जब उन शुभ धाम ।
योग बिना वश काम न आवे, योग करे सो काम जलावे ।
योगी को जब काम सतावे, दीरघ काल समाधि लगावे ।
अहल्या का जो योग अधूरा, अब करूँगा उसे मैं पूरा ।
समाधि दीरघ काल लगावे, दोष मुक्त हो मुक्ती पावे ।

दो०–क्रोध काम मद लोभ सब, अहंकार आवेश ।
शांत भयें ये योग से, करे जो रह इक देश ।। 2748

जन्म जन्मान्तर के संस्कार, चित्त पै उन का है अधिकार ।
अपना बल वे तुरत दिखावें, उच्चित अवसर जब पा जावें ।
कितना भी कोई तप कमावे, कितना चाहे ज्ञान कमावे ।
कितने कर्म काण्ड कर पावे, समूल नाश नहीं हो पावे ।
इनका बीज न हो निर्बीज, अजर अमर जिमि हो यह चीज़ ।
सभी पापों के ये हैं मूल, अनेकों उपजें इन से शूल ।
जीव निःसहाय है लाचार, जभी गुरु का मिले आधार ।
दीरघ काल वह कर के योग, त्यागे सकल जगत के भोग ।
समाधि में रह कर तल्लीन, शुद्ध भये तब चित्त मलीन ।
दीरघ कालिक हो अभ्यास, काम का हो सके तब नास ।

दो०–ऐसा मनहिं विचार कर, कीना शक्ति पात ।
गौतम ने स्वपत्नी को, दीन समाधि तात ।। 2749

दीर्घ काल की दीनी समाधि, पुनः लगे न जिमि यह व्याधि ।
एक विचार पुनः उस कीन, दीरघ काल तो रहे आसीन ।
समाधि से जब होय उत्थान, माया करे न पुनः मलान ।
ऐसा अद्‌भुत मिले सुयोग, प्रभु से ही हो इसका योग ।
आंख खुले प्रभु के हों दर्श, करे न जग की माया स्पर्श ।
दिव्य दृष्टि तब गौतम लायी, प्रभु का आना दिया दिखायी ।
राम रूप में लें अवतार, आयें इधर तब जगदाधार ।
उनका स्पर्श अहल्या पाये, समाधि तब इसकी खुल जाये ।

दो0–प्रभु का दर्शन पाय कर, इसका हो निर्वाण ।
सफल जन्म इसका भये, मेरा भी कल्याण ।। 2750

दीरघ समाधि बेशक लायें, प्रभु दर्शन बिन मोक्ष न पायें ।
गौतम ने इस विध मन धार, अहल्या को समाधि में डार ।
स्वयं गया वह तप के हेत, अहल्या तन समाधि अचेत[1] ।
वर्ष अनेकों इस विध बीते, वन में विचरें सिंह व चीते ।
करें न अहल्या का कुछ हान, उसके रक्षक थे भगवान ।
दीर्घ अति जब काल हो पाया, विश्वामित्र राम को लाया ।
आश्रम वह था परम अनूप, देखा अहल्या का दिव रूप ।
स्थिर बैठी थी वह तो ऐसे, पत्थर की हो मूर्ति जैसे[2] ।

---

[1] देखें :– बाल्मीकि निर्मित आर्ष रामायण बाल काण्ड 48.33 :
इममाश्रममुत्सृज्य सिद्धचारण सेविते । हिमवच्छिखरे रम्ये तपस्तेपे महातपः ।। 33 ।।
अर्थ :– (गौतम ऋषि) इस आश्रम को छोड़ कर चले गये और सिद्धों तथा चारणों से सेवित हिमालय के रमणीय शिखर पर रह कर तपस्या करने लगे ।

[2] अहल्या की अतिदीर्घकाल की समाधि थी । उसका शरीर पूर्णतया निश्चेष्ट था, मानों कि वह पत्थर की मूर्ति हो। परन्तु यह विचार कि वह हाड मांस की न रह कर पत्थर बन गयी थी और भगवान राम के स्पर्श से पुनः हाड मांस की हो गई बिल्कुल निराधार है । महर्षि वाल्मीकि रामायण के अगले पृष्ठ पर लिखित प्रमाणों से यह भ्रांति दूर हो जायेगी।

दीप्यमान था उस का रूप, अग्निशिखा के ही अनुरूप ।

दो0 – देख राम उस रूप को, बैठी जो उपराम ।
लक्ष्मण सह तब राम ने, चरण छुए अभिराम ।। 2751 क
[1]चरण छुए अभिराम जब, खड़ी भयी तत्काल ।
दर्शन पाकर राम के, कीना उस सत्कार ।। 2751 ख
गौतम ऋषि भी आ गया, राम मिलन के हेत ।
सबके मन आहलाद था, अहल्या मन सचेत ।। 2751 ग

इस कथा का जानिये सार, योग करे जन का उद्धार ।

पिछले पृष्ठ का [2]जारी : बाल्मीकिनिर्मित आर्षरामायण बालकांड 29.13 – 15 :

दर्दर्श च महाभागां तपसा द्योतित प्रभाम् ।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः ।। 13 ।।
प्रयत्नान्निर्मितां धात्रा दिव्यां मायामयीमिव ।
धूमेनाभिपरीताङ्गीं दीप्तामग्निशिखामिव ।। 14 ।।
सतुषारावृतां साभ्रां पूर्णचन्द्रप्रभामिव ।
मध्येऽम्भसो दुराधर्षां दीप्तां सूर्यप्रभामिव ।। 15 ।।

अर्थ :– (वहां जा कर राम लक्ष्मण विश्वामित्र ने) देखा कि महासौभाग्यशालिनी अहल्या अपनी तपस्या से देदीप्यमान हो रही है। इस लोक के मनुष्य तथा सम्पूर्ण देवता और असुर भी वहां आकर उन्हें देख नहीं सकते थे ।।13 ।।
उनका स्वरूप दिव्य था। विधाता ने बड़े प्रयत्न से उनके अंगों का निर्माण किया था । वे माया मयी सी प्रतीत होती थीं। धूम से घिरी हुई प्रज्वलित अग्निशिखा सी जान पड़ती थी ।। 14 ।।
ओले और बादलों से ढकी हुई पूर्ण चन्द्रमा की प्रभा सी दिखाई देती थीं । तथा जल के भीतर उद्भासित होने वाली सूर्य की दुर्धर्ष प्रभा के समान दृष्टिगोचर होती थी ।15।

[1]ऋषिपत्नी अहल्या जो दीर्घकाल से समाधिस्थिता थी उसके तेजोमयरूप के दर्श कर रामलक्ष्मण दोनों ने श्रद्धाभिभूत होकर उसके चरणों का स्पर्श किया और अहल्या ने उनका स्वागत किया ।

देखो :– वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड 29.17:

राघवौ तु तदा तस्याः पादौ जगृहतुर्मुदा । स्मरती गौतमवचः प्रतिजग्राह सा हि तौ ।। 17 ।।

अर्थ :– उस समय श्री राम और लक्ष्मण ने बड़ी प्रसन्नता से अहल्या के दोनों चरणों का स्पर्श किया । महर्षि गौतम के वचनों का स्मरण करके अहल्या ने बड़ी सावधानी के साथ उन दोनों भाइयों को अतिथि रूप में अपनाया ।

शेष अगले पृष्ठ पर

युग त्रेता अहल्या तारी, कलियुग में थी रामरतारी।
सिद्ध मिले जब सत्गुरु प्यारा, दे समाधि करें उद्धारा।
काम क्रोध तब हों निर्मूल, जगत की व्याधि जाये भूल।
सुन पायी जब पुरातन बात, ज्ञान भया भक्तन साक्षात।
सतयुग त्रेता द्वापर काल, अथवा घोर भये कलि काल।
सकल दोष निर्मूल हों तब, समाधि योग पाये जन जब।
चित्त के निर्मल करने हेत, समाधि केवल है अभिप्रेत।

दो० – जन्म जन्म की व्याधि जो, लागी है मन मांझ ।
गुरु कृपा से समाधि में, बैठें प्रातः सांझ ।। 2752क
चित्त एकाग्र जब भये, और भये निश्चेष्ट ।
दोषमुक्त तब वह भये, भये दुष्ट भी श्रेष्ठ ।। 2752ख

इस विध पुरातन बात बताई, 'सेवक' ने सब को समझाई।
राम प्रभु व मुलख महाराज, योग शक्ति ले प्रकटे आज।
उन की दया जो जन पा जाय, चित्त एकाग्र तब हो पाय।
चित्त चञ्चल बहु है बलवान, वश करना न उसे आसान।

वक्तव्य :– गोस्वामी तुलसीदास आदि विद्वानों का यह मत कि राम ने अहल्या के शरीर को अपने चरण से स्पर्श किया वाल्मीकि रामायण के इस प्रसंग से मेल नहीं खाता और न ही मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम के व्यवहार से इसकी संगति बैठती है । अतः वह मत मान्य नहीं । गोस्वामी तुलसीदास का निम्नलिखित पद्य देखें :–

दो० – गौतम नारि श्राप बस उपल देह धरि धीर ।
चरन कमल रज चाहति कृपा करहु रघुबीर ।।
(रामचरितमानस बालकांड दो० 210)

सद्गुरु किरपा को बिन पाये, कौन उसे वश कर दिखलाये ।
जिस का चाहें प्रभु कल्याण, उस को वे दें समाधि दान ।
इस विध जन का चित्त हो शुद्ध, पाप धुलें बुद्ध हो प्रबुद्ध ।
बिना समाधि ज्ञान नं पायें, समाधि में गुरु सब दिखलायें ।

दो0–शुद्ध मन, उजागर बुद्ध, समाधि से जन पाय ।
कुशाग्र बुद्धी से उसे, आत्म तत्व लखवाय ।। 2753क
आत्म तत्व लखवाय उसे, ईश्वर का हो ज्ञान ।
हाथ लगे तब मोक्ष भी, सद्गुरु का जो दान ।। 2753ख

हे भक्तो मैंने बतलाया, समाधि का यह गुण समझाया ।
जिस का कारण गुरु की दाया, भाग्यवान जिस ने है पाया ।
भक्तों ने सुन कर उपदेश, कहा सबन "यह ज्ञान विशेष ।
जो कुछ अब सुनने में आया, प्रथम बार है यह सुन पाया ।
गौतम मुनि का सुन इतिहास, मन उपजी हमरे जिज्ञास ।
सुन पायें इतिहास पुंरातन, योग समाधी धर्म सनातन ।
ऋषि मुनी बहु भये इस देश, कथन करें कुछ और विशेष" ।
सुन कर उन की यह जिज्ञास, कथन किया तब शिव–इतिहास ।
'सेवक' ने उन को बतलाया, पुरातन शिव इतिहास सुनाया ।
जिमि होवे यह बात स्पष्ट, योग से चित्त विक्षेप विनष्ट ।

18. भगवान शिव की समाधि का वर्णन

दो0–चित्त विक्षेप विंनष्ट हो, लें योग से जान ।
जगत विदित जो घटन है, 'सेवक' कीन बखान ।। 2754क

सतयुग की महावार्ता, सुनो सभी ला ध्यान ।
प्रजापति था दक्ष भया, इक सम्राट महान ।। 2754ख

उस की पुत्री उमा कुमारी, मात पिता की थी जो प्यारी ।
सभी बहनों की थी जो जान, भाई युवा तब सोच महान ।
इसके योग्य को वर मिल पाये, सुखी रहे जहां पर यह जाय ।
राज कुमार कई उन देखे, देश विदेशों के थे पेखे ।
ईश्वर ने हैं रचे सुयोग, इसका भेद पायें न लोग ।
दौड़ धूप बहु आये न कार, होय वही जो रचा करतार ।
कौन वधू को वर हो भाई, स्वयं यह ईश्वर विध बनाई ।
वह सम्बन्ध अटल लो जान, टाल सके नहीं इसे जहान ।
यही तो गाँठ पवित्र भाई, विधना ने जो बांध दिखाई ।

दो0 – विधना बान्धी गांठ जो, पवित्रतम लो जान ।
इसका आदर जो करे, सुखी रहे पुमान ।। 2755क
इसी अलौकिक गांठ को, जो ठुकराये मीत ।
ऐसे जन के भाग्य के, विधना हो विपरीत ।। 2755ख
उसी विधाता था लिखा, शंकर साथ सुयोग ।
पुत्री दक्ष सम्राट की, जो थी उसके योग ।। 2755ग
शंकर शिव कैलाशपति, हर व जो महादेव ।
त्रिपुर – हन्ता वीरवर, जगत पूज्य अधिदेव ।। 2755घ
उमा भाग्य था वह लिखा, वह था उसके योग ।
दक्षराज ने दान की, पुत्री निज सुयोग ।। 2755ङ

कन्यादान दक्ष ने कीना, कैलाशपति को आदर दीना ।
राजोचित सब कीने काज, देश विदेश का जुटा समाज ।
उमा-शंकर का यह संयोग, वेद विदित सब जानें लोग ।
दक्ष प्रजापति अति बलवान, शंकर आदिनाथ भगवान ।
राज-अधिराज दक्ष प्रसिद्ध, शंकर योगीनाथ था सिद्ध ।
दक्ष पाये नृपगण से मान, करें शंकर का देव अधिमान ।
दक्ष को माया की बहु चाह, शंकर विरक्त व बेपरवाह ।
दक्ष को प्रजापत्य का मान, शंकर युक्त अखण्ड ध्यान ।

दो0-शंकर युक्त ध्यान में, शाम्भव मुद्रा लीन ।
सभा लगी थी दक्ष की, नृपति बहु आसीन ।। 2756क
दक्ष कीन प्रवेश जब, सबन कीन उत्थान ।
शंकर मग्न ध्यान में, दीना उस न ध्यान ।। 2756ख
खड़े भये सब लोग थे, केवल वह आसीन ।
दक्षराज ने देखकर, कटु वचन कह दीन ।। 2756ग

सभा से उसको दीन निकाल, और अनादर कीन उस काल ।
क्रोध के वश अनाप शनाप, दक्ष प्रजापति बोला आप ।
"धर्म का पुत्र इसे बनाया, छाती से मैं इसे लगाया ।
इसको पुनः न यहां बुलायें, माथे उमा भी हम न लायें ।
इसको भया बहुत अभिमान, करता नहीं यह मेरा मान ।
मैं सम्राट यह लघु सरदार, मान मिला इसे मेरे द्वार ।

है यह फूला नहीं समाया, जब से आदर इस दर पाया।
पुनः न इसको कभी बुलाना, राजाज्ञा यह पाल दिखाना।

दो0 – उमा व शिव को तुम कभी, मत बुलाना भूल ।
इस अभिमानी जीव से, रहे सम्बन्ध न मूल" ।। 2757

क्रोध के वश उस न पहचाना, आदिनाथ शिव हैं भगवाना।
आदर अनादर गणे समान, शिव के मन न द्वैत अज्ञान।
भेद भाव न चित्त में लाये, प्रतिक्षण चिदानन्द को ध्याये।
शांभव मुद्रा में रहे लीन, भास जगत का होवे क्षीन।
माया में जो रहें भुलानें, शिव को ना वे जन पहचानें।
दक्ष ने शिव को न पहचाना, साधारण बन्धु उसको माना।
शिव गया तभी अपने वास, रहत निरन्तर निज अभ्यास।
राज्य के मद में दक्ष था चूर, शिव द्रोही का बढ़ा ग़रूर।

दो0 – स्वशक्ति के अभिमान उस, इक रचा महायाग ।
कीन निमन्त्रित जगत को, शिव को दीना त्याग ।। 2758क
शिव को दीना त्याग उस, रचना कीन महान ।
भूल गया वह बात यह, नहीं शिव बिना कल्याण ।। 2758ख

आदिनाथ हैं शिव भगवान, वश उन के है सकल जहान।
शंकर बिना सभी निष्प्राण, शिव द्रोही का न कल्याण।
धूमधाम से यज्ञ रचाया, दूर दूर संदेश भिजाया।
उमा पुत्री संदेश न पाया, शिव भी उससे ना कथ पाया।

जनता जाती उस ने देखी, "कहां चले" इमि उमा उलेखी ।
जनता कहा "क्या तुझे न ज्ञान, दक्ष रचा है यज्ञ महान ।
सकल विश्व को उसी बुलाया, हम को भी सन्देश भिजाया ।
चलोगी कब तुम उमा प्यारी, शीघ्र चलने की करो त्यारी ।
उमा रानी मत लाओ देर, होंगे बाट बन्धु जन हेर ।

दो0-तुम प्रिया हो मात की, बहनें करत दुलार ।
प्यारी पुत्री तात की, क्यों भयी नहीं त्यार" ।। 2759

उमा जभी यह सब सुन पाया, उस के चित्त अचंभा छाया ।
सबन पिता संदेश भिजाया, हम को स्मरण नहीं कर पाया ।
शंका उस के चित्त यह आयी, शंकर पास तभी जा पायी ।
कहन लगी "हे प्राणाधार, सब कुछ तुम हो जाननहार ।
घर पिता के यज्ञ है भारी, रहे वहां जा सब नर नारी ।
आप ने मुझ को न बतलाया, मन मेरा है अति विकलाया ।
मुझ को भी तुम ले कर चालो, आज्ञा चलने की दे डालो ।
यज्ञ पिता के सदन महान, जुट पाये हैं सभी महमान ।
सारी जगती जाती देखो, क्या आज्ञा प्रभु आप उलेखो ।

दो0-सारी जगती जा रही, मम पिता के वास ।
वहां मुझे भी ले चलो, संग लेय कुछ दास" ।। 2760क
सुनी उमा की बात जब, शंकर कीन विचार ।
है निमन्त्रण नहीं मिला, जावें किस प्रकार ।। 2760ख

उमा को शंकर तब बताया, "तव पिता नहीं हमें बुलाया।
बिन बुलाये किमि वहां जायें, लोकरीत को किमि ठुकरायें।
इस विध है बहु मान की हानि, चित्त मेरे बस यही ग्लानी।
जब तक नहीं बुलावा आये, जन किसी के घर क्यों जाये"।
आंसू उमड़े सुन यह बात, कहा उमा "वे मम पितु मात।
मात पिता के घर जन जाये, बिना निमन्त्रण को भी पाये"।
कहा शंकर "हे दक्ष कुमारी, है बात यह ठीक तुम्हारी।
पिता माता जो करें प्यार, वहां जायें जन सब प्रकार।
विरोध होवे जब उनके चित्त, वहां जायें न किसी निमित्त।
सब को जब संदेश भिजाया, पर हमें नहीं किसी बुलाया।
उन के चित्त मैं जानूँ रोष, वहां जाने में है बहु दोष।

दो०–उन के मन में रोष है, भेजा न संदेश।
बिन बुलाये यदि जायें, मिले न आदर लेश ॥ 276।

तुम जाने का निश्चय छोड़ो, अपना चित्त वहां से मोड़ो।
मात पिता के मन में क्रोध, बिना बात ही करें विरोध।
जिस के चित्त में होय ग़रूर, भला रहना है उस से दूर।
बिन बुलाये मैं नहीं जाऊँ, लाभ इसी में मैं लख पाऊँ"।
उमा सुनी जब पति की बात, उसे लागी जिमि वज्र पात।
उस का मन भया दुखी अपार, लागी बहन अश्रुन की धार।
माता पिता को किमि भुलावे, रुक रुक उन की याद सतावे।
सन्मुख ही वह सब दृश्य देखे, मात पिता बहु बन्धु उलेखे।

बहनें गातीं सन्मुख आतीं, "उमा उमा" कह पास बुलातीं ।

दो०- "उमा उमा" की ध्वनि को, रही थी सुन स्पष्ट ।
परवशता निज देख फिर, माना मन बहु कष्ट ।। 2762क
उसी कष्ट के कारणे, सिसक-सिसक वह रोय ।
शिव शंकर की बात का, प्रभाव लेश न होय ।। 2762ख
बार बार समझाय कर, शंकर मानी हार ।
होनहार किमि टल सके, जो रची करतार ।। 2762ग
योगी पति की बात जब, न मानी उस नार ।
मानो उसके सिर चढ़ा, नाच रहा था काल ।। 2762घ

योगी पति की बात न मानी, जाने की ही जिद्द उस ठानी ।
शिव ने भावी को पहचान, कहा "भवानी लो तुम जान ।
काल प्रबल को न पहचानो, ममता वश ही ज़िद को ठानो ।
बात मेरी तुम लो जो मान, काल टले और हो कल्यान" ।
सुन 'सेवक' से यह इतिहास, प्रश्न किया इक भक्त ने ख़ास ।
"काल टलन की कही जो बात, कहां तक संभव है यह तात ।
क्या सके को काल को टाल, प्रबल काल तो हो महाकाल ।
काल के वश है सब संसार, काल न माने किसी से हार ।
काल के ही कुल जगत अधीन, काल के सन्मुख सब ही दीन ।
ऐसा न को जगत में जाया, काल के वश जो न हो पाया ।

दो0 – वश काल के लोक सब, जग सब काल अधीन ।
स्पष्ट करें उस बात को, शिव ने जो कह दीन ।। 2763क
क्या भावी भी टल सके, आप बतावें नाथ ।
यह भ्रांति मम दूर हो, उपजी जो इस साथ" ।। 2763ख
सुन 'सेवक' इस बात को, तर्कयुक्त साक्षात ।
प्रभु सिमरन उसने किया, और कहा "मम तात ।। 2763ग
बात तुम्हारी तर्कयुत, कौन करे प्रतिकार ।
काल अधीन जगत सभी, न पर सिरजनहार ।। 2763घ

जिस ने काल को सिरजा भाई, उसी अधीन अखिल जगताई ।
उसके ही सब लोक अधीन, काल भी उसके सन्मुख दीन ।
ईश्वर की जो ईश्वरताई, वश उसके है सब जगताई ।
देव दनुज व काल भी जोय, ईश समक्ष अधीन सब होय ।
करता काल कर्म है सोई, ईश्वर का संकेत जो होई ।
काल की है न लेश बसात, जो ईश्वर की न माने बात ।
शिव ईश्वर साकार है मीत, उमा को बात न यह प्रतीत ।
अपना पति ही उस को माना, परमतत्व को ना पहचाना ।
मोह वश हठ उस मन समाना, शिव को ईश्वर रूप न माना ।
तिरया हठ उमा जभी धारा, शिव ने मन में तभी विचारा ।
शिव विचार किया मन माहीं, भेजूँ उमा पितृयज्ञ माहीं ।

दो0 – पास पिता के जाय कर, ले देख सब हाल ।
मोह वश यह न जानती, उमड़ा सर पर काल ।। 2764क

काल टले इक रीत ही, गुरु कृपा यदि होय ।
बिन किरपा गुरु देव की, लेश न बदले सोय ।। 2764ख
काल तभी ही टल सके, गुरु की मानें बात ।
योगी था उसको मिला, पति रूप साक्षात ।। 2764ग

मोहवश उमा ने न पहचाना, शिव को उस न गुरु कर माना ।
उमा के मन था न विश्वास, सर पर उमड़ा तभी विनाश ।
काल टले बस एक उपाय, गुरु पै श्रद्धा यदि शिष्य लाय ।
शिव की उमा न मानी बात, हठ कीन "मैं चलूँगी प्रात ।
आप चलें संग उत्ताम बात, अथवा मुझे ही भेजो प्रात" ।
देख उमा का हठ यह भारी, शिव कहा "तब करो तय्यारी ।
सैनिक भेजूँ तेरे साथ, मनोरथ तेरा भये सनाथ ।
शुभ हो पितृ यज्ञ में जाना, कोप किसी पर न कर पाना ।
माया की ना बात चलाना, सच्चिदानन्द प्रभु को ध्याना" ।

दो0–इस विध शिक्षा देयकर, उस को दीन विदाई ।
सैना के विश्वस्त जन, दीने संग भिजाई ।। 2765

सैनिक जन संग वह थी चाली, मात पिता की सुधि संभाली ।
बहनों को वह करती याद, था चित्त में अज्ञात विषाद ।
अकेली आई शिव को छोड़, उमड़त चित्त में शिव वियोग ।
मात पिता को करती याद, शिव बिछुड़न का चुभे विषाद ।
चित्त उस का उस नाव समान, दो धारों में फंसी आन ।

मात पिता का प्यार चलाये, पति विछोड़ा रोक ही पाये।
चल पाये वा ना चल पाये, रह रह कर यह दुविध सताये।
सैनिक थे जो रक्षक अंगा[1], चल रहे सब उसी के संगा।
निज कर्म में वे दत्त चित्त, भवानी का न जानें चित्त।
इस विध करती सोच विचार, पहुँच पाई वह पितृद्वार।

दो० – घर पिता के पहुँच कर, देखा भव्य समाज।
देश विदेशों से जुटा, महायज्ञ में आज ।। 2766क
स्वागत था बहु हो रहा, अतिथि जनों का आज।
चहल पहल को देख कर, और वहां का साज ।। 2766ख
देखन लागी किमि मिलें, मम बन्धु पितु मात।
बहनों का भी मैं करूँ, इस अवसर साक्षात ।। 2766ग
उसके मन का चाव जो, वर्णन में न आए।
शुकर विधाता का करे, जो उसे थे लाये ।। 2766घ
खड़ी बहन को देखकर, उमा चली उस ओर।
मोड़ लिया मुख बहन ने, तभी और ही छोर ।। 2766ङ

उदासीनता बहन की देख, उमा ने मन में कीन उलेख।
अन्तरयामी शिव साक्षात, मानी नहीं मैं उनकी बात।
सामने फल उसी का आया, बहन मेरी निज मुख घुमाया।
माता के मैं जाऊँ पास, वहीं मिलेगा सुख का श्वास।

[1] अंगा – अंगरक्षक।

सोच तभी माता घर आई, देख वहां बहु जनता पाई ।
दासिन सेवा में रत सारी, उमा से बोली न को नारी ।
अचम्भित देख उमा तब भई, सोचे भूल तो है ना गई ।
सदन पिता के हूँ तो आई, अन्य स्थान तो न घुस पाई ।
शंकित मन से इत उत देखे, उससे न को बात उल्लेखे ।

दो०-शंकित मन से देखती, क्या यह वही स्थान ।
मुझे न को पहचानता, जैसे हूँ अनजान ।। 2767क
उधेड़बुन में थी खड़ी, सन्मुख देखी मात ।
जाय गोद में गिर पड़ी, करती अश्रुपात ।। 2767ख

माता ने कुछ प्यार न दीना, उपरि मन से ही पूछ लीना ।
"शिव का हाल चाल क्या प्यारी, शिव बिना क्यों आई दुलारी" ।
मन से न उस स्नेह जताया, उठा गोद से परे बिठाया ।
उमा प्यार का देख अभाव, कोसन लागी निज स्वभाव ।
जिस था मोहवश पति को त्याग, आ गई हो जिमि घर से भाग ।
उसके चित्त अब भई प्रतीति, पति समान न किसी मन प्रीति ।
उसने मन में यही विचारी, पति समान न कोई हितकारी ।
पति का मैं हूँ आधा अंग, भूल कीनी जो त्यागा संग ।
मात पिता जब दें ठुकराय, पति पत्नी को गले लगाय ।

दो०-जगत सभी ठुकराय जब, स्वार्थ के वश होय ।
पति पत्नी को शरण दे, बिन स्वार्थ के सोय ।। 2768क

योगी पति जिसको मिले, उसका परम सुभाग ।
ईश्वर घर में आ मिला, जाय उसे इमि लाग ।। 2768ख
पति योगी मुझको मिला, आई मैं हूँ त्याग ।
इसका मुझको फल मिला, यह मेरा दुर्भाग ।। 2768ग
अब पिता को देखकर, जाऊँ फिर मैं लोट ।
पति के घर में नार को, ही मिले सुख ओट ।। 2768घ

ऐसा मन में उमा विचार, उठकर गई पिता के द्वार ।
सिंहासन पर था वह विराज, परिजन चहुँ ओर रहे साज ।
कीना जब जाकर साक्षात, सीधे मुँह न कीनी बात ।
उमा के चित्त लगी तब चोट, मन ने लीनी क्रोध की ओट ।
उपालम्भ तब वह दे पाई, "पाती न क्यों मुझे भिजाई ।
सकल जगत को मिला सन्देश, कहो पिता मम दोष जो लेश" ।
बहु विध उस निज रोष जताया, रो रोकर स्वदुःख बताया ।
"मम मान की भयी बहु हान, घर ससुराल भया अपमान ।
मात पिता नहीं पूछें बात, मेरा रो रो सूखे गात ।

दो0– मैं अभागिन हूँ दुःखी, कहूँ किसे निज ताप ।
घर पिता के आन कर, भी सहूँ संताप ।। 2769

भगिनी सीधे मुंह न देखे, माता न प्रिय वचन उलेखे ।
आप से भी मिला नहीं प्यार, भूल के आई इस हूँ द्वार ।

योगी शिव की बात न मानी, ममता में मैं रही भुलानी ।
त्याग ईश को तव दर आई, स्वर्ग से हूँ जिमि गिर मैं पाई ।
शिव का सत्य व सुन्दर राज, द्वेष घृणा का तव घर साज ।
शिव के चरणी सकल आनन्द, यहां क्यों आई मैं मतिमन्द ।
शिव का ऐसा सुन्दर देश, किसी से राग न का से द्वेष ।
वहां पर परम शांति का वास, तत्व ज्ञान मिले हर श्वास ।
तव दर राग व द्वेष क्लेश, सुख वा शांती मिले न लेश ।

दो०–शिव के घर आनन्द है, इस जा राग द्वेष ।
माया का अभिमान ही, ईश भजन न लेश" ।। 2770

अपनी पुत्री की सुन वाणी, शिव की जिस में महिम बखानी ।
प्रजापति चित्त रोष समाया, शिव को भला बुरा कह पाया ।
उस ने ऐसे वचन उचारे, लागे तीर उमा को सारे ।
उमड़ा उमा के चित्त क्रोध, बोली पिता को कर संबोध ।
"तेरे चित्त में बहु अभिमान, शिव का तुम को न कुछ ज्ञान ।
तुम तो उस को बालक मानों, विश्व पति नहीं उस को जानो ।
शिव का तुम करते अपमान, फिर भी धारो तुम निज प्राण ।
मेरा यह तन तुम से जाया, अब मैं त्याग करूँ यह काया ।
शिव द्रोही से रहे न नाता, भस्म भये यह तव दर गाता ।

दो०–तेरे ही दरबार में, भस्म भये यह गात ।
शिव द्रोही के न रहें, प्राण यह इक भी रात ।। 2771

जा कर ये शिव चरणि समायें, शिव के संग सदा रह पायें ।
देह मिले जब इन्हें नवीन, शिव के ही हों ध्यान में लीन ।
शिव से ही मम अटल है नात, लो यह त्याग चली मैं गात" ।
ऐसा कथ वह तन गिर पाया, त्याग उमा दीनी निज काया ।
दक्षप्रजापति बहु घबराया, हतप्रज्ञवत वह हो पाया ।
उसे न सूझे क्या कर पाये, इतने में शिव सैनिक आये ।
निज रानी को लीन संभाल, दक्ष सभा को कीन बेहाल ।
जो अकड़ा उसे मार मुकाया, सन्मुख न को ठहर भी पाया ।

दो0 – शिव सैना के सामने, सब ने मानी हार ।
विदित भया तब जगत को, शिव द्रोह का सार ।। 2772क
बड़ा योग से बल नहीं, स्पष्ट भया उस काल ।
अन्तर्यामी शिव प्रभु, भी प्रकटे तत्काल ।। 2772ख

शिव ने उमा का शंव उठाया, और वहां से चल वह पाया ।
यथायोग सब कर्म कराया, ज्ञान ध्यान में मन लगाया ।
एक सतावे रह पर बात, प्रीत उमा की जो साक्षात ।
श्रद्धा प्रेम व दृढ़ विश्वास, दिखलाया निज त्याग श्वास ।
शिव के रहे वह सदा सम्मुख, उमा से मोड़ सके नहीं मुख ।
इस को मोह कहो व प्यार, किस विध करे इस का प्रतिकार ।
सुन कर सेवक से यह गाथ, बोला एक भक्त "हे नाथ ।
शिव को भी क्या मोह सतावे, हमरी समझ में न यह आवे ।

दो0-शिव तो आदीनाथ हैं, रहें जगत से दूर ।
मोह आदि के वश होंय, हम सम जीव ज़रूर" ।। 2773

कर श्रवण उस भक्त की बात, 'सेवक' कथन किया "हे तात ।
तव विश्वास मांझ गुण भारी, परन्तु कामादी बलकारी ।
सभी पै करते वे प्रहार, जीवों की हो सहज में हार ।
योगी उन का करत विरोध, करके योग से चित्त निरोध ।
शिव जब देखा मोह का वार, उमा का मन में प्यार सवार ।
उस ने मन में कीन विचारा, समाधि का मैं गहूं सहारा ।
समाधी शिव ने तभी लगायी, दीरघ काल न जो खुल पायी ।
हे भक्तो यह निश्चित ज्ञान, इस के मिलें बहुत प्रमान ।
समाधि से ही चित्त हो स्थिर, प्रभाव न मोह का होवे फिर ।

दो0-रहें समाधी में जभी, जग से हो उपराम ।
शक्ती सद्‌गुरु से मिले, करे न वश तब काम ।। 2774क
क्रोध काम मद लोभ का, और मोह का वार ।
योगी को न वश करत, यही योग का सार" ।। 2774ख

प्रकट कीन एक जन जिज्ञास, पूछा उस ने प्रश्न यह खास ।
"हे नाथ हमें यह दो ज्ञान, शिव का कब खुला फिर ध्यान" ।
उस का प्रश्न जभी सुन पाया, 'सेवक' चित्त में प्रभु को ध्याया ।
उन को कीना मनहिं प्रणाम, योगी रूप बन आये राम ।
जग ने शिव का योग भुलाया, प्रभु जी आ कर पुनः चलाया ।

दीना जनगण को यह ज्ञान, योग से हो सब का कल्याण ।
'सेवक' कहा "सुन मेरे भाई, अखण्ड ध्यान शिव का सुखदाई ।
सहस्त्रों वर्ष ध्यान लगावे, पल भर ही यह उसे लखावे ।
समाधि आत्म अवस्था भाई, जहां गणना न काल की राई ।
प्रकृति का ही काल संबंधी, आत्मा से न उस की संधी ।
आत्म अवस्था जन जब पायें, काल की परिधि लांघ हि जायें ।

दो0 – काल की परिधि से परे, आत्म अवस्था जान ।
समाधि में जो जन रमे, मिले उसे ही ज्ञान ।। 2775क
शिव की दृढ़ समाधि प्रिय, जो थी कालातीत ।
निज रूप में शिव स्थित, विसरी जग प्रतीत" ।। 2775ख

भक्त एक तब कहने लागा, "संशय पुनः हमरे मन जागा ।
हमारी है यही जिज्ञास, कब उतारे थे शिव श्वास ।
शिव ने कब था श्वास उतारा, कारण था क्या ऐसा भारा" ।
कहा 'सेवक' ने सुन मम मीत, योग समाधी की यह रीत ।
समाधी आत्म हेतु लगावें, जग हेतु वह खोल भी पावें ।
योगी जन की जान कमाई, परोपकार लिए हो भाई ।
देव जनों पै संकट आया, असुरों ने था उन्हें दबाया ।
देवसहायी शिव भगवान, असुरद्रोही लो तुम जान ।
महादेव को भक्त पुकारे, संकट हरते उस के सारे ।

दो0-महादेव हैं महाप्रभु, जिन के सेवक राम ।
पारब्रह्म अवतारी, योगेश्वर सुखधाम[1] ।। 2776क
गो ब्राह्मण के हेत जो, प्रकटे ले अवतार ।
गुरु आज्ञा से योग का, आ कर कीन उद्धार ।। 2776ख

देवों पर था संकट भारा, असुरों ने जग घेरा सारा ।
आसुर बल के सन्मुख पेश, देवों की नहीं चलती लेश ।
शिव को कीनी तब अरदास, शिव से पाया उन आश्वास ।
कहा देवों ने "हे त्रिपुरारी, असुरों ने सुर सैन संहारी ।
देव सैना के हो कर नायक, अब बनो तुम देव-सहायक" ।
शिव ने उन की विपदा जान, भविष्यत का कुछ कीन बखान ।
देवों को फिर दीन विदायी, सुन्न समाधी पुनः लगायी ।
निर्विकल्प में हो कर लीन, सब वृत्तियों को करके क्षीन ।
आत्म तत्व का ही कर भान, सकल विश्व का भूल ध्यान ।

दो0-सुन्न समाधी में शिव, रहे अनेकों साल ।
रूह उमा की भी रही, पास पति बहु काल ।। 2777क
धारण कीना देह फिर, इक राजा के धाम ।
पुत्री पर्वत राज की, पार्वती धर नाम ।। 2777ख

---

[1] सुखधाम - योगेश्वर परब्रह्म अवतारी श्री प्रभु राम लाल जी महाराज के सद्गुरु श्री महाप्रभु जी भगवान शंकर का ही रूप हैं।

पार्वती भयी जब युवा, मन में उपजा काम ।
शंकर को निज पूजती, जिमि हो पूर्णकाम ।। 2777ग
यह इच्छा मन में धरे, वर रूप शिव पाऊँ ।
न तो मैं जीवन सकल, रह कुमारी जाऊँ ।। 2777घ

पार्वती चित्त यही विचारे, व्रत नेम बहु कठिन उस धारे।
इस जन्म की साध यह भारी, शिव मिलें न तो रहूँ कुमारी।
पार्वती चित्त दृढ़ विश्वास, जगत वन्द्य यह दिव्य इतिहास।
ग्रन्थ पुराण गाथ यह गाये, तपस्या पार्वती कथ पाये।
ग्रीष्म वर्षा शरद हेमन्त, शिशिर काल व और वसंत।
सब ऋतुओं में तप कर पावे, चित्त एकाग्र से शिव ध्यावे।
समाधि में था शिव आसीना, पार्वती चित्त उस में लीना।
शीतकाल वह सारी रात, हिमानी जल में बैठत तात।
ग्रीष्म काल पंचाग्नी तापे, प्रति श्वास 'शिव शिव' आलापे।
तप तप कर उसने निज काया, को दुख दीना, शिव न पाया।
पार्वती तब मनहिं विचारा, तपस्या का न पाया पारा।
जब तक न मैं अन्न को त्यागूँ, किस विध तप के मग पर लागूँ।
अन्न से मन में उपजे दोष, शिव के नहीं जन योग्य सदोष।

दो0 – त्यागूँ अब मैं अन्न को, घास पात लूँ खाय ।
मेरा तन मन शुद्ध हो, तब शंकर को पाय ।। 2778क

इस विध मन में धार कर, दीना अन्न त्याग ।
घास पात जो मिलत था, खाने ही वह लाग ।। 2778ख

बहु काल इस विध तप कीना, तृणाहार ही था उस लीना ।
पत्ते खा कर करत गुज़ारा, 'शिव पाऊँ' मन में उस धारा ।
अन्न को जब से दीना त्याग, क्षीण होने था तन तब लाग ।
शिव में सुरती उस की लागी, मन ने तन की सुध थी त्यागी ।
तन तो उस का कृष हो पाया, मुख पै तप का रूप सुहाया ।
तेजोमय था भाया आकार, ईश की शक्ति हो साकार ।
पार्वती जभी योग कमाया, जीवों का मन उस वश आया ।
हिंसक पशुगण हिंसा त्यागी, दया वृत्ति सब के मन जागी ।

दो० – हिमपुत्री के योग का, भाया ऐसा प्रभाव ।
सब जीवों के चित्त में, जागे थे शुभ भाव ।। 2779क
शिव के भी तो चित्त पर, भाया लेश प्रभाव ।
स्थिर रहा पर योग़ वश, शंकर का स्वभाव ।। 2779ख

समाधि में शिव सब कुछ जाने, पार्वती का भाव पहचाने ।
उसकी प्रीति को सन्माने, उसके तप का गौरव माने ।
हठ उमा का याद जब आवे, स्वीकृति में देर हो पावे ।
उमा मन मोह का जो संस्कार, योग से हो उस का निस्तार ।
अतः योग की थी प्रभुताई, विलंब मांझ तथा अधिकाई ।
शिव का रोष शोक जिमि नासा, तिमि उमा का दोष विनासा ।
वह विधि केवल योग समाधी, जन्म जन्म की हरे जो व्याधी ।

उमा थी पार्वती बन आई, पूर्व कर्म से छूट न पाई ।
पूर्व कर्म हों योग से क्षीण, देह पाये जब जीव नवीन ।

दो0 – पार्वती का भाव सब, जानें शिव भगवान ।
योग तपस्या मांझ ही, था उस का कल्याण[1] ।। 2780

पार्वती के प्रेम की चर्चा, और करत जो पूजा अर्चा ।
सभी जगत में भयी विख्यात, तपियों का तप कीना मात ।
पत्तों पर वह करत गुज़ारा, इस तप को सब जग सत्कारा ।
देव भी दर्शन हेतु आते, उस की प्रीती के गुण गाते ।
सभी ऋषियों को इस का ज्ञान, शंकर हेतु जो तप महान ।
अबला की यह कठिन तपस्या, तपवन की वह भयी समस्या ।
मात पिता को फ़िकर सतावे, ऋषिगण शिव पै दोष लगावे ।
पार्वती को शिव न अपनावे, पार्वती तप बढ़त ही जावे ।

दो0 – पत्ते खा कर तप किया, शिव पाने के हेत ।
देख अनोखी प्रीत यह, जड़ भी भये सचेत ।। 2781 क
जड़ तक भये सचेत थे, देख अनोखी प्रीत ।
शिव पर रहा अडिग ही, दृढ़ था उस का चीत ।। 2781 ख
पार्वती ने देख यह, मनहिं कीन विचार ।
तपस्या पूरी न अभी, अतः न मैं स्वीकार ।। 2781 ग

---

[1] शंकर समाधि में स्थित हुए सब कुछ देखते थे कि पार्वती उन को पतिरूप में प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या कर रही है। परन्तु वे अभी उसे तप और ध्यान योग का और अधिक अवसर देना चाहते थे ताकि पूर्व जन्म में (जब वह उमा के शरीर में थी) जो उस के चित्त पर मोह के संस्कार पड़े थे वे योग द्वारा मिट जायें और पार्वती के इस देह में वह मोक्ष की पूर्ण अधिकारिणी बन सके ।

मेरा तप है अभी अधूरा, शिव मिलें जब हो वह पूरा ।
चित्त में ऐसा धार विचार, त्यागा उस ने सभी आहार ।
भोजन पत्तों का भी त्यागा, पवनाहारी बनी सुभागा ।
निशिदिन करती तप वह घोर, न रात सोये न सोती भोर ।
प्रेम तड़प ऐसी मन मांझ, आंख लगत न प्रात न सांझ ।
तप तप कर उस देह सुखाया, एक पर्ण तक मुख न पाया ।
देव सकल तब उस को मानें, नाम "अपर्णा[1]" इमि बखानें ।
सभी अपर्णा प्रति सशंकित, शिव को मिले वो हो आतंकित ।
शिव को सारी व्यथा सुनाई, कथा अपर्णा की कथ पाई ।

दो०–अपनी व्यथा सुनाय कर, शिव को कीन निहोर ।
अखण्ड समाधि वह जिमि, खोले बस उस भोर ।। 2782क
देवकार्य को सोच कर, और अपर्णा प्यार ।
लक्ष्य की पूर्ति जान कर, शिव कीनी स्वीकार ।। 2782ख

समाधि खोली शिव भगवान, जल पार्वती ने कीना पान ।
शिव पार्वती का पाणिग्रहण, शास्त्र विधि से भया निर्वहण ।
'सेवक' ने इतिहास सुनाया, और सबन को तब कह पाया ।
क्या भाई है बात स्पष्ट, समाधी से मन क्षोभ विनष्ट ।
समाधि ने शिव रोष दुराया, और उमा का मोह छुड़ाया ।
योग समाधि से ही भाई, उमा थी पार्वती बन पाई ।
उमा पड़ी थी मोह के कूप, पार्वती बनी शिव का रूप ।

[1] जब पार्वती ने तप करते करते पत्ते (पर्ण) तक खाने त्याग दिये तो ऋषिगणों में वह अपर्णा (जो पत्ता तक भी भोजन में नही ग्रहण करती) नाम से प्रसिद्ध हुई । अतः पार्वती का दूसरा नाम अपर्णा भी है ।

सभी जग पार्वती सन्माने, शंकर का अर्धांग पहचाने।
शंकर आदिनाथ भगवान, भक्तों को दें मुक्ति दान।
रहें वे माया से बहु दूर, उन्हें विरक्त तपी मंजूर।
पार्वती जब मोह को त्यागा, निज देह भी प्रिय न लागा।
उसे कीना तभी स्वीकार, साचे भक्त समझें यह सार।

दो0 – मायारत जो पुरुष हों, चाहें शिव प्रसाद ।
शिव से कुछ न पायें वे, यह तथ्य निर्बाध ।। 2783

शिव प्रसन्न उसी पै होवे, योग में जीवन जो जन खोवे।
तीन गुणों का करके त्याग, त्रिगुणातीत मग जाये लाग।
त्रिगुणातीत जन मुक्ति पावे, त्रिगुणातीत भव को तर जावे।
त्रिगुणातीत योगेश्वर होय, त्रिगुणातीत ईश्वर सम सोय।
त्रिगुणातीत ही जीवन मुक्त, त्रिगुणातीत योग में युक्त।
त्रिगुणातीत को मल न लागे, त्रिगुणातीत भजन में पागे।
त्रिगुणातीत शिव को हो प्यारा, हर पल रहत जगत से न्यारा।
त्रिगुणातीत सिद्धिन भण्डार, जाने जीवन का वह सार।

दो0 – हो जो त्रिगुणातीत जन, प्रिय वह शिव को होय ।
तीन गुणों में जो रमे, सिद्धि पाये न सोय ।। 2784क
एक भक्त ने तब कहा, "हमें बतावें आप ।
तीन गुणों में जो रमे, उस को क्या संताप" ।। 2784ख

19. संतापकारी त्रयगुण का बखान और जड़ भरत का उपाख्यान

सरल भाव से उस कह पाया, मन यह सब के प्रश्न सुहाया ।
कहा 'सेवक' ने हे मम मीत, श्रवण करो तुम सब ला चीत ।
तीन गुणों का जगत पसारा, जीवन इन में बीते सारा ।
दुख सुख इष्ट अनिष्ट जो लाग, नश्वर देह से जो अनुराग ।
इन्हीं गुणों का है यह खेल, इन से बढ़ती जग की बेल ।
पापी धर्मी जो जग बीच, उत्तम मध्यम और जो नीच ।
अविद्या अस्मिता राग द्वेष, अभिनिवेश जो पांच क्लेश ।
जीव जन्तु की सृष्टि अनूप, एक से एक न मिलता रूप ।
देव दनुज मानव सब जाये, तीन गुणों से ही उपजाये ।
तीन गुणों से उपजा जान, सब सृष्टि का प्रसार महान ।

दो०–जग का सब प्रसार जो, तीन ही उसके मूल ।
सात्विक राजस तामस, गुण कभी नहीं भूल ॥ 2785क
तीन गुणों के चक्र में, पड़े जीव जब आय ।
आवागामी वह बने, दुख में ही रह पाय ॥ 2785ख
दुख में ही रह पाय वह, यह चौरासी खेल ।
[1]चार खान में ऊपजे, कटे कभी न बेल ॥ 2785ग

कहा सेवक इस विध लो सोच, जगत को जानो मित्र ! पोच ।
तीन गुणों का जगत पसारा, जनित अविद्या दुःख अपारा ।

[1] चार खान : जेरज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज ।

शाश्वत सुख वही जन पाये, त्रिगुणातीत जो हो दिखाये।
तामस गुण है मोह का रूप, राजस का है क्रोध स्वरूप।
सात्विक जन में हो अहंभाव, इस जग का जो मूल स्वभाव।
राजस तामस दुख के मूल, सात्विक मुक्ति के प्रतिकूल।
आत्मा तीन गुणों से न्यारा, हो गुणों से जभी छुटकारा।
जीव मुक्ति को तब ही पाये, गुणों में आत्मा न उलझाये।

दो०-तीन गुणों के जाल को, जानो दृढ़तम पाश ।
देही इस में फंस कर, होता परम हताश ।। 2786क

इस पाश में है बंधा, विश्व सकल मम मीत ।
इस पाश से मुक्ती की, है सुगम नहीं रीत ।। 2786ख

कर श्रवण इस बात को, बोला एक सुजान ।
श्रवण किया है "ज्ञान से, जन पायें निर्वान ।। 2786ग

सुगम रीत वे ज्ञान की, कथ पाते भगवान ।
केवल तत्व विचार से, होवे मुक्त सुजान ।। 2786घ

कठिन काम यह है नहीं, कहें सुगम है रीत ।
समझो निज को मुक्त ही, बंध झूठी प्रतीत ।। 2786ङ

क्या यह बात ठीक है नाथ, इसी विध लागे मुक्ती हाथ"।
'सेवक' सुन कर तब मुस्काया, मन में उस ने प्रभु को ध्याया।
और कहा सुन लो मम मीत, सुगम मुक्ती की नहीं है रीत।

इस मग में हैं संकट भारे, ज्ञानी मानी फंसे सारे ।
क्रोध काम व मोह अहंकार, ज्ञानियों को भी करें ख्वार ।
इक इतिहासिक बात सुनाऊँ, स्पष्ट भाव मैं निज कर पाऊँ ।
ज्ञानियों को भी बांधे मोह, तप को भी भंग करता वोह ।
शत्रु पांच भयंकर भारे, ज्ञान व तप को लूटन सारे ।
योगी गुरु की शरण ही मीत, रक्षक बने जन की सब रीत ।
मन ला सुनो इतिहास पुराण, जिस से मिले कुछ तुम्हें ज्ञान ।

दो०-मैं कथूँ इतिहास वह, मिलता जिस से ज्ञान ।
पांच शत्रु व तीन गुण, इन से बचे सुजान ।। 2787क
आर्यवर्त में था भया, ऋषभ देव अवतार ।
उस में शक्ती योग थी, अद्भुत कीने कार ।। 2787ख
राज कीन बहु काल उस, सुखी प्रजा उस काल ।
उस का पुत्र भरत इक, मैं सुनाऊँ हाल ।। 2787ग
मैं सुनाऊँ हाल वह, जिमि पड़ा मोह जाल ।
ज्ञान तप सब हवा भया, दीन गर्भ में डाल ।। 2787घ
निज मन पर विश्वास कर, रहे न सावधान ।
चित्त उसी को ठगत है, अस्थिर होता ज्ञान[1] ।। 2787ङ

[1] देखें श्रीमद् भगवतपुराण – V 6.5 :
"काम, क्रोध, मद, लोभ, शोक, मोह, भय और कर्म बन्धन का कारण मन ही है । उस पर पण्डित जन विश्वास नहीं करते" ।

पिता के सदृश भरत भी, धर्म कर्म प्रवीन ।
ऋषभदेव वन को गया, राज भरत को दीन ।। 2787च

भरत देश का भया सम्राट, देश भया उसी काल विराट ।
प्रसिद्ध भया तब से यह देश, 'भारतवर्ष' के नाम विशेष ।
सुन कर सेवक से यह बात, एक भक्त कहा "हे प्रिय तात ।
भरत से 'भारतवर्ष' का नाम, पहले इस का क्या था नाम ।
यह तथ्य तो हमें न ज्ञात, हम जानें यह आप से बात ।
कई भये इस के अभिधान, कोई कहे यह 'हिन्दुस्थान' ।
'इण्डिया' कह कर को पुकारे, 'आर्यवर्त' इमि कोई उच्चारे ।
'भारतवर्ष' का पहला नाम, वही बतावें हे सुख धाम ।
होता प्रिय सभी को निज देश, परन्तु हमरा देश विशेष ।
जगत हेतु यह ज्ञान स्तंभ, भया यहीं से ज्ञान आरम्भ ।

दो०–ज्ञान सकल जो जगत में, भारत उस का स्रोत ।
विश्व सकल में है जिमि, सूरज का उद्योत ।। 2788क

यही पुरातन देश है, जहां भये अवतार ।
ऋषभदेव सम थे भये, जग के तारन हार ।। 2788ख

कई नाम इस के भये, जगती में विख्यात ।
गौरव इस भूखण्ड का, इस से ही साक्षात ।। 2788ग

अब प्रभु हमें आप बतायें, इस का पहला नाम सुनायें ।
उस का हमें नहीं है ज्ञान, क्या था इस का वह अभिधान" ।

कहा 'सेवक' सुन यह जिज्ञास, मुख पर ला कर किञ्चित हास ।
हे मीत कोई क्या बतलाय, इस भूमी के नाम कथ पाय ।
सृष्टि का यह प्रथम प्रदेश, अन्य विकसे थे पाछे देश ।
आदि काल से चलते आये, बहुत नाम इस के हो पाये ।
'भारत वर्ष' से पूर्व नाम, यह "[1]अजनाभ" कहलावे धाम ।
अब सुनो तुम भरत का हाल, आया वृद्धावस्था काल ।
पुत्रन को वह देकर राज, त्याग सकल वह राज का साज ।
घर को छोड़ कीन प्रस्थान, पुलहाश्रम में पहुंचा आन ।

दो०-पुलहाश्रम में आय कर, लीना उस सन्यास ।
अतीव पवित्र आश्रम, गण्डक नद के पास ।। 2789

ठहर वहां वह योग कमाये, जग की माया से बच पाये ।
तप में ही वह काल बिताता, रह एकाकी प्रभु को ध्याता ।
राज पाट था उस ने त्यागा, मोक्ष लाभ का वह अनुरागा ।
जगत की माया से विरक्त, सकल सुखों से रह के त्यक्त ।
बस एकाकी तप कर पाता, संग न को भी उस को भाता ।
उस के चित्त में यही विचार, मोक्ष पाऊँ मैं किसी प्रकार ।
परविराग में वह था लागा, मुक्ती पग पर इस विध पागा ।
मन था शुद्ध और बुद्धि स्थिर, इस विध रहा वह काल बहु स्थिर ।

[1]अजनाभ : अर्थात् भगवान की नाभि से उत्पन्न हुआ देश । सृष्टि का केन्द्र स्थल ।

दो०–काल बहुत तक उस किया, इस विध तप अभ्यास ।
इक शत्रु तभी आ गया, कीना जिस प्रयास ।। 2790क
किया उस प्रयास यह, तप करूँ मैं भंग ।
मोक्ष लाभ न कर सके, रह यह मेरे संग ।। 2790ख

इतनी सुन 'सेवक' से गाथ, बोला एक भक्त "हे नाथ ।
कैसा पापी शत्रु वह होय, तप को सहन करे नहीं जोय ।
परन्तु भरत था वीर महान, रिपु क्या कर सकता नुकसान" ।
कर श्रवण यह भक्त की बात, 'सेवक' बोला हे मम तात ।
प्रछन्न रूप जो शत्रु आवे, क्षुद्र भी हो प्रबल वह जावे ।
जिस शत्रु था कीन आघात, दीखे मीत रूप साक्षात ।
उसे भरत ने गले लगाया, मुक्ति मग से भटक वह पाया ।
सुन कर 'सेवक' से यह बात, वही भक्त फिर बोला "तात ।

दो०–ऐसा कौन थां वह रिपु, तात मेरी जिज्ञास ।
क्षुद्र सा रिपु आय कर, करे योग का घात ।। 2791क
करे योग का घात वह, अजब सुनी यह बात ।
योग शक्ति सब से प्रबल, लेश न भ्रम है तात ।। 2791ख

स्पष्ट बात अब हमें बतावें, जो रहस्य हो खोल जतावें ।
उसी शत्रु का बोध करावें, प्रबल जिसे योगी पै पावें" ।
सुन 'सेवक' उस जन की वाणी, कहा तुम सत्य बात न जानी ।

सभी घाटों के भीतर चोर, छिप कर रहते हैं इक ठोर ।
प्रछन्न वेश धार आ जावें, योगी को भी ठग वे पावें ।
कथा भरत की सुनो मन लाय, स्पष्ट बात यह तब हो पाय ।
भरत करता था जब तप तात, क्या देखा उसने इक प्रात ।
इक मृगी जल पान को आई, नदी के तट पर खड़ वह पाई ।
गर्ज सिंह की तब सुन पाई, मृगी श्रवण कर अति घबराई ।

दो०-गर्ज सिंह की श्रवण कर, मृगी भयी भयभीत ।
बिना बुझाये प्यास निज, कूद पड़ी जल शीत ।। 2792क
गर्भवती थी वह मृगी, श्रम जब भया विशेष ।
दौड़ धूप में हो गया, पात गर्भ निःशेष ।। 2792ख
हरिणी गिर कर मर गई, बछड़ा जल के बीच ।
देख भरत ने डूबता, भयी दया मन बीच ।। 2792ग

राजर्षि यह सभी कुछ देखा, मरती हरिणी को भी पेखा ।
शावक जल के बीचों बीच, डूब रहा था ग्रस रही मीच ।
दया भरत के मन उंपजाई, उस नदी में छलांग लगाई ।
शावक को वह तट पै लाया, इस विध उस का प्राण बचाया ।
निज आश्रम में तब ठहराया, वात्सल्य भाव बहु दिखलाया ।
ममत्व उस से उपजा ऐसे, निज बालक से होवे जैसे ।
प्रातः उस को घास खिलाता, हरी हरी जो चुन के लाता ।

उस के संग रहे सब काल, जिमि वत्सल नहीं हो बेहाल ।
ऐसा प्यार चित्त उपजाया, प्रतिक्षण उस में ही मन लाया ।

दो०–अन्य कर्म सब भूल कर, सेव करे चित्त लाय ।
अंग संग उसके रहे, न हरिण जिमि दुख पाय ॥ 2793

मन में रहता सदा सशंकित, हिंसक पशु न करें आतंकित ।
सिंहादी से उसे बचावे, रात्रि को सदा पास सुलावे ।
यदि कुटी से निकल वह जावे, भरत उसी के पाछे धावे ।
जब तक उसको न ले आवे, मन में वह न चैन को पावे ।
चित्त में उस के था अभिमान, बचाई मैंने इस की जान ।
मोह वश उसने दीन भुलाय, ईश्वर सब का भाग्य बनाय ।
कौन किसी का जीवन दाता, सब का रक्षक वही विधाता ।
जिस की रक्षा प्रभु कर पावे, मौत न उस के सन्मुख आवे ।
जिस के रक्षक हों भगवान, उसे न खतरा कहीं से जान ।

दो०–रक्षक जिस के नाथ हों, उसे न मारे कोइ ।
भूले जो इस तथ्य को, पड़त मोह में सोइ ॥ 2794क
प्रबल मोह को जान कर, 'सेवक' रहत सभीत ।
करत प्रभु से वेनती, बनो रक्षक सब रीत ॥ 2794ख
राजऋषि था भरत जो, और तपी भी जान ।
वह भी मोह में पड़ गया, 'सेवक' तो अनजान ॥ 2794ग

इस 'सेवक' अनजान की, सद्गुरु करें सँभाल ।
पूरण सद्गुरु हैं मिले, मुलख जो परम दयाल ।। 2794घ

मुझे भरोसा नाथ का, राखें वही निशंक ।
वही बचावें दास को, दे शरण निज अंक ।। 2794ङ

राम मुलख निज दास के, रक्षक बनें हमेश ।
मोह ममता के पाश से, राखें दूर निशेष ।। 2794च

सुन कर सारी बात यह, प्रश्न भक्त ने कीन ।
"यह भरत का पुण्य कर्म, प्राण हरिण को दीन ।। 2794छ

उस की रक्षा करत वह, पल पल हमरे नाथ ।
महापुण्य कर्तव्य था, भरत किया निज हाथ ।। 2794ज

उस का उत्तम फल मिले, हमरा तो यह ज्ञान ।
आप कहें यह भरत का, था मोह अज्ञान ।। 2794झ

नाथ करें इस का समाधान, हमें तो है न लेश भी ज्ञान ।
संशय जिस विध हमरा नाशे, हृदय में जिमि सत्य प्रकाशे ।
वह ज्ञान हम आप से पायें, अपना सारा भरम मिटायें" ।
सुन कर उस की यह जिज्ञास, 'सेवक' कथी बात जो खास ।
हे मीत ! तुम लो यह जान, सूक्ष्म तत्व की करो पहचान ।
अति सूक्ष्म एक रेखा भाई, धर्म अधर्म की करे जुदाई ।
उस रेखा को जो पहचाने, मुक्ती का मग वह ही जाने ।

उस रेखा की सूक्षमताई, दृष्टि गत नहीं हो मम भाई ।

दो०–अति सूक्षम जो रेख है, इन दोनों के बीच ।
गुरु कृपा से जभी लखें, पीछा छोड़े मीच ।। 2795क
भरत देखी न रेख वह, पड़ा मोह के कूप ।
बान्धव समझा हिरण को, भूला निज स्वरूप ।। 2795ख
चुम्बन करता हरिण को, जान उसे प्रिय मीत ।
इक पल भी न बिछुड़ता, न यह ज्ञान की रीत ।। 2795ग
उपजा मन में मोह था, रिपु ज्ञान का सोय ।
अर्जुन को जिमि था भया, कृष्ण निवारा जोय ।। 2795घ
जिमि बादल ढक लेत है, सूरज का प्रकाश ।
मोह तिमि जभी ऊपजे, करे ज्ञान का नाश ।। 2795ङ

ग्रस्तमोह न धर्म पहचाने, निज हानि को लाभ ही माने ।
कर्म अकर्म विकर्म का भेद, उसे न सूझत महा यह खेद ।
मोह जान तू कीच का ताल, जिस में गिर जन भये बेहाल ।
उस से निकले केवल सोय, किरपा गुरु की जिस पर होय ।
गुरु किरपा बिन मोह न जाये, गुरुज्ञान ही मोह दुराये ।
सब धर्मों को जो जन त्यागे, केवल सद्गुरु चरणी लागे ।
उसे मिले सद्गुरु से ज्ञान, मोह से मुक्त तभी हो जान ।
उत्तम धर्म ले जन यह जान, जिस का मिले सद्गुरु से ज्ञान ।

दो०-गुरु से मिलता ज्ञान जो, वही धर्म पहचान ।
मनमानी न जन करे, यदि चाहे कल्याण ।। 2796

कर्म अकर्म का भेद जताय, गुरु जब जन का मोह दुराय ।
तभी ज्ञान का भये प्रकाश, अंधकार का होय विनाश ।
धर्म की सुन यह सूक्ष्म बात, बोला तब वह भक्त "हे तात ।
भरत स्वयं था ज्ञानी मीत, कर्म अकर्म की जानत रीत ।
उस को भी क्या गुरु की तोट, जिस की लेता जा वह ओट ।
गुरु से ज्ञान अज्ञानी पाये, ज्ञानी को गुरु क्या पढ़ाये ।
यह जिज्ञासा मेरी नाथ, इसे निवारो करो सनाथ ।
मेरी बुद्धि की यह भ्रांति, दूर भये तो पाऊँ शांति ।

दो०-मम बुद्धि की भ्रांत यह, दूर करो मम नाथ ।
मम जिज्ञासा तृप्त हो, बोध लगे मम हाथ" ।। 2797

जान के उस की यह जिज्ञास, 'सेवक' बोला सह विश्वास ।
तेरे मन का संशय ठीक, जग ने भूली मोक्ष की लीक ।
यह संशय है व्यापक मीत, शत्रुओं से इस जग की प्रीत ।
मित्र को जग दूर ठहराये, शत्रु को सदा गले लगाये ।
सुन कर 'सेवक' की यह बात, बोला वह जन "हे प्रिय तात ।
यह कैसी है बात बताई, समझ में तो न मेरी आई ।
शत्रु कौन जो गले लगाया, किस मित्र को दूर ठहराया ।

यह न समझ में मेरी आया, भ्रम मेरा न दूर हो पाया।

दो०–मेरे मन की भ्रांत तो, दूर भई न नाथ ।
सरल रूप से कथन कर, करिये मुझे सनाथ" ।। 2798

कहा 'सेवक' ने हे मम मीत, मोह शत्रु से सब की प्रीत।
मोह जीव को बांध दिखावे, जीव मुक्ति फिर किस विध पावे।
मोह विवेक का करता नाश, फंसे जीव मोह के पाश।
उस का ऐसा घान अंधेरा, दीखत होत न कभी सवेरा।
सुन कर भक्त ने पूछी बात, "लक्षण मोह का क्या है तात।
जीव मोह से जिमि बच पाए, ऐसा भी को कथें उपाय"।
'सेवक' कहा सुनो मम भ्रात, प्रकृति से मोह सब को तात।
आत्मा को नहीं देखे कोय, इस विध मोह में फंसे सोय।

दो०–प्रकृति से जो प्यार है, मोह कहावे सोइ ।
वही बचे इस पाश से, गुरुमुख जो जन होइ ।। 2799क
रहे गुरु के संग सदा, जब तक रहे शरीर ।
गुरुज्ञान को मन्त्र वत, रहे जपत मन धीर ।। 2799ख
गुरु से बिछुड़े न कभी, यदि चाहे कल्याण ।
गुरु से बिछुड़े जब कभी, घेरें शत्रु आन ।। 2799ग
सुन कर इस उपदेश को, कहा भक्त "हे नाथ ।
ज्ञान विलक्षण है लगा, आज हमारे हाथ ।। 2799घ

रहे सदा ही ध्यान में, भूलेंगे न लेश ।
शरण गुरु की सभी गहें, मन वच कर्म हमेश ।। 2799ङ

एक बात हमरे प्रभु मन में, जो बतावें इस प्रसंग में ।
था भरत जब मोह में आया, और योग से था गिर पाया ।
उस के आगे की प्रभु गाथ, करें बतला कर हमें सनाथ ।
योगी पथ से जब गिर पावे, मोह आदि के वश जब आवे ।
उस की गति का करें बखान, मिले जो हम को निश्चित ज्ञान"।
भक्त की सुन कर यह जिज्ञास, जिस ने बात थी पूछी खास ।
कहा 'सेवक' ने हे मम मीत, विधना की यह रची है रीत ।
अंत मती से ही गति पायें, मन के भाव बांध ले जायें ।

दो०-मन के जैसे भाव हों, वही गति जन पाये ।
ज्ञानी भी न मुक्त होय, मोह यदि उपजाये ।। 2800क

मोह यदि उपजाय मन, प्रकृति के रह संग ।
ज्ञानी भी फिर तन धरे, मोह दिखावे रंग ।। 2800ख

मोह दिखावे रंग वह, मुक्त जीव न होय ।
ध्यान ज्ञान व योग को, करे अछादित सोय ।। 2800ग

चित्त भरत के मोह था, मृग शावक के साथ ।
जन्म लिया मृग रूप में, पड़ा काल के हाथ ।। 2800घ

पड़ा काल के हाथ वह, ज्ञानी भया कुरंग ।
अतर्क्य गति है मोह की, क्यों न रहें निसंग ।। 2800ङ

शिक्षा लेवें भरत से, रहें मोह से दूर ।
यह संभव तब ही भये, सद्गुरु मिलें हजूर ।। 2800च

सद्गुरु जन को जब मिलें, प्रतिपल शिक्षा देंय ।
पाश मोह के न पड़ें, सद्गति ही जन लेंय ।। 2800छ

20. 'सेवक' की श्री प्रभु जी से पुकार

भक्त जनों ने शिक्षा पाई, मोह की शक्ति मन में लाई ।
सद्गुरु रक्षक सदैव दयाल, बात यह आई उन के ख्याल ।
विलंब भया सभी ने जान, कीना सब ने तब प्रस्थान ।
'सेवक' मन में प्रभु को ध्यावे, उन की दया सिमर वह पावे ।
पुकार करे वह हे भगवान, आप से ही मैं पाऊँ त्राण ।
छोड़ नाथ ! तुझे कहां जाऊँ, संकट अपना किसे सुनाऊँ ।
काम क्रोध व मद ने घेरा, मोह ममता मन लाया डेरा ।
अभिमान ने चित्त को जकड़ा, मिल सबन ने जीव यह पकड़ा ।
छटपटाये न छूटन पाये, प्रभो ! प्रभो ! ही वह कुरलाये ।

दो०–प्रभो बनो सहायी तुम, शत्रु करें हताश ।
फांदा है इन जीव को, छूटन की न आश ।। 2801

शत्रुन ने है इस को फांदा, दृढ़ गांठों से इस को बांधा ।
कहां जाऊँ मैं किसे सुनाऊँ, तुम को ही निज रक्षक पाऊँ ।
शरणागत के तुम प्रतिपाल, दीन जनों पर सदा दयाल ।
हरणामदास का दुख निवारा, मुझ को भी प्रभो दो सहारा ।
मरती बुढ़िया को तुम तारा, मुझ को भी प्रभो दो सहारा ।
रामरती को प्रभो उबारा, मुझ को भी प्रभो दो सहारा ।
लवपुर के बहु जन अपनाय, मेरे भी प्रभो बनो सहाय ।
अमृतसर के नगर को तारा, मुझ को तेरा एक सहारा ।
समाई के बहु जन प्यारे, उन के तुम ने काज संवारे ।
मैं भी शरण उसी विध आया, छोड़ तुझे ना अन्य उपाया ।

दो०-भूलना न हे नाथ जी, मैं चौरासी बीच ।
चरण शरण में राखिये, हूँ मैं यद्यपि नीच ।। 2802

पतित पावन नाम तुम्हारा, पतित अनेकों को तुम तारा ।
जब जब मानव तन तुम धारा, दीन जनों को मिला सहारा ।
कृष्ण रूप में जब तुम आये, ग्वाल बाल तुम गले लगाये ।
रामचन्द्र के रूप को धार, वनचर जन तुम दीने तार ।
रामलाल अब भये योगेश, शरणी मैं हूँ दीन विशेष ।
दीन जनों से तेरा नाता, काल सनातन से विख्याता ।
वही विरद अब प्रभु संभाल, बंधन से यह जीव निकाल ।
हरिहरानन्द जिस विध तारा, मिले मुझे भी वही सहारा ।
रामा किरपा जिस से पाई, मेरे भी वही बनें सहायी ।

दो०-क्रोध काम मद लोभ वश, भया जीव है नाथ ।
इसे बचाओ पाप से, हे प्रभो ! दे हाथ ।। 2803

काम वेग से मुझे बचाओ, क्रोधाग्नि से मुझे छुड़ाओ।
लोभ की आंधी करे बेहाल, मोह मूर्छित हूँ लो संभाल।
अहं की मांड चढ़ी अति भारी, कृपा सलिल प्रक्षाले सारी।
हे नाथ मैं किमि कथ पाऊँ, अनीती इन की किमि सुनाऊँ।
बन मित्र सभी घाट में आते, पा अवसर आघात लगाते।
अंतर मांझ था दीना वास, करके इन पर मैं विश्वास।
विश्वास घात से बाज़ न आवें, प्रतिक्षण हैं ये मुझे सतावें।
जानूँ इन की मैं अब चाल, करते हैं ये मुझे बेहाल।
कैसे मैं बच सकूँ हे नाथ, आप अब राखो दे निज नाथ।

दो०-मैं असमंजस में पड़ा, मेरी सुनो पुकार ।
शत्रु वे बन मित्र वत, हैं करते प्रहार ।। 2804क
संग न इन का छूटता, ये भी छोड़ें नाहिं ।
गोरख धंधा है बड़ा, मेरे अन्तर माहिं ।। 2804ख
मैं जानूँ ये मित्र हैं, रहत सदा मम सँग ।
जन्म जन्म का संग है, करें परन्तु तंग ।। 2804ग

इन मित्रों से मुझे बचाओ, इन के वश न मुझ को पाओ।
करता जभी काम प्रहार, करता जन को बहुत ख़्वार।

लागे तो वह परम स्नेही, मैं मानूँ वह परम द्रोही ।
जन की करे वह अति ख़वारी, कामी जन तो हो बदकारी ।
प्रभो करो तुम ही रखवारी, संत कहें तुम हो पापारी ।
पापी काम से बचा न कोय, तुम बचाओ बचे ही सोय ।
मैं कामी मैं पापी भारी, मुझे बचाओ भव भय हारी ।
तेरी शरणी जो चलि आया, काम पाश से वह बच पाया ।

दो॰-मैं भी शरणी आ पड़ा, करिये इधर ख्याल ।
क्या बतलाऊँ नाथ जी, कीना काम बेहाल ।। 2805

इस अग्नी से मुझे बचाओ, अपनी चरणी चित्त लगाओ ।
जन्म जन्म हूँ काम सताया, करो नाथ अब मुझ पर दाया ।
इस चौरासी खेल रचाया, मेरे संग सदा रह पाया ।
पिशाचवत है लागा संग, करता जीव को हर पल तंग ।
मन मेरे की पेश न जावे, बुद्धि को भी यह ग्रस पावे ।
ऐसा पापी काम यह नाथ, मुझे बचाओ दे निज हाथ ।
नाम आप का सुन के पापी, भय माने गा यह संतापी ।
आप की कृपा से हे नाथ, 'सेवक' पड़े न इस के हाथ ।

दो॰-मुझे बचाओ नाथ जी, करता काम हताश ।
योग मार्ग से भटक कर, होत जीव का नाश ।। 2806

जनक काम का राग स्वामी, क्रोध काम का है अनुगामी ।

क्रोध से तन मन ही जल जाय, सूझत न मुझे कोई उपाय
मैं तो आप की शरणी नाथ, मुझे बचाओ दे निज हाथ।
तेरे कर की शीतल छाया, शांतिदायक प्रभो उपाया।
क्रोध की ज्वाला उठ जब पाय, अन्तकरण तब जल ही जाय।
बरसायें कृपा का जल नाथ, शीतलता तभी लागे हाथ।
हे प्रभो मुझे दो वह बोध, न किसी निमित्त भी करूँ क्रोध।
राखो मेरे चित्त को शांत, क्रोध करे नहीं मुझे भ्रांत।

दो०–ऐसी किरपा कीजिये, उठे न कोप ज्वाल ।
मन मेरा हे नाथ जी, रहे शांत सब काल ।। 2807क

रहे शांत सब काल ही, मन मेरा भगवान ।
शांति का जबं लाभ हो, मिले तभी सद् ज्ञान ।। 2807ख

नाथ करें अब मुझ पर दाया, क्रोधाग्नी ने बहुत सताया।
कामी क्रोधी भाया शरीर, चित्त में रही न किंचिद् धीर।
इस अग्नी से मुझे बचाओ, ज्ञान नीर से इसे बुझाओ।
शांत रहे जिमि मन यह मेरा, दया करो मैं दास हूँ तेरा।
नाथ यह शत्रु है बहु घोर, भस्म करे यह तन मन मोर।
चले न मेरी को भी चाल, करो मेरी अब आप संभाल।
करो नहीं कुछ भी अब देर, भये गा दास भस्म का ढेर।
समय पर लो इस को तुम थाम, शत्रु का करो काम तमाम।
विनय नाथ है तुम से मेरी, मुझे बचाओ करो न देरी।

दो॰-तेरी देरी से प्रभो, बिगड़ेगा मम काम ।
क्रोधाग्नी से भस्म हो, रहेगा न मम नाम ।। 2808

इक रिपु नहीं यहां बहुतेरे, लोभ ने भी लगाये डेरे ।
जानूँ न यह कहां से. आया, जिस ने मुझ को सदा सताया ।
जो देखूं मम मन ललचाये, चैन पाये न जब तक पाये ।
इत उत सदा मुझे भटकाये, देख मान अपमान न पाये ।
यह सामग्री पाय जो भारी, भरता पेट न खा कर सारी ।
पड़ा है राक्षस सम मम पेश, कुंभकरण या है लंकेश ।
इस से पीछा छूटे राम, दयानिधि मम कीजिये काम ।
तुम देखो जब एक ही बार, सभी शत्रु तब जावें हार ।

दो॰-आप बचाओ नाथ जी, इन शत्रुन से दास ।
सर्वनाश है सामने, डोरी मम तव पास ।। 2809

जग में जब से मैं हूँ आया, ममता मुझे दबोच दबाया ।
गल से इस ने मुझ को पकड़ा, दृढ़ फंदों में इस ने जकड़ा ।
शैशव में था माँ से मोह, इक भी पल नहीं सहूँ विछोह ।
रो रो कर आकाश उठाता, जभी मां से बिछुड़ मैं पाता ।
जब लिया मैं जनक पहचान, उस के मोह बंधा मैं आन ।
प्रति जन्म मैं पिता हैं पाये, विस्मृति ने तो सभी भुलाये ।
जानूँ जनक यही है मेरा, इस बिना तो सभी अन्धेरा ।
बिक गया मैं इसी के हाथ, छोड़ सकत नहीं इस का साथ ।

दो०–मात–पिता प्रति मोह जो, मैं बंधा उस पाश ।
भूल गया निज रूप मैं, भया ज्ञान का नाश ।। 2810 क

बड़ी भयी जब आयु मम, मिला सहोदर संग ।
मोह उसी से हो गया, मन का बदला रंग ।। 2810 ख

संग उसी के विचरता, खाता पीता संग ।
उसे इमि मैं जानता, निज का हो जिमि अंग ।। 2810 ग

मोह न जन का पीछा त्यागे, आयु भर उस के संग लागे ।
युवा होने जब आयु आई, पत्नी का मोह तब सताई ।
पत्नी–पति बन्धे इक डोर, सकें न तोड़ मोह की डोर ।
छाया इस का छाया ऐसे, रात्रि का तम घना हो जैसे ।
जीवन का कर्तव्य हि भूलें, मोह के झूले में हि झूलें ।
कुछ जीवन इस विध ही जावे, सन्तति का फिर मोह सतावे ।
जग मर्यादा को भी भूल, स्वीकार करें बहु जीवन शूल ।
सन्तति मोह में रह सब काल, सम उन्मादी दीखे हाल ।

दो०–निज तन को भी भूल कर, स्मरण रहे संतान ।
बिसरे सब इस मोह में, सिमरें न भगवान ।। 2811

प्रभु किरपा जिस जन पै होय, त्याग सके इस मोह को सोय ।
हे प्रभो ! मुझे दीजिये त्रान, मोह सम नहीं है शत्रु आन ।
भुलाया इस मम जीवन लक्ष्य, देख सकूँ नहीं तुझे समक्ष्य ।

ऐसा जन जगत नहीं देखूँ, फंसा मोह में जो न पेखूँ ।
इस ने तो मुझे अति सताया, दुख दिया बहु मोह की माया ।
कर विराग भी मैं हूँ हारा, पटक पटक कर इस ने मारा ।
सन्मुख इस के पेश न जाये, यत्न मेरा कुछ कर न पाये ।
हे प्रभो अब तुम्हीं बचाओ, शरणागत को चरणि लगाओ ।

दो॰-शरणागत की लाज है, प्रभु तुम्हारे हाथ ।
क्रोध काम मद मोह से, मुझे छुड़ाओ नाथ ।। 2812

इक रिपु नहीं यहां बहुतेरे, इक इक के हैं रूप घनेरे ।
काम क्रोध मोह बलकारी, लोभ की शक्ति भी बहु भारी ।
अहंकार की सुनिये बात, वह तो राक्षस है साक्षात ।
चित्त पै घाले जब निज पाश, बुद्धि का तत्काल विनाश ।
निज कृपा अब प्रभु कर पाओ, अहंकार से मुझे बचाओ ।
तव किरपा यदि मैं पा जाऊँ, दानव गर्व के वश न आऊँ ।
निज को कर्ता कभी न जानूँ, तुझे विधाता मन से मानूँ ।
शरण तेरी में रह कर नाथ, समर्पूं जीवन तेरे हाथ ।
मिले जो मुझ को तुझ से दान, करूँ न उस का भूल अभिमान ।

दो॰-उपजे जब अभिमान यह, मेरे मन में नाथ ।
कर किरपा तब वरजिये, जान अमान अनाथ ।। 2813

आप की कृपा यदि पा जाऊँ, इन शत्रुन से भय ना खाऊँ ।
ये बिगाड़ें नहीं कुछ मेरा, जान नाथ का मुझ को चेरा ।

है मेरी बस यही अरदास, स्वीकार करो मुझे निज दास।
और न चाहूं मैं कुछ देव, मिले आप के चरण की सेव।
चरण आप के सुख के मूल, शत्रु पहुँच सके नहीं भूल।
जिस को आप के चरण प्राप्त, विपदा उसकी सकल समाप्त।
वर मांगूँ मैं आप से एक, मिले चरणों की मुझ को टेक।
जगत भयंकर रिपु दुखदायी, 'सेवक' के बनें आप सहायी।

दो०–आप सहायी जब बनें, इस 'सेवक' के नाथ।
निर्भय तब ही यह भये, गह तुम्हारा हाथ ॥ 2814

मैं अनेकों जन्म गंवाये, माया के पड़ हाथ बिताये।
माया ने मुझे बहु सताया, [1]चार खानों में मुझे घुमाया।
रूप अपना भूल मैं पाया, मोह काम के वश ही आया।
तेरी शरण न जब तक पायी, मति स्थिर नहीं मम हो आयी।
भटक भटक मैं जीवन खोया, बन कृपण सब पास मैं रोया।
सकता कौन मम बन सहायी, झूठी सब की है प्रभुतायी।
मानव और देव भी सारे, ये सब भिक्षुक हैं तव द्वारे।
जिस से मांगत वही लाचार, हार के आया तव हूँ द्वार।

दो०–मेरी लज्जा नाथ जी, अब है तेरे हाथ।
चरणों में अब शरण दो, बेचो न मोह हाथ ॥ 2815 क

[1] चार खान : जेरज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज चार प्रकार की योनियां

प्रभो मुझे विश्वास है, त्यागोगे न आप ।
बार एक अपना लिया, दूर भया संताप ।। 2815 ख

भवसागर से मुझे निकाला, किरपा के सागर में घाला ।
कीन आप ने जो है दाया, पूर्ण रहस्य न है मैं पाया ।
नरक के गर्त से प्रभु निकाल, निज गोद में लीन संभाल ।
दीन दयाल दया दिखलाई, समझी न प्रभु की प्रभुताई ।
मेरे गर्व ने मुझे भुलाया, काम क्रोध ने अति छकाया ।
लोभ के वश भूला जग मांझ, मोह ने दिन में कीनी सांझ[1] ।
क्रोध काम मद लोभ अभिमान, इन लोपा सभी आत्म ज्ञान ।
ज्ञान के मग ये शत्रु भारी, सृष्टि इनसे व्यापी सारी ।
जब से चरण शरण प्रभु दीन, पग पग पर उन रक्षा कीन ।

दो०–सकल सृष्टि में व्याप्त हैं, क्रोध काम अभिमान ।
शरण पड़े जो नाथ की, मिले उसी को त्राण ।। 2816 क

क्रोध काम मद लोभ में, खोये जन्म अनेक ।
शत्रुन के ही वश रहा, न गही प्रभु की टेक ।। 2816 ख

आ प्रभु मुझे स्वयं संभाला, अचेत मुझे निज चरणि घाला ।
किस मुख से मैं करूँ बखान, प्रभु की दया अतीव महान ।

[1] भाव यह है कि मोह की प्रबलता ने मुझे इतना अज्ञानी बना दिया है कि जैसे दिन संध्या के अंधकार में बदल जाए ऐसे ही मेरी बुद्धि अज्ञान से आच्छादित हो गई है ।

मोह पड़े को आ संभाला, शत्रुन के वश-पड़ा निकाला।
शब्द नहीं जो करूँ बखान, कृपा अलौकिक कीन महान।
स्वयं बचाते न प्रभु आन, शत्रु लेते तन मन प्राण।
जिस को ठौर न और ठिकाना, मैं हूँ प्रभु तव दास निमाना।
आय मुझे तू गोद उठाया, शत्रुन से आ मुझे बचाया।
किस मुख से मैं करूँ बखान, प्रभो तव कृपा का मैं ब्यान।
मेरा अन्तकरण ही जाने, तेरा प्यार वही पहचाने।
अब बस मेरी यही अरदास, सदा रहे तव शरण में दास।

दो०-सदा रहे तव शरण में, तव निमाना दास।
'सेवक' की तव चरण में, बार बार अरदास. ॥ 2817 क

ऐसी प्रभु से प्रार्थना, करत रहा उस रात।
भोर भई सब आ गये, जन वही तब प्रात ॥ 2817 ख

21. काम क्रोध आदि पांचों में से सब से बलवान शत्रु कौन ? तथा ऋषि विश्वामित्र का उपाख्यान

स्वागत सेवक ने किया, और बिठाये पास।
एक भक्त ने तब कहा, "एक प्रश्न है खास ॥ 2817 ग

काम क्रोध व लोभ का, कीना आप बखान।
पाँचों में से कौन है, अधिक सबल भगवान ॥ 2817 घ

वश कैसे ये हो सकें, यह भी करें बरवान ।
वश कीना इन जगत को, है जगत हैरान'' ।। 2817 ङ

सेवक ने सुनी उस की बात, और कहा ''यह सत्य है तात ।
सकल जगत इन से हैरान, इन कीना सब को परेशान ।
ज्ञानी भी हैं ना बच पाये, तपी तपस्वी भी वश आये ।
क्रोध काम सब से बलकारी, सकल सृष्टि जिन वश कर डारी ।
जड़ चेतन सभी कीन अधीन, इन सन्मुख सब प्राणी दीन ।
महा तपस्वी भी डिग पाये, जब इन ने निज बाण चलाये''।
सुन कर सेवक की यह वाणी, कहा भक्त ने ''हे सन्मानी ।
बात क्या तुम यह कह पाये, तपस्या तो है प्रबल उपाय ।
तप से सकल काम हों सिद्ध, लोक वेद में यह प्रसिद्ध ।
तपस्या सब को करे अधीन, काम, क्रोध क्यों हों न दीन ।

दो०-यह संशय है नाथ मम, करें निवारण देव ।
ज्ञान मिले जिस विध हमें, और खुलें सब भेद'' ।। 2818 क

उस की सुन जिज्ञास यह, सेवक कीन बरवान ।
मेरे मित्र एक कथूँ, मैं इतिहास पुराण ।। 2818 रव

स्पष्ट बात जिससे भये, हो तव संशय दूर ।
क्रोध काम की प्रबलता, शीघ्र भये न चूर ।। 2818 ग

कथन करूँ प्रसिद्ध इतिहास, सुन पाओ तुम सह विश्वास ।

राजा था कुशनाभ महान, भारत खण्ड में लो तुम जान।
उस का सुत नाभी था भाई, धर्म कर्म जिस कीन कमाई।
सुत पाया उस उच्च सुजान, विश्वामित्र जिस का अभिधान।
चक्रवर्ती सम्राट महान, सैना सहित करता प्रयान।
कीना राज्य का बहु विस्तार, यशस्वी राजा परम उदार।
गोब्राह्मण की करता सेव, मानत ऋषिमुनि सब वह देव।
ऋषि मुनियों के आश्रम जाय, ज्ञान गोष्ट उन से कर पाय।
इक दिन उस सुयोग यह पाया, वशिष्ठ मुनि के आश्रम आया।

दो०–सेन सहित वह पहुँच कर, वशिष्ठ मुनि के धाम।
ज्ञान गोष्ट करने लगा, बीत गयी बहु याम ।। 2819

रात्री बहुत गयी जब बीत, कहा वशिष्ठ ने तब सप्रीत।
राजन रात्री यहीं बितायें, कूच प्रातः ही कर पायें।
विश्वामित्र ने मानी बात, वहीं बिताई उस वह रात।
आतिथ सेवा किमि हो पाये, चित्त वशिष्ठ भाव ये आये।
कठिन था काम न यह कुछ खास, कामधेनु थी उस के पास।
कामधेनु को वशिष्ठ बुलाया, आतिथ कारज दीन जताया।
"सकल सेना आश्रम में मात, ठहरे सुख से आज की रात"।
कामधेनु जब आज्ञा पाई, दिव सामग्री सकल जुटाई।

दो०–कामधेनु की शक्ति से, आ जुटा सब साज।
चकित भये यह देख कर, विश्वामित्र राज ।। 2820

प्रात भयी, वशिष्ठ के पास, विश्वामित्र जी की अरदास ।
"ऋषिवर मैं हूँ बहु आभारी, सुख से रात बिताई सारी ।
सेना ने भी सुख बहु पाया, साज सभी प्रभु आप जुटाया ।
मैं तो चकित भया हूँ देव, जान सका नहीं मैं हूँ भेव ।
वन में किस विध सब जुट पाया, देव ! अलौकिक यह तव माया ।
संशय मेरा करें निवारण, भ्रान्ति का जिमि दूर हो कारण ।
क्षण में सब कुछ हुआ तैयार, बतायें भया यह किस प्रकार ।
राज्य में हम इमि न कर पावें, क्षण भीतर जिमि आप जुटावें ।

दो०–क्षण भीतर जो कर दिया, आतिथ का प्रबन्ध ।
सब सेन के हेत प्रभु, विचित्र यह निर्बन्ध ।। 2821 क

मम जिज्ञासा है भयी, कौन शक्ति वह नाथ ।
जिस शक्ति ने रच दिया, सकल साज इक साथ ।। 2821 ख

मम जिज्ञासा को प्रभो, पूर्ण करें दे ज्ञान ।
सह सेना तब हम चलें, आशिष पा भगवान" ।। 2821 ग

ऋषि वशिष्ठ जब सुन वह पायी, राजा ने जो विनय सुनायी ।
कहा "राजन् यह न मम काम, कामधेनु हमें किया सकाम ।
कामधेनु है काम–दुधारी, करती इच्छापूर्ण हमारी ।
मन में इच्छा जो उपजावें, पूर्ण वह होती शीघ्र पावें ।
आश्रमवासी सारे देव, तन मन से करें इसकी सेव ।

कामधेनु यह गो मातारी, माता सम सबको है प्यारी।
वह संकट सब हरे हमारे, पावें सुख उससे हम सारे।
राजन् शक्ति उसी की सारी, कर सके जो सेव तुम्हारी।
कामधेनु का कर आराधन, लो विदाई फिर तुम राजन।

दो॰–कामधेनु के आश्रय, चले सकल सुपास।
वन में रह सब संपदा, पावें बिन प्रयास ।। 2822

कामधेनु लक्ष्मी का रूप, कामधेनु में शक्ति अनूप।
राजन् कृपा इसी की जान, दिया इसी सब लो तुम मान।
इसको करके तुम प्रणाम, प्रयान करो फिर तुम निज धाम"।
सुनी राजा जब ऋषि की वाणी, चित्त डोला और मन अनुमानी।
कामधेनु का यहां क्या काम, यह तो राज्य के आवे काम।
प्रजापालन में हो सहायी, जन करें सब मिल सेवकायी।
तब उस वशिष्ठ को कीन अरदास, "कामधेनु ऋषिवर तव पास।
हम चाहें इसको ले जाना, सभी प्रजा को चाहें दिखाना।
प्रजा दर्शन इसका कर पाय, और निरन्तर लाभ उठाय।

दो॰–आप अगर इस धेनु को, राज्य हेतु दे पांय।
एक लाख हम दे सकें, तुझे सुसज्जित गांय ।। 2823क

स्वर्णजटित सब शृंग हों, उन धेनुन के नाथ।
सेवक भी बहु भेज दूँ, उन गउओं के साथ ।। 2823ख

एक गाय के कारणे, मांगो जो भी नाथ ।
भेंट आपको मैं करूँ, लाख गौ के साथ ।। 2823ग

सुनकर विश्वामित्र की बात, वशिष्ठ कहा "सुन हे मम तात।
तुमने इच्छा जो प्रकटाई, वह तो है स्वीकार न भाई ।
कामधेनु से जो मम प्रीत, कथ सकूँ नहीं वह मम मीत ।
यज्ञादि जो कर्म हैं सारे, कामधेनु के चलें सहारे ।
कामधेनु सब की मातारी, सब की इस से प्रीति न्यारी ।
यह भी सब से करती प्यार, यह नहीं सके विछोह सहार ।
कामधेनु मैं किमि दे पाऊँ, द्वारा इस सब कर्म चलाऊँ ।
हमारे इस में बसते प्राण, कामधेनु है पूज्य महान ।

दो०–इस की पूजा सब करें, सभी करें मिल सेव ।
कामधेनु किमि दे सकें, आश्रम की अधिदेव" ।। 2824

सुन कर उस का यह इन्कार, विश्वामित्र कीना तकरार ।
राजहठ उसके चित्त आया, बात स्पष्ट तभी कह पाया ।
"ऋषिवर तेरी बात न मानूँ, सब सम्पत्ति राज्य की जानूँ ।
कामधेनु तो मैं ले जाऊँ, तेरी बात न सुन मैं पाऊँ ।
यह प्रजा के आवे काम, वन में इस का क्या है काम" ।
राजा जब इस विध कह पाया, ऋषि ने उसको फिर समझाया ।
"राजन् तुम दो हठ को छोड़, चित्त लो अपना इस से मोड़ ।

कामधेनु तव काम की नाँह, आश्रम में ही इस की थाँह ।

दो०-कामधेनु की कामना, करो नहीं मम तात ।
सत्ता का अभिमान तो, सभी बिगाड़े बात ।। 2825

मन में मिथ्या भाव न आनो, सभी कुछ राजा का न मानो ।
राजा का है नहीं अधिकार, प्रजा मालिक है, हे सरकार ।
प्रजा का धन प्रजा का तात, राजा रक्षक, सत्य यह बात ।
रक्षक भक्षक न हो पाये, शाश्वत धर्म यही चलि आये ।
निज धर्म का करो न त्याग, पर धन का दो त्याग अनुराग ।
धर्म का करता जन जो त्याग, उस का क्षय हो, हे महाभाग ।
पर धन पर जब चित्त लुभाय, वृत्ति वही तो चौर्य कहलाय ।
राजन बात लो मेरी मान, धर्म के मग की कर पहचान ।
राजा हो जब खुद अन्यायी, न्याय धर्म रहे कहां भाई ।
जहां पर धर्म वहां सुखवास, अधर्म जहां वहां दुख व नास ।

दो०-मुख धर्म से मोड़ तुम, ले धेनु यदि जाओ ।
कामधेनु से भी प्रभो, सुख लेश न पाओ ।। 2826क

राजा बनना सुगम है, राज्य धर्म दुश्वार ।
राज्य धर्म से जो गिरे, पाये नरक द्वार" ।। 2826ख

कही मुनि जब धर्म की बात, जला क्रोध से नृप का गात ।
'सेवक' कहा तब भक्तन ताहीं, क्रोध की अग्नि बसे सब मांहि ।

भस्म करे वह जन की बुद्ध, धर्म पहचाने न जन क्रुद्ध ।
कहा राजा ने "मैं बताऊँ, राज धर्म तुम को समझाऊँ ।
राजाज्ञा का करें उल्लंघान, दण्डित हों अपराधी सब जन ।
राजाज्ञा को सब सुन पायें, कामधेनु मम जन ले जायें" ।
राजाज्ञा जब ऐसी दीनी, खोल धेनु तब सेवक लीनी ।
धेनु भागी आई मुनि पास, थी लाचार व परम उदास ।
निज स्वामी से की अरदास, "मुझे न त्यागो राखो पास ।
मुझ से भया कौन सा दोष, जिस कारण मुझ ऊपर रोष ।

दो॰–कौन दोष के कारणे, त्याग रहे हो नाथ ।
जीते जी तो हे प्रभो, त्यागूँ न तव साथ" ।। 2827

ऐसा कह वह रोने लगी, दया मुनि के भी चित्त पागी ।
कहन लगा वह "हे मातारी, विवशता आ पड़ी है भारी ।
राजा निज बल को दिखलाये, और खोल तुम्हें ले जाये ।
राज्य की सेना के सन्मुख, हमारी चले न कुछ, यह दुःख ।
दुख मेरे मन है बहु भारी, रक्षा कर न सकूँ तुम्हारी" ।
विवशता निज जब मुनि सुनाई, कामधेनु मन रिस भर लाई ।
कहन लगी "हे मुनि योगेश्वर, ब्रह्म शक्ति के तुम सर्वेश्वर ।
ब्रह्मर्षि की स्थिति को धार, तुम क्यों मान रहे हो हार ।
इन्द्र भी तब सन्मुख कंगाल, इस राजा का कहूँ क्या हाल ।
निज शक्ति का कर आह्वान, सेना भस्म करिये भगवान ।
सनातन धर्म यही बतलाये, आतताई जभी चढ़ आये ।
मुनि भी उस पर करके कोप, उस की शक्ति का करें लोप ।

यह विपदा है मुझ पर आई, जो शक्ति मैं तुझ से पाई ।
उसी का कर अब मैं आह्वान, अपनी रक्षा करूँ भगवान ।

दो०–ऋषि की इच्छा जान तब, कामधेनु तत्काल ।
देव सेना प्रकटाय, कथन किया निज हाल ।। 2828क

देव सेना के आगे, राजा की वह सैन ।
ठहर सकी नहीं पल भर, नृप भया बेचैन ।। 2828ख

डूब गया बहु शोक में, विश्वामित्र राज ।
चूर्ण भया उस का गर्व, प्रथम बार था आज ।। 2828ग

विश्वामित्र सोचने लागा, क्षात्रबल उस को धिक् लागा[1] ।
योगी के बल की अधिकाई, थी प्रत्यक्ष उसे दिख पाई ।
ब्रह्मतेज से जो बल आये, वास्तव में बल वही कहाये ।
ब्रह्मतेज ने मेरे सारे, शस्त्र आज कुण्ठित कर डारे ।
उसी शक्ति का मैं भी संग्रह, अब करूँ पा ब्रह्म–अनुग्रह ।
[2]इन्द्रिय संयम कर मैं भारी, साधूँ योग साधना सारी ।

---

[1] धिक् बलं क्षत्रियबलं, ब्रह्मतेजो बलं बलम् ।
एकेन ब्रह्मदण्डेन, सर्वास्त्राणि हतानि मम ।।
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 56.23)

[2] तदेतत् प्रसमीक्ष्याहं, प्रसन्नेन्द्रियमानसः ।
तपोमहत् समास्थास्ये, यद् वै ब्रह्मत्वकारणम् ।।
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 56.24)

योग से शक्ति जब पा जाऊँ, ब्रह्म ऋषि मैं तभी कहलाऊँ ।
कर लूँ ब्रह्मशक्ति जब प्राप्त, कर सके नहीं कोई परास्त ।

दो०- ब्राह्मी शक्ति पाय कर, सबको करूँ अधीन ।
पूर्ण काम उसको करूँ, पड़े शरण जो दीन ॥ 2829क

इस विध मन में धार वह, गया हिमालय ओर ।
घोर तप में लग गया, ठहर एक ही ठोर ॥ 2829ख

की शिव की आराधना, दीर्घकाल आसीन ।
हो प्रकट महादेव ने, कामना पूर्ण कीन ॥ 2829ग

महादेव से शक्ति पाई, अस्त्रों शस्त्रों की समुदाई ।
कीन वशिष्ठ पै तब चढ़ाई, आश्रम की बहु क्षति कर पाई ।
भाग गई सब जन समुदाई, भाई हताहत जीव निकाई ।
आश्रम को उस कीन वैरान, वशिष्ठ को भी कीन हैरान ।
हाहाकार मची सब ओर, भागे जीव थे छोर विछोर ।
त्राहि त्राहि सब करने लागे, सभी पशु और पक्षी भागे ।
चले किसी की वहां न पेश, भयंकर शस्त्रों का आवेश ।
वशिष्ठ भस्म भये जिस रीत, ऐसी कटु थी उस की नीत ।

दो०- मन उस के प्रतिशोध की, जल रही थी आग ।
बदला लेऊँ वशिष्ठ से, धुन यही थी लाग ॥ 2830

वशिष्ठ पै शस्त्र बहु चलाये, वशिष्ठ नष्ट सभी कर पाये।
ब्रह्मास्त्र तभी हार चलाया, हाहाकार जगत में छाया।
ब्रह्मास्त्र का देख प्रयोग, वशिष्ठ संभाला तब निज योग।
ब्रह्मास्त्र का प्रचण्ड प्रकोप, योग शक्ति ने कीना लोप।
जिस घट योग शक्ति का वास, होत न उस को कहीं से त्रास।
जिस शक्ति ब्रह्माण्ड रचाया, जिस शक्ति वह स्थिर कर पाया।
जिस शक्ति से प्रलय हो पाये, योगी घट वही शक्ति समाये।
जिस शक्ति की जो एक तरंग, सकती विश्व को कर ही भंग।
उस शक्ति से न होय महान, ब्रह्मास्त्र भी हम लेवें जान।
वह शक्ति वशिष्ठ प्रकटायी, ब्रह्मास्त्र की मिटी महताई।

दो०-योग शक्ति के सन्मुख, निष्फल निज प्रयास।
विश्वामित्र देख कर, भया अतीव हताश ॥ 283 ॥

वशिष्ठ की शक्ति को जब देखा, मन में तब उस कीन उल्लेखा।
मैं अब क्यों न योग कमाऊँ, ऐसी सिद्धि जिस से पाऊँ।
लक्ष्य सिद्धि का उस ने धारा, तप का फिर उस लिया सहारा।
दीर्घ काल उस कीन तपस्या, सन्मुख उस के आई समस्या।
कितना भी हम तप कर पायें, पांचों चोर न वश में आयें।
इन पांचों से वह बच पाए, योगी सद्‌गुरु जिसे बचाए।
सद्‌गुरु जन को योग सिखाए, यम नियमों पर वही चलाए।
संयम मन का प्रथम कराए, कामादि से अवश्य बचाए।

विश्वामित्तार तप बहु साधा, कामादि पर रहें बन बाधा ।

दो०–विश्वामित्र पास तब, राजा आया एक ।
त्रिशंकु नाम बताय कर, मांगी उस की टेक ॥ 2832

कहा त्रिशंकु "राजन् भाई, तुम ने तपस्या बहु कमाई ।
इक्ष्वाकु कुल का मैं नरेश, धर्म कर्म में निरत हमेश ।
यज्ञ अनेकों मैं कर पाये, मन में अब इक साध समाये ।
अन्तिम यज्ञ वही कर पाऊँ, देह सहित जो स्वर्ग सिधाऊँ ।
वशिष्ठ मुनि मम कुल आचार्य, उसे बात यह नहीं स्वीकार्य ।
मेरी बात असंभव जाने, यज्ञ करवाने की न माने ।
बनो पुरोहित यज्ञ कराओ, मुझे सदेह स्वर्ग भिजाओ ।
मेरी विनय करो स्वीकार, होय तव कीर्ति का विस्तार" ।
विश्वामित्र चित्त अनुमाना, मिला सुअवसर ऐसा जाना ।
सोचा "तप का बल दिखलाऊँ, ब्रह्मर्षि की पदवी पाऊँ ।
जग सब मेरी शक्ति देखो, वशिष्ठ से कम न मो को लेखे ।
असंभव को संभव कर पाऊँ, वशिष्ठ को नीचा मैं दिखाऊँ" ।

दो०–इस विध मन अनुमान कर, कहा उसे तत्काल ।
"मैं कराऊँ यज्ञ तव, स्वर्ग मिले तत्काल" ॥ 2833

त्रिशंकु का उस यज्ञ आरम्भा, इस कर्म से सबन आचम्भा ।

देह सहित न स्वर्ग सिधावे, सफल किमि यह यज्ञ हो पावे ।
कर्म असंभव ऋषि आरम्भा, देवगणों को भी आचम्भा ।
तपस्वी विश्वामित्र महान, उसे था निज तप का अभिमान ।
अहंभाव नहीं जन को त्यागे, संग जीव के ही वह लागे ।
बिन गुरु-कृपा के अहंकार, का मिटना है बहु दुष्वार ।
उस के चित्त में था बहु रोष, सूझत न अहंभाव का दोष ।
वशिष्ठ कर्म जो न कर पाये, आज वही वह कर दिखलाये ।

दो०-अहंभाव में आय कर, कीना जब उस याज ।
स्वर्ग लोक को उठ चला, तभी त्रिशंकु राज ।। 2834क

प्रवेश वहां न पा सका, चली न कुछ भी पेश ।
विश्वामित्र देख यह, भया क्रुद्ध विशेष ।। 2834ख

कहे "स्वर्ग मैं रच सकूँ, नूतन इन्द्र राज" ।
आये जब अभिमान में, जन करे यही काज ।। 2834ग

कितना भी जन तप कर पावे, कर्ता जगत वह न बन पावे ।
काम क्रोध व मोह अभिमान, परमार्थ के ये शत्रु जान ।
यह ज्ञान जब गुरु से पावे, न वह वश अभिमान के आवे ।
कहा सेवक "हे भक्त सुजान, यह कथा महापुरुष की जान ।
काम क्रोध आदि अभिमान, इन से सदा रहें सावधान ।
महापुरुष तक भये ख़वार, किमि बचें हम लो चित्त धार ।

गुरु निकाले चित्त के दोष, दोष छिपे जो घट के कोष" ।
सुन कर सेवक की यह बात, एक भक्त कहा "हे प्रिय तात ।
महापुरुष का सुन इतिहास, हमें भया अब दृढ़ विश्वास ।
दोषों से हम रहें नियारे, कर्म करें सभी गुरु सहारे ।

दो०-गुरु की शरण ग्रहण कर, जीवन करें व्यतीत ।
गुरु निवारे दोष सब, भये ऐसी प्रतीत ।।2835क

भये ऐसी प्रतीत जब, गुरु चरणों के बीच ।
सभी पाप तब दूर हों, कथा सुगीता बीच[1] ।।2835ख

मोह का बल प्रभु दिखलाया, रूप क्रोध का है जतलाया ।
अहंकार का देख के रूप, सभी लागें प्रचण्ड स्वरूप ।
करें बात अब एक स्पष्ट, भ्रान्ति भये जिससे मम नष्ट ।
काम भी गणना में है आया, उसका रूप न आप दिखाया ।
एक बात पर सब जग जाने, भस्मीभूत काम पहचाने ।
मिली उसे थी सीख कठोर, तप के सन्मुख चले न ज़ोर ।
तपस्वी उसके वश न आवे, उससे काम दूर रह पावे ।
क्या यह नाथ बात है ठीक, आपसे मिले सत्य की लीक ।
काम अजेय कई जन मानें, भस्म भया है कुछ पहचानें ।
भस्मीभूत में शक्ति नाहीं, कुछ जन ऐसा भी कथ पाहीं ।

[1] देखें श्रीमद्भगवत् गीता - 18, 66

दो॰-काम भस्म था हो गया, शिव जी के प्रताप ।
क्यों फिर उस से भय भये, देवें निर्णय आप" ॥ 2836

सुन भक्त की यह जिज्ञास, कही सेवक तब मुख ला हास ।
"काम देव न प्राणी भाई, जिस का देह भस्म हो जाई ।
यह तो चित्त की वृत्ति होय, गुरु कृपा से क्षीण हो सोय ।
गुरु जब जन को योग कराय, वृत्तियों का निरोध हो पाय ।
बिना योग नहीं बनती बात, तप से सके न हो कुछ तात ।
पुनः कथूँ मैं वही इतिहास, विश्वामित्र ऋषी का खास ।
तप से सका न काम को जीत, जानो प्रबल काम को मीत ।
शिव ने जिस को योग से जीता, ऋषि था उसी योग से रीता ।

दो॰-बिना योग न जीत सकें, वेग काम का मीत ।
गुरु से सीखे योग जो, सकत वही यह जीत" ॥ 2837

सुन सेवक से ऐसी बात, उत्सुक होय उस पूछा "तात ।
वह प्रसंग हमें बतलायें, जान काम की शक्ती पायें" ।
कहा सेवक हे मीत सुजान, सुनो एकाग्र कर तुम ध्यान ।
इस प्रसंग से शिक्षा पायें, गुरु योगी पा योग कमायें ।
गुरु रक्षक जभी रहते संग, कर न सके वश दुष्ट अनंग ।
विश्वामित्र इक मन थी साध, ब्रह्म ऋषि बनूँ तप आराध ।
दीरघ काल उस तप कमाया, सकल विश्व ने जिसे सराहया ।

पुष्कर पर था करत तपस्या, खड़ी भयी तब एक समस्या ।
अप्सरा इक मेनका आई, स्नानार्थ वह वहां रुक पाई ।
उसके दिव्य रूप कों देख, विश्वामित्र मन कीन उल्लेख ।

दो०-विश्वामित्र देख कर, उस का दिव्य शरीर ।
"राखूँ इस को पास मैं, इसी सरोवर तीर" ।। 2838क

ऐसा चित्त विचार कर, कही प्रेम से बात ।
"शुभ आगम है आप का, रुकिये आज प्रात ।। 2838ख

आश्रम में तुम ठहर कर, लेश करो विश्राम" ।
कही तपी ने बात यह, जिसे सताया काम [1] ।। 2838ग

ऐसा जब उस ने कहा, मान गई वह बात ।
उधर वास उसने किया, दश वर्ष हे तात ।। 2838घ

जभी काल दश वर्ष विहाया, पश्चाताप तपी मन आया ।
"मोह काम का मुझ को लागा, दश संवत्सर दिन इक लागा ।
काम ने सारा काम बिगाड़ा, मेरे तप को काम उजाड़ा" ।

[1] कन्दर्पदर्प वशगो मुनिस्तामिदमब्रवीत् ।
अप्सराः स्वागतंतेऽस्तु वस चेह आश्रमम् ।।
(वाल्मीकि रामायण, बालकाण्ड 1.63.6)

अर्थ : उसे देख कर विश्वामित्र मुनि काम के अधीन हो गये और उस से इस प्रकार बोले – "अप्सरा ! तेरा स्वागत है, तू मेरे आश्रम में निवास कर" ।

'सेवक' ने यह कथा सुनाई, काम की प्रभुता साफ जताई ।
काम से बचे न कोई पुमान, वही बचे जिसे प्रभु दें त्राण ।
हे भक्तो निज बल को त्याग, प्रभु की चरणी जाओ लाग ।
अर्जुन का जिस मोह दुराया, काम से नारद मुनि बचाया ।
वही प्रभु अब ले अवतार, शरण पड़ों का करें उद्धार ।
जब तक शरण न प्रभु की ग्राहें, कामादि से बच न पायें ।

22. काम शत्रु की प्रबलता और नारद का उपाख्यान

दो०–शरण प्रभु की पाय कर, मिले काम से त्राण ।
जिमि बचाया काम से, नारद को भगवान ।। 283 क

इमि सेवक से श्रवण कर, बोला भक्त सुजान ।
"नाथ हमें न विदित है, लीला यह भगवान ।। 283 ख

उस लीला का करें बखान, नारद हित जो की भगवान ।
नारद को कब उपजा काम, किस विध उसे बचाया राम" ।
सुन यह भक्तन की जिज्ञास, कहा 'सेवक' पुराण इतिहास ।
नारद का उस भ्रम सुनाया, और वह जिस विध प्रभु दुराया ।
कहा 'सेवक' हे भक्त प्यारे, कामादी सभी शत्रु भारे ।
उन से केवल प्रभु बचावें, बिन किरपा जन भव बह जावें ।

सुनो नारद का अब इतिहास, जिस से मिले सीख यह खास ।
एक पुरातन नगरी जानो, शीलनिधि वहां राजा मानो ।

दो०-शीलनिधी के नगर में, नारद पहुँचा आय ।
स्वागत राजा ने किया, ले महल में जाय ।। 2840

उस राजा की इक सन्तान, विश्वविमोहिनी था अभिधान ।
युवा भयी जब सुन्दर जायी, मात पिता के मन तब आई ।
इस का स्वयंबर अब रचायें, देश विदेश से नृप बुलायें ।
जिस के गल में डाले माल, उस को वरण करे यह बाल ।
ऐसा निर्णय जब हो पाया, चारों दिक् संदेश भिजाया ।
विश्वमोहिनी को जग जाने, जग में सब से सुन्दर माने ।
वह संदेश सभी ने पाया, और यह सब के मन समाया ।
"विश्वविमोहिनी मुझे वरेगी, जय माल मेरे गल पड़ेगी" ।
नारद जब उस नगरी आया, समाचार जनता से पाया ।

दो०-समाचार को पाय कर, गया राज-प्रासाद ।
रानी संग नृप आ कर, गिरा मुनि के पाद ।। 2841 क

गिरा मुनि के पाद वह, दण्डवत हि साक्षात ।
पुत्री के उद्वाह की, सकल बताई बात ।। 2841 ख

पुत्री को राजा बुलवाया, चरणि मुनि के शीष झुकवाया ।

और कहा "हे अन्तर्यामी, भाग्य पुत्री का कहें स्वामी" ।
मुनि ने जब वह रूप निहारा, विसर गया निज तप बल सारा ।
रेख भाग्य की फिर उस देखी, विलक्षणता जो कुछ उस पेखी ।
गुप्त राखा वह सारा ज्ञान, कहा "इस का है भांग्य महान" ।
'सेवक' से सुन यह इतिहास, चित्त भक्त के भयी जिज्ञास ।
पूछा उस ने "हे मम स्वामी, बात क्या वह अन्तर्यामी ।
जो न नारद ने बतलाई, जो वा चित्त में ही रख पायी ।
उस का कारण भी बतलावें, किरपा हम पर यह कर पावें ।

दो०–कर किरपा यह नाथ जी, समझावें इतिहास ।
नारद ने किस भेद को, राखा था निज पास" ।। 2842

'सेवक' ने तब बात बताई, जो है ग्रन्थन में मिल पाई ।
नारद ने जब रेखा देखी, चमत्कारी हि किस्मत पेखी ।
"जिस के गल यह माला पाये, विश्व विजेता वह हो जाये ।
चर अचर सब करेंगे सेव, अजर अमर भी वह हो देव ।
क्यों न मैं इस को वर पाऊँ, और मैं विश्वपति हो जाऊँ" ।
यह बात उस चित्त में राखी, और, और ही मुख से भाखी ।
देव ऋषि फिर लीन विदाई, इच्छा उसके चित्त समाई ।
करूँ सभी मैं वही उपाय, यह कन्या मुझको वर पाय ।

समय नहीं जप तप कर पाऊँ, पास प्रभु के सीधा जाऊँ ।

दो०-प्रभु पास मैं जाय कर, मांगू रूप विशाल ।
दें हरि मुझे रूप यदि, हो सके इस काल ।। 2843क

प्रभु मेरे ही हैं हितु, और न दूसर कोय ।
उन से मांगूँ रूप मैं, सिद्ध काम जो होय ।। 2843ख

कीन स्तुति उस नाथ की, प्रकट भये भगवान ।
सारी कथा सुनाय कर, मांगा रूप महान ।। 2843ग

नारद ने कहा "हे भगवान, मुझे उपाय न दीखत आन ।
मेरा हित जिस विध हो पाय, करिए तुरन्त वही उपाय ।
रूप आप सा यदि पा जाऊँ, विश्वविमोहिनी तभी व्याहूँ" ।
नारद की सुन प्रभु तब बात, कहा "करूँ तव हित साक्षात ।
तेरा जैसे परम हित होय, दूँगा अभी तुझे वर सोय" ।
मूढ़ भया था नारद ऐसा, काम के वश भया था ऐसा ।
प्रभु का भाव नहीं पहचाना, जो था निज मन वह अनुमाना ।

दो०-प्रभु निज वर को देय कर, हो गये अन्तर्धान ।
नारद मन में फूलता, गया स्वयंवर स्थान ।। 2844

बहुत नृपों को उस ने देखा, सजे धजे उन सब को पेखा ।
संग सहित वे बैठे ऐसे, इन्द्र सभा में देव हि जैसे ।

रूप अपने का था अभिमान, किसे नहीं समझे निज समान।
उसे था पूर्ण यही विश्वास, "मैं अधिकारी वर हूँ खास।
मेरा रूप सबन से ऊपर, मम सम सुन्दर न को भू पर।
मैंने रूप हरि का पाया, सकता छू को मेरी छाया।
जब कन्या मम रूंप निहारे, जय माला मम गल में डारे"।
मन ही मन इमि करत संकल्प, आप अन्य नहीं सोचत अल्प।

दो०–इसी गर्व में वह घुला, उच्छलत बारं बार ।
"कन्या मुझ को देख कर, जय माला दे डार"। ।। 2845क

कन्या माला लेय कर, लगी लगाने फेर ।
देख मुनी के रूप को, लीनी दृष्टि फेर ।। 2845ख

उठा मुनि निज स्थान से, आगे बैठा जाय ।
कन्या जिमि फिर देख ले, वर माला पहनाय ।। 2845ग

कन्या ने जब फिर वह देखा, भई क्रोध की मुख पै रेखा।
किस ने है यह कपी पठाया, इस सभा को कलंक लगाया।
सभी राजों को वह निहारे, मुनी की ओर न दृष्टि डारे।
मुनि उच्छल उच्छल जब पाये, सब जनता उस पै मुस्काये।
काम का देखो क्या प्रभाव, भूल गया मुनि निज स्वभाव।
स्वयंवर से फिर खा कर हार, मुनि गया था गंग की धार।
जल में वह निज रूप को देख, वानर के स्वरूप को पेख।

क्रोध से जलने लागा गात, काम से क्रोध भये सांक्षात ।

दो॰–काम मूल है क्रोध का, जगती में प्रसिद्ध ।
पूर्ण यदि न काम होय, चित्त क्रोध से विद्ध ।। 2846क
उसी क्रोध आवेश में, गया विष्णु के पास ।
भर क्रोध में कह दिया, जो भया उपहास ।। 2846ख

नारद पर प्रभु कृपा कीनी, अपनी माया उन हर लीनी ।
शांत भया नारद का क्रोध, और हुआ तब उस को बोध ।
प्रभु की माया ने भरमाया, मुनि था निज स्वभाव भुलाया ।
कृपा करें जिस पर भगवान, काम क्रोध से पावे त्राण ।
प्रभु किरपा जब मोह दुराया, नारद विनय तभी कर पाया ।
"नाथ हमारा प्रश्न है एक, भक्त जनों की आप हैं टेक ।
मुझे विवाह की थी जब चाह, डाला क्यों तुम विघ्न अथाह ।
तुम तो भक्त वत्सल भगवान, भक्तों को मिले तुझ से त्राण ।
मेरा काम बिगाड़ा नाथ, आप ने दीना न मम साथ ।
आप के क्या लगा तब हाथ, जो नहीं कीना मुझे सनाथ ।

दो॰–मम बिगाड़ा कार्य तुम, किस कारण भगवान ।
इसी सोच से ही प्रभो, मैं रहूँ परेशान" ।। 2847

सुनी नारद की प्रभु जब बात, प्रभु बोले "हे सुनो मम तात ।

काम क्रोध लोभ अहंकार, जीव के प्रबल ये शत्रु चार ।
पांचवां भी लो मोह पहचान, जीव की करता बहु विध हान ।
इन से जीव नहीं बच पाये, जब तक शरण न मेरी आये ।
सभी शत्रु ये बहु बलकारी, इन के वश है जगती सारी ।
हे नारद ! तुम लो यह जान, इन से मिलता तब ही त्राण ।
जब जन मेरी शरणी आये, और जब रक्षा मुझ से पाये ।
इन से तुम भी ना बच पाये, किस गिनती में जनता आये ।

दो०–क्रोध काम मद आदि के, सृष्टि सभी अधीन ।
उन की रक्षां मैं करूँ, जो मम आश्रित दीन ।। 2848क

बालक पकड़े सांप यदि, उसे बचावे मात ।
विषयासक्त हो भक्त यदि, निवारूँ मैं साक्षात" ।। 2848ख

नारद ने सुन कीन प्रणाम, और कहा "हे सुख के धाम ।
दीन जनों पर आप दयाल, नाम तुम्हारा दीन दयाल ।
दीन होय जो शरणी आवे, त्राण आप से वह जन पावे ।
शत्रु सकें क्या कर भगवान, करें जब जन का आप त्राण ।
मेरे मन में दृढ़ विश्वास, रक्षक आप हैं जन के खास ।
आप बचाया मुझ को स्वामी, धन्य धन्य हो अन्तर्यामी ।
आप यदि नहीं मुझे बचाते, मुझ को शत्रु नरक ले जाते ।
आप से विनय यही भगवान, मुझे न व्यापे फिर अज्ञान ।

दो॰-ऐसी माया फिर प्रभु, व्यापे मुझे न नाथ ।
यही विनय भगवान मम, रहूँ चरणि तव साथ ॥ 2849क

पांच चोर जो नाथ जी, करते सभी प्रहार ।
इन पांचों में कौन है, इन का जो सरदार ॥ 2849ख

उसी एक को जान कर, रहूँ सदा होश्यार ।
सांध लगा कर फिर कभी, करें न मुझ पर वार" ॥ 2849ग

नारद को तब प्रभु बताया, अहंकार को मुख्य जताया ।
जन अहंकारी प्रभु को भूल, जीवन में संजोवे शूल ।
अहंकारी का मन वश न हो, बहिर्मुखी रहे सदा ही सो ।
अपने देह का राखे ध्यान, सके न कर वह प्रभु का ध्यान ।
कामवशी अहंकारी होय, क्रोध के वश भी होता सोय ।
लोभ का पड़ता उस पै पाश, जिस के मन अहंकार का पाश ।
मोह कूप में वही डुबाना, अहं का जिस घट हो ठिकाना ।
अहं के चारों ही अनुयायी, अहं बीज है सब का भाई ।

दो॰-क्रोध काम व लोभ मोह, उपजें तब ही मीत ।
अहंकार का बीज जब, पड़े जीव के चीत ॥ 2850क

नाश बीज का हो तभी, ईश कृपा जो होय ।
ईश कृपा वश जन लखे, निर्बीज समाधि सोय ॥ 2850ख

ईश कृपा उस पै भये, मन में जिस के राम ।
चित्त राम में रम रहे, देह धर्म के काम ॥ 2850ग

'सेवक' ने कहा भक्त सुजान, सभी जीवों में है भगवान ।
जो जन मन में प्रभु को ध्यावे, वह जन उस का प्रिय हो जावे ।
कृपा कर उस जन पर भगवान, कामादि से वे करते त्राण ।
विधि यह ऋषियन ने है गाई, सद्गुरु से हम ने सुन पाई ।
काम से न को जन बच पावे, वही बचे जिसे प्रभु बचावे ।
स्पष्ट बात अब हो क्या पाई, मन बुद्धि में ठीक है आई ।
कहा भक्त ने "दीन दयाल, आज भये हम सभी निहाल ।
दे दृष्टांत स्पष्ट जताया, शत्रु से सावधान कराया ।
मिला जो हम को है उपदेश, स्मरण रहेगा हमें हमेश ।
प्रभु चरणों को धारें चित्त, होय न भय फिर किसी निमित्त ।

दो०–सद्गुरु के उपदेश में, पायी बात नवीन ।
स्मरण करें प्रभु चरण हम, पाप तभी हों क्षीण ॥ 2851

23. लोभ को किस प्रकार वश में करें ?

जयराम का दृष्टांत

बात प्रभु इक और बतावें, लोभी मन किमि वश में लावें" ।
कहा 'सेवक' हे प्यारे मीत, प्रभु जी करते सब से प्रीत ।
राम लाल का दिव्य स्वरूप, राखो सदैव हृदय में गूप ।

इसी रूप को करके याद, सिद्ध हैं भये अनेकों साध ।
रूप इसी में परम आकर्ष, स्मरण मात्र से उमड़े हर्ष ।
निज अनुभव से मैं कथ पाऊँ, कठिन समय यदि प्रभु को ध्याऊँ ।
तत्क्षण सभी कष्ट हों दूर, रामलाल प्रभु दिव्य हज़ूर ।
रामलाल जिन को अपनावें, शत्रु कुछ भी नहीं कर पावें ।
'सेवक' के वे दोष दुरावें, लोभादि से उसे बचावें ।

दो०-विषयासक्त जब मन भये, लोभादि में चूर ।
प्रभु निवारें उसी क्षण, रहे पाप न मूल ।। 2852

कहा भक्त ने "हे मम नाथ, पूछूँ कुछ मैं इसी के साथ ।
आप कथी है लोभ की बात, रिपु जानूँ मैं यही साक्षात ।
क्षण क्षण मन को लोभ लुभावे, इस से पीछा न छुट पावे ।
लोभी मन किमि वश में लावें, बात प्रभु बस यही बतावें ।
मन श्वान की तरह लुभावे, भक्ष अभक्ष सभी खा जावे ।
आठों पहर हि लोभ में डूब, दुःखी करे मन जन को खूब ।
लोभ का क्षेत्र अतीव विशाल, भटक भटक मन होत बेहाल ।
भौतिक लोभ का है न अन्त, दैविक इसके रूप बे-अन्त ।
लोभी मन सदा यही मनावे, सभी जगत का वैभव पावे ।
धन दौलत और सुन्दर रूप, मिलें उसे ही सभी अनूप ।

दो०–धन संपद सब जगत की, सुन्दर अति ही रूप ।
सभी एकत्र होय कर, मुझ में हि रहें गूप ।। 2853क

जो मन ऐसा मानता, वश किमि हो पाये ।
लोभ व्यापे जगत को, भ्रांति से दुःख आये ।। 2853ख

आप वही उपचार बताएँ, लोभ की भ्रांति से बच पाएँ।
लोभ कभी नहीं होत समाप्त, धन कुबेर का भी कर प्राप्त।
लाभ से लोभ सदा बढ़ पाय, घृत से ज्वाला जिमि अधिकाय।
कर किरपा अब यह समझायें, मन को वश हम किस विध लायें"।
सुन कर उसकी वार्ता सारी, 'सेवक' ने निज गिरा उचारी।
ठीक बात है तुम कह पायी, लोभ की छाया सब जग छायी।
लोभ से बचना है दुश्वार, सो बचे जिसे गुरु पग प्यार।
हैं पास गुरु के युक्ति अनेक, इक से इक प्रबल प्रत्येक।

दो०–निज आश्रित जन जान कर, है लोभ में ग्रस्त ।
करें त्राण गुरु शिष्य का, से लोभ के हस्त ।। 2854क

कथा विदित है आप को, जय राम की मीत ।
मथुरा के मिष्ठान्न में, बहु थी जिस की प्रीत ।। 2854ख

कृपा नाथ जब किरपा कीनी, उस की लोलुपता हर लीनी।
ऐसी युक्ति नाथ दिखलायी, लालच से उस छुट्टी पाई।

लोभ रहा न उसके अन्दर, कृपा के प्रभु अगाध समुन्दर ।
कर श्रवण जय राम का नाम, कहा भक्त "हे सुख के धाम ।
प्रभु महिमा हम फिर सुन पायें, आप हमें वह बात बतायें ।
किरपा की यह प्यारी गाथ, श्रवण पुनः कर भयें सनाथ० ।
नाथ हमें यह पुनः सुनायें, जय राम का अघ किमि दुरायें ।
रहता जो था प्रभु के पास, क्यों भया फिर लोभ का दास ।

दो०-पास प्रभु के रहत जो, भया लोभ का दास ।
किस कारण ऐसा भया, क्या वह कारण खास ।। 2855

हे नाथ हमें यह बतलाएँ, भरम हमारा आप दुराएँ ।
प्रभु की किरपा जिस पर होय, परास्त न शत्रु से हो सोय ।
था जय राम प्रभु का प्यारा, लोभ भया क्यों उस मन भारा ।
कारण इस का हम सुन पाएँ, आगे की फिर बात बताएँ" ।
सुन कर भक्त की यह जिज्ञास, कहा 'सेवक' तव शुभ विश्वास ।
प्रभु की शरण रहत जो प्राणी, शत्रु कर नहीं सकते हानी ।
कामादि निज स्वभाव अधीन, डारें डोरे नित्य नवीन ।
चित्त में जिस के हों भगवान, उस पे चले न उन का वाण ।
कामादि प्रभाव हों हीन, भक्त रहे जब प्रभु पग लीन ।

दो०-चित्त जभी प्रभु चरण में, लीन रहे मम मीत ।
कामादि नहीं कर सकें, सेवक को भय भीत ।। 2856

यदि प्रमादि मन कहीं जाये, विषयों में वह वा रम पाये।
प्रभु को भूल रहे जग माहीं, उसे प्रभु पर त्यागें नाहीं।
ऐसी युक्ति प्रभु अपनावें, विषय विमुख उसे कर पावें।
प्रभु ने युक्ति वही अपनाई, लोलुपता जयराम दुराई।
कहा भक्त "हे नाथ प्यारे, भक्त प्रभु के सभी दुलारे।
जो कृपा जयराम पै कीनी, जिमि थी लोलुपता हर लीनी।
वह प्रसंग पुनः सुन पायें, प्रभु लीला सुन नहीं अघायें।
कैसे उपजा उस चित्त लोभ, क्यों भक्त मन भया यह क्षोभ।
यह लीला हम सब सुन पायें, कर कृपा अब नाथ बतायें।

दो०–कर किरपा अब नाथ जी, दें हमें कुछ ज्ञान।
जयराम के प्रसंग से, सीख मिले भगवान ॥ 2857

सुन कर भक्त की ऐसी बात, 'सेवक' कहा सुन लो तुम तात।
जिमि जयराम को व्यापा लोभ, जिमि उपजा मन में था क्षोभ।
प्रभु का सेवक वह था भारी, सेव बिताता वेला सारी।
आया मथुरा में प्रभु संग, होत वहां था बहु सत्संग।
दर्शन हित बहु जनता आती, प्रभु शिक्षा को थी सुन पाती।
करती साधन भी आ योग, सद्गुरु हरते उन के रोग।
सभी कहें "प्रभु सुख के धाम, दीन दुखी को देत आराम।
ये नर नहीं ये हैं भगवान, दर्शन करके हो कल्याण।

दो०-दर्शन इन के जो करे, उस का हो कल्याण ।
मथुरा का सौभाग्य है, आये फिर भगवान ।। 2858क
ऐसा ले विश्वास सब, जनता चलि चलि आय ।
भेंटें संग बहु लाती, देत प्रभु लौटाय ।। 2858ख

खाद्य पदार्थ भी बहु आते, मथुरा के जन पेड़े लाते ।
उन का मिलता सब को भोग, पसंद करें वह सब ही लोग ।
बांटे नित जयराम ही भोग, जो बचे सभी खाता भोग ।
उस को पेड़े लगते स्वाद, दिन भर लेता उन का स्वाद ।
ध्यान भजन की सुधी भुलाई, पेड़ों में ही वृत्ति लगाई ।
जनता से वह कह मंगाता, पेड़ों बिना वह रह न पाता ।
प्रभु ने जानी उस की कार, और फिर मन में कीन विचार ।
"भक्ति भाव जन का बह जाये, रस विषयों का जभी लुभाये ।
लोलुपता के वश में आय, पथ से भटक जयराम न जाय" ।

दो०-ऐसा मन अनुमान कर, प्रभु बुलाया पास ।
देन लगे जयराम को, मुख से शिक्षा खास ।। 2859

कहें नाथ, "जयराम प्यारे, योग के मार्ग कंटक भारे ।
उन से रहे न जो सावधान, सिद्धि पाये न वह इंन्सान ।
मन ही जन से वैर कमावे, कुपथ पै जन को वह चलावे ।
इन्द्रियों का वह बन गुलाम, सेव करे उन की सुबह शाम ।

प्रभु सिमरन का मिले न अवसर, तन की सेवा में रह तत्पर ।
काम क्रोध मोह अहंकार, और लोभ का बहु प्रसार ।
जिस के चित्त में यही प्रधान, प्रभु के लिए न वहां इस्थान ।
प्रभु का ध्यान तभी कर पावें, लोभ आदि यदि चित्त न आवें ।

दो०–लोभ आदि यदि चित्त में, रहें निरन्तर मित्त ।
प्रभु वास तब कहां करें, यह बात रहे चित्त ।। 2860

देह इक घाट है ऋषि पुकारें, अमृत भाव इस में संभारें ।
विष–विषयों से इसे बचावें, इस विध सभी अमरत्व पावें ।
विषयों का विष जिस घट मांहिं, उस का संग करो तुम नाहिं ।
जैसे रहें विषधर से दूर, तैसे रहें विषघाट से दूर[1] ।
विषयों का जिस घाट में वास, उस जन पर नहीं हो विश्वास ।
प्रभु के रूप से कर के पूर, विषय विकार को कर के दूर ।
देह बने देवालय मीत, सत्य की होती तभी प्रतीत ।
देह में सत का होवे वास, विषय विकार न आवे पास ।

दो०–इस घट में तो एक का, होय प्रभुत्व मीत ।
दो खड्ग इक म्यान में, रहें न हो प्रतीत ।। 2861

[1] भावार्थ – जैसे हम साँप से बच कर दूर रहते हैं वैसे ही हम उस मनुष्य से बच कर दूर रहें जिसके शरीर में विषयों का विष भरा है ।

विषयों का विष है दुखकारी, प्रभु का ध्यान परम सुखकारी ।
जय राम तुम लोभ को त्याग, रहो ध्यान में प्रभु के लाग ।
जिस के मन में लोभ समाया, उसी जीव ने दुख बहु पाया ।
लोभ का फंदा गल में डाल, खुद को नाश के गर्त न घाल ।
मीन चारे के लोभ लुभाय, लोह के कांटे में फंस जाय ।
वह तो मूर्ख मीन बेचारी, निगलत लोह भूख की मारी ।
मानव को प्रभु दीना ज्ञान, जान सके निज लाभ व हान ।
ऐसा कर्म वही कर पाये, जीवन का जो लक्ष्य भुलाये ।

दो०–जीवन के शुभ लक्ष्य को, न विसरे देह पाय ।
काम मोह मद लोभ से, बचे तो मुक्ति पाय ।। 2862

अब से लोभ को देवो त्याग, रसना के रस संग न लाग ।
वस्तु जो लागे बहु स्वाद, जन को करती वही बरबाद ।
संयम का मग धर्म सिखावे, संयम छोड़ अधर्म कमावे ।
मिठाई का रस देवो त्याग, योग भक्ति में रहो तुम लाग ।
मम संगत में तब रह पाओ, संयम का मग जब अपनाओ" ।
जय राम को प्रभु समझाया, संयम के मग उसे लगाया ।
जय राम ने सुना उपदेश, निज स्वभाव को कोसा लेश ।
प्रभु चरणों में कर प्रणाम, लागा सेवा में जय राम ।
सेवा में वह समय लगाता, सत्संग में भी रुचि दिखाता ।

दो०-प्रभु सेवा में रहत वह, करता सब की सेव ।
आदर उस का जन करें, सिमरे वह गुरुदेव ॥ 2863क

प्रभु सिमरन वह करत था, वचन प्रभु मन धार ।
लोभादि की प्रबलता, पर न उस का पार ॥ 2863ख

कामादी मद लोभ सब, प्रबल ये शत्रु जान ।
जन के मन में वास कर, करते उस की हान ॥ 2863ग

यह इक अचरज की है बात, वास देवें जिन को निज गात ।
वे उठ करते हम से वैर, खूब पसार के अपने पैर ।
उन की रुचि को हम पहचान, जुटाते हैं सब खान व पान ।
नाच नचावें फिर भी नीच, खूब फंसे हम उन के बीच ।
जिन को मानें अपने भाई, वे ही शत्रु महा दुख दाई ।
था जय राम लोभ को टाले, अपने मन को वह संभाले ।
पर जब पेड़े सन्मुख आवें, मन को जय जी रोक न पावें ।
पेड़े को धर मुख में लेत, लोभ के वश हो ध्यान न देत ।

दो०-लोभी चित्त न मानता, सोच न आये काम ।
रिपु प्रबल ये जानिए, लोभ क्रोध व काम ॥ 2864

लोभ आदि सब रिपु समुदाय, जीव के वश में न यह आय ।
गुरु योगी ही युक्ति निकालें, जन शरणागत को संभालें ।
लोभादि इक प्रबल तोफान, चूर्ण किये जिस पुरुष महान ।

प्राकृत जन वहां टिक न पावे, वही टिके जिसे गुरु टिकावे ।
गुरु न गहे यदि जन का हाथ, तृण सम ही जन उड़ जाये साथ ।
'सेवक' यदि गुरु शरण न आता, वह बन तिनका ही उड़ जाता ।
उसका मिलत न ठौर ठिकान, समझे गुरु की दया महान ।
सद्गुरु लेते जिसे सम्भार, करें नहीं शत्रु उस पै वार ।

दो०-शत्रु का नहीं वश चले, गुरु-सेवक पर जान ।
शरण गुरु की ग्रहण कर, सदा बचे इन्सान ।। 2865क

क्रोध काम मद लोभ सब, करते सदा प्रहार ।
प्रतिक्षण रक्षा गुरु करें, 'सेवक' करे विचार ।। 2865ख

'सेवक' को गुरु मिल गये, मिटा सकल सन्ताप ।
शत्रु का भय नहीं रहा, प्रभु रक्षक हैं आप ।। 2865ग

24. नीति विषयक उपदेश – साम और दान नीति

जब प्रभु जयराम को देखा, खास न उसमें अन्तर पेखा ।
अन्य नीति तब उन अपनाई, जो प्रभावी थी हो पायी ।
साम का हुआ था न प्रभाव, प्रभु जी के मन उपजा भाव ।
दान का अब करके प्रयोग, उसका असर देखें हम लोग ।
सुनकर 'सेवक' की यह वाणी, कहा भक्त "हे जन कल्याणी ।
नीति की तो बात बतलायी, वह न स्पष्ट हमें हो पायी ।

साम का अर्थ बतावें नाथ, दान का भी इसी के साथ।
सामयिक नीति कर प्रयोग, सिद्धि लाभ करते हैं लोग।
प्रभु जी तो साक्षात भगवान, नीति को दीना उन भी मान।

दो०–नीति का कुछ आप से, पाकर देव ज्ञान।
कर्म कुशलता हम गहें, हे गुरुवर धीमान" ।। 2866क

'सेवक' बोला मित्रवर, ठीक कथी तुम बात।
त्याग करे न नीति का, ईश्वर भी साक्षात ।। 2866ख

प्रभु जी जो उपदेश दे, समझाया जय राम।
शान्तमयी जो वारता, वही नीति है साम ।। 2866ग

शान्ति से जो हो समाधान, कठिन समस्याओं का निदान।
उससे लाभ बड़ा है भाई, वह है साम नीति कहलाई।
साम नीति से सुलझें काम, साम नीति है सुख का धाम।
साम नीति से नहीं दुख होय, साम नीति शंसे हर कोय।
साम नीति से कलह न होय, हिंसा को यह दूर विगोय।
साम नीति यदि जग़ अपनाये, संहार जगत में न हो पाये।
साम नीति इक धर्म असूल, त्यागे इसे न जन कर भूल।
मानव यदि इसको अपनाये, जग में स्वर्ग उतर ही आये।

दो०–जो हम चाहें शान्ति को, आदर करे समाज।
साम नीति अपनाय कर, सभी करें हम काज ।। 2867

'सेवक' से सुन ऐसी बात, भक्त ने पूछा तब "हे तात ।
साम नीति यदि उत्तम होय, प्रभु ने त्याग दीनि क्यों सोय ।
दान नीति का लीन सहारा, अब प्रश्न है यही हमारा" ।
कहा 'सेवक' हे सुन मम मीत, समझ पायें प्रभु जन का चीत ।
चित्त अनुरूप करें व्यवहार, नीति कुशलता का यह सार ।
जयराम का चित्त पहचान, दान को दिया प्रभु अधिमान ।
दान साम का दूजा रूप, लोभी पुरुष के जो अनुरूप ।
केवल साम को जो न मानें, दान देय कर हम सन्मानें ।
ले कर दान वे मानें बात, त्यागें हठ वे निज साक्षात ।
एक जान लो पर तुम बात, नीति कुशल चाहिए जन तात ।
नीति कुशल यदि जन नहीं होय, फल मिले नहीं चित्त में जोय ।
अन्य पक्ष नहीं इस को माने, दुर्बलता ही वह पहचाने ।
दान से भी बढ़ जावे लोभ, और बढ़ावे चित्त में क्षोभ ।

दो०–नीति कुशलता बिन करे, सामादि प्रयोग ।
विफल होय वह नीति तब, और विहंसें लोग ॥ 2868क

प्रभु नीति की कुशलता, दिखलाई उस काल ।
चलें नीति की चाल वे, आ पड़े जब काल ॥ 2868ख

नीति से ही सफलता, पायें विज्ञ जो लोग ।
चलें ना मूर्ख नीति पर, हाथ लगे उन सोग ॥ 2868ग

मन जयराम का प्रभु ने देखा, पेड़ों का उन लालच पेखा।
प्रभु ने पेड़े बहु मंगवाय, जयराम को वे सभी खिलाय।
अति सर्वत्र होय दुखदाई, मन जयराम घृणा उपजाई।
पेड़ों को ना देखन चाहे, अब ना उन को हाथ लगाये।
उस के चित्त का बदला हाल, प्रभु की नीति कीन कमाल।
यथोचित काल करें प्रभु कार, सीख मिले हमें इस प्रकार।
प्रभु का जीवन धर्म का ग्रन्थ, प्रभु बतलाया धर्म का पंथ।
प्रभु मर्याद सर्वोत्ताम मीत, सीखें उन से जीवन नीत।

दो०-प्रभु का जीवन निरख हम, सीखें जीवन नीत।
प्रभु पाली मर्याद जो, कर्म करें उस रीत॥ 2869

जयराम का लोभ निवारा, पेड़ों के उन दान द्वारा।
वन में हाथियों का प्रहार, टाला अग्न में ईंधन डाल।
भेद नीति का कर प्रयोग, परास्त किये उन नागे लोग।
शत्रु पक्ष था मीत बनाया, भेद नीति का बल दिखलाया।
परस्पर थे उन शत्रु लड़ाये, प्रभु की नीति समझ को पाये।
पुष्करराज उद्दण्डी आया, दण्ड देय कर उसे भगाया।
दण्ड नीति की महिम दिखायी, वश हों दण्ड से शत्रु भाई।
समय अनुसार करें सब काम, राम प्रभु व दाशरथी राम।
दोनों ही मर्याद दिखाई, सामयिक नीति हो सुखदाई।

25. भेदनीति और दण्डनीति विषयक उपदेश

दो०-जिस समय जिस नीति का, हो अवसर मम मीत ।
उस पर ही जब जन चले, सुखी भये सब रीत ॥ 2870क

सुखी भये सब रीत वह, समझ करे जो काम ।
लगे सफलता हाथ उस, बिन खरचे बहु दाम ॥ 2870ख

नीति का उपदेश सुन, बोला भक्त सुजान ।
"साम दान की नीति को, समझ लिया भगवान ॥ 2870ग

दो नीति अभी और बताई, भेद दण्ड जो हैं कथ पाई ।
उनका करके कब प्रयोग, सफल होते हैं पण्डित लोग ।
उत्सुकता है मन उपजाई, श्रवण करें हम चित्त टिकाई ।
हमें भेद का अर्थ बतायें, दण्ड का भी प्रयोग सुनायें ।
सुन कर हम कुछ पावें ज्ञान, सफल काम हम हों भगवान ।
नीति कुशल जो होय पुमान, पाये सफलता वही सुजान ।
सिद्धि देत नहीं शक्ति महान, यदि नीति का नहीं होय ज्ञान ।
भेद नीति क्या होत स्वामी, दण्डनीति क्या अन्तर्यामी ।
इन दोनों को खोल बतायें, कब इन को प्रयोग में लायें ।

दो०-नीति का प्रयोग जो, सुगम नहीं है नाथ ।
गुरु किरपा से ही प्रभो, लागे सिद्धि हाथ" ॥ 2871

कहा सेवक हे मीत प्यारे, मैं कथूँ अब रहस्य न्यारे।
नीति सफल तभी कहलाये, दुर्बल जब लेय सबल दबाये।
यह इक गुप्त शस्त्र है भाई, प्रकट हो तो उलट दुखदाई।
जो ना बात गुप्त रख पाये, वह ना नीति कुशल कहलाये।
यदि शत्रु ले रहस्य को जान, होय हानि तब समझ महान।
प्रबल शत्रु यदि सन्मुख होय, सर्वनाश ही करता सोय।
इस कारण प्रथम लो जान, रहस्य पड़े न दूजे कान।
विश्वासपात्र न किसे बनाय, मन की बात न किसे बताय।
दिवारों को भी लागे कान, नीति कुशल यह राखे ध्यान।

दो०–चित्त जिस का न रख सके, अपना भेद संभाल।
खाण्डे की इस धार से, दूर रहे वह बाल ॥ 2872क

शस्त्र नीति का पास जिस, एक करे शत नाश।
हो निःसहायक भी यदि, लाखों बांधे पाश ॥ 2872ख

अब मैं तुम को यह बतलाऊँ, भेद की नीति कथ दिखलाऊँ।
साम दान का जो संबन्ध, भेद दण्ड का वही सम्बन्ध।
शत्रु पक्ष यदि हो बलवान, टक्कर ले नहीं नीतिवान।
भेद नीति का करे प्रयोग, जिमि शत्रु रहे न भिड़ने योग।
किसी अन्य से उसे भिड़ाये, अथवा भीतर फूट डलाए।
भीतर की जो फूट है भाई, उस से लंका भी ढह पायी।

विश्व विजयी रावण सैन, कहां साधारण वानर सैन ।
राम मर्यादा पालक भाई, युद्ध की उस मर्याद दिखाई ।
विभीषण को उस लीना फोड़, लंकेश की शक्ति दीनि तोड़ ।
भेद नीति का यह दृष्टांत, दूर करत है सकल भ्रांत ।

दो०-राम रावण के युद्ध की, उपमा मिले न कोय ।
नीति कुशलता राम की, भी उपमा न होय [1] ।। 2873क

प्रभु जी की भी नीति को, समझो मेरे मीत ।
सर पर जब तलवार थी, यही चली उन नीत ।। 2873ख

कुछ घंटों के बीच ही, होना था संहार ।
भेद नीति की शक्ति से, उलट कीन प्रहार ।। 2873ग

बलि हेतु जो लाए थे, वही भए बलिदान ।
एक दूज को काट वे, लें परस्पर प्राण ।। 2873घ

सुन भक्त इस बात को, कह उठा "महाराज ।
नीति कुशलता नाथ की, सुन पायी है आज ।। 2873ङ

हमारे मन में है जिज्ञास, फिर सुन पायें वह इतिहास ।
जिमि प्रभु निज प्राण बचाये, और परस्पर शत्रु लड़ाये ।
भेद नीति का वह दृष्टांत, शत्रु भये जिस से सब भ्रांत ।

---

[1] देखें संस्कृत कवि की उक्ति :– रामरावणयोर्युद्धं, रामरावणयोरिव ।।

उस की मिले न उपमा नाथ, श्रवण करें और भयें सनाथ" ।
उस की सुन कर इच्छा भारी, 'सेवक' ने सब कथा उचारी ।
कहा 'सेवक' हे मीत प्यारे, प्रभु के कौतुक बहुत न्यारे ।
निज इच्छा से खेल रचावें, शिक्षा जग को जिमि दे पावें ।
प्रभु जीवन इक खुली किताब, सीखे सबक जिस का शुभ भाव ।

दो०-प्रभु का जीवन वेद सम, जो ज्ञान भण्डार ।
मनन करें जो प्रेम से, खुलते प्रज्ञा द्वार ।। 2874क

बुद्धि के पट जब खुलें, मिलत प्रभु का सार ।
परब्रह्म भगवान जिमि, लीना जग अवतार ।। 2874ख

अब तुम सुन लो वह प्रसंग, शत्रु की जिमि चाल भई भंग ।
प्रभु ने ऐसी नीति दिखाई, उपमा मिले न जिस की भाई ।
असम देश का वन घनघोर, प्रभु थे जा रहे गुरु की ओर ।
नाग जनन आ पाया घेरा, ले गये जहां उन का डेरा ।
नर की बलि को बहु वे मानें, इसी हेतु ले प्रभु को आनें ।
देवता को नर मुण्ड चढ़ावें, धड़ को बांट सभी खा जावें ।
ऐसे घोर थे उन के कर्म, मानते जिस को अपना धर्म ।
प्रभु ने शत्रु नीत पहचानी, सन्मुख मौत खड़ी अनुमानी ।
नीति कुशलता बिना न चारा, ऐसा प्रभु ने तुरन्त विचारा ।

दो०-प्रभु ने मनहिं विचार कर, चक्र चलाया एक ।
उसी चक्र में पिस गया, नाग दुष्ट हर एक ।। 2875

भक्त सुनी जब ऐसी वाणी, प्रश्न किया उस "हे कल्याणी ।
कौन चक्र वह प्रभु चलाया, और किमि निज प्राण बचाया ।
आपके मुख से सुन यह गाथ, चित्त रमा है प्रभु पग नाथ ।
प्रभु लीना जग में अवतार, सकल अलौकिक उन के कार ।
जिन को कर श्रवण नर नार, अन्तःकरण में हो उज्यार ।
बुद्धि के सभी दूर हों दोष, नष्ट संदेहों का हो कोष ।
हे नाथ आप करें बखान, चक्र चलाया जो उस स्थान ।
घोर विपत्ति सामने आई, किमि थी प्रभु निज जान बचाई ।

दो०-देव ! वह चक्र कौन था, प्रभु चलाया जौन ।
जिस की शक्ति सामने, थे शत्रु भये मौन" ।। 2876

'सेवक' कहा तब हे मम मीत, प्रभु जानें सब जग की नीत ।
दुष्टों का किमि हो संहार, जिन का पापमयी आचार ।
यथा समय की नीति अपनाय, करें विपक्ष को वे निःसहाय ।
सन्मुख जब प्रभु शत्रु पेखा, बचने का कुछ राह न देखा ।
भेद नीति का कर प्रयोग, लड़ाये परस्पर शत्रु लोग ।
वह बात अब तुम्हें बताऊँ, बात अनोखी यहां सुनाऊँ ।
निज नीति को प्रभु चित्त धार, देखी एक कराहती नार ।
जिस के स्तन में पीड़ा भारी, वह दुखी थी बहुत बेचारी ।

दो०-उस को दुखिया देख कर, प्रभु को मिला उपाय ।
औषध दीनी नार को, स्वस्थ जिमि हो पाय ।। 2877

औषध निज प्रभाव दिखाया, दुखी नार ने सुख को पाया।
उस ने जाना प्रभु उपकार, प्रभु का पक्ष लिया उस नार।
निज कुटुम्ब को भी कह पायी, सभी बनें जिमि प्रभु सहायी।
प्रभु की नीति ने रंग लाया, शत्रु परस्पर में भिड़ पाया।
शत्रु बंटा दो दल के बीच, लड़ें परस्पर हिंसक नीच।
प्रभु ने रिपु दल मार मुकाया, नीति का कौशल्य दिखाया।
बुद्धिमान नीति अपनाये, गर्व न बल पर वह कर पाये।
बुद्धिमान ही होय बलवान, निर्बल बुद्धि-शून्य पुमान।

दो०-रणनीति की कुशलता, प्रभु दिखाई आन।
शत्रु कीन परास्त उन, जिमि कृष्ण भगवान ।। 2878क

नीतिकुशलता कृष्ण की, और राम की देख।
प्रभुजी की भी नीति का, 'सेवक' कीन उलेख ।। 2878ख

मित्रो ! इससे लें उपदेश, जाल शत्रु के फंसे न लेश।
भेदनीति जब वे अपनायें, सतर्कता को हम अपनायें।
शत्रु को ना हितैषी मानें, मीत को मित्रवत सन्मानें।
भाई को शत्रु न हम जानें, शत्रु सर्प समान पहचानें।
यह उपदेश जभी विसराया, भारत रिपु के वश हो पाया।
विदेशी शत्रु कभी बुलाये, अपने भाई हम मरवाये।
शत्रु का हम दीना साथ, और बिके उन्हीं के हाथ।
जिस हमारे मीत संहारे, गुलाम बने उसी के द्वारे।

गर्व ने हमको था संहारा, नीति का नहीं लिया सहारा ।
शत्रु ने वह नीति अपनाई, जो थी हमने दीनि भुलाई ।
देश ने मूर्खता अपनाई, रिपु ने चातुरता दिखलाई ।
सद्बुद्धि जिसमें उसकी जय, विधाता का यह अटल है नय ।

दो०–मूर्ख बने इस देश के, कर्णधार जब मीत ।
रिपु छाये तब देश पै, लीन देश को जीत ।। 2879क

इस देश को जीत कर, भेद बढ़ाया और ।
परस्पर हमें लड़ाय कर, राज किया सब ठौर ।। 2879ख

राज किया सब ठौर उन, करके सबन गुलाम ।
हमें धरातल फैंक कर, लूटा हमरा दाम ।। 2879ग

शत्रु का ना दोष मैं मानूँ, निज अपराध इसे पहचानूँ ।
देत जो नीति को ठुकराय, वह सदा ही मुँह की खाय ।
हमने नीति को नहीं माना, शत्रु की ना चाल को जाना ।
भेद की नीति उस अपनाई, एक एक की कीन पिटाई ।
जो दुख देखे भारत देश, उसे लिखे न लेखनी लेश ।
लिखने का मैं करूँ जो साहस, लेखनी का हो मुंह उदास ।
उसकी सूख जाय सब स्याही, सोच शत्रु जो कीन तबाही ।
कितना भी को साहस जुटाय, भारत का नहीं दुख लिख पाय ।
जो अपमान भारत ने झेला, शत्रु जो आ खेल यहां खेला ।

ब्राह्मण का जो हुआ हवाल, क्षत्री की जिमि उतरी खाल ।
वैश्यों की जो भय़ी तबाही, जिमि काटी गौमात कसाई ।
जिमि विद्यालय भए तबाह, देवालय खण्डित भये अथाह ।

दो०–जिमि यह सब कुछ है भया, क्या को करे बखान ।
निज मूर्खता के कारण, ही अपमानित जान ।। 2880

जिस अपने को हम ठुकराया, उसे शत्रु ने गले लगाया ।
था इमि इतिहास दोहराया, दृश्य विभीषण सन्मुख आया ।
तब थी लंका भयी परास्त, भारत भानु भया अब आस्त ।
सुन कर 'सेवक' से यह बात, बीच में बोला जन "हे तात ।
क्या कथ आप यहां है पाया, कौन सा इतिहास दोहराया ।
विभीषण का क्यों लीना नाम, बखान करें हे सुख के धाम ।
हमारी उत्सुकता बढ़ पायी, आप बात कुछ नई चलाई ।
घर का भेदी लंका ढावे, यह तो बात सुनन में आवे ।

दो०–बात कथन में आये यह, रावण के अभिमाऩ ।
ने न मानी बात थी, भ्रात कही हित जान" ।। 2881

कहा 'सेवक' तुम सत बखानी, रावण तो था अति अभिमानी ।
इस से उस की भई तबाही, शत्रु ओर धकेल के भाई ।
भारत का भी वही इतिहास, ब्राह्मण समझे निज को खास ।

कहे वह अपने को भूदेव [1], अन्य करें सब उस की सेव ।
कुछ जनों को वह कहे अछूत, जिन की तो परछाईं भी भूत ।
क्षत्री का भी वही व्यवहार, वैश्य का भी वही आचार [2] ।
नर देह जो मोक्ष प्रदायी, उसे कहें अछूत यह भाई ।
कह अछूत उस को ठुकराया, शत्रु ने उसे गले लगाया ।
दुश्मन पक्ष बढ़ा इस रीत, स्वयं भये हम निज विपरीत ।
शत्रु ने आय गला दबाया, हम को अपना दास बनाया ।

दो०–अहंकार में आय कर, ठुकराये निज भ्रात ।
वह बात यहां पर भई, जो थी लंका तात ।। 2882क

इस दशा को सोच कर, खेद हमें बहु मीत ।
हम ने अपने कर्म से, किया भाग्य विपरीत ।। 2882ख

सुन 'सेवक' से स्पष्ट यह बात, कहा भक्त ने "हे जगत्रात ।
आज बात जो हम सुन पाई, कभी किसी के ध्यान न आई ।
हमरा वैभव हो गया चूर, ठुकरा दिये जब निज जन दूर ।
रावण ने तो इक ठुकराया, जिसे राम ने गले लगाया ।
हम ने लाखों को ठुकराया, जिन्हें रिपु ने गले लगाया ।
दुर्गत से वह बच न पाये, अपने जन को जो ठुकराये ।

---

[1] भूदेव :– पृथ्वी का देवता ।
[2] ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य अपने को 'स्वर्ण हिन्दू' कहकर अन्य जनों को 'अछूत' कह ठुकराते रहे ।

भेदनीति का यह प्रमाण, आप ने दे कीना कल्याण ।
अगर रहे यह हम को याद, विपद ग्रसे न इस के बाद ।

दो०–विपद ग्रसे न देश को, रहें यदि हम एक ।
संघ में शक्ति है बड़ी, फूट में दोष अनेक" ।। 2883

कहा 'सेवक' तुम सत बखाना, भेद भाव को दूर भगाना ।
इसी दिशा में कर प्रयास, बढ़े परस्पर में विश्वास ।
शत्रु की हम चाल पहचानें, धूर्तता सभी उस की जानें ।
उस पै करें न हम विश्वास, तुला जो करने हमरा नास ।
हम खुद नीति वही अपनायें, उस को दुर्बल जिमि कर पायें ।
दण्ड नीति फिर करें प्रयोग, राखों न उसे उठने योग ।
शत्रु जब दुर्बल हो पायें, दुर्बल समझ न छोड़ दिखायें ।
उस को दुर्बल करके मीत, नष्ट करें यह उत्तम नीत ।
शत्रु दुर्बल कभी न जानो, उस को सदा प्रबल ही मानो ।
कठोर करो उस पर प्रहार, नाश समूल करो तुम डार ।

दो०–नीति का प्रयोग कर, करो शत्रु का नाश ।
दुर्बल उस को जान कर, कभी न कर विश्वास ।। 2884

करे नहीं शत्रु पर विश्वास, समूल करे जन उस का नाश ।
दया न उस पर लेश दिखाये, अगर भला जन अपना चाहे ।

दण्ड नीति का यही असूल, हो विजयी नहीं जायें भूल ।
बोला जन चौंक "महादानी, तुम ने नीति ठीक पहचानी ।
दण्ड नीति को नहीं पहचान, देश की कीनि बहुत हम हान ।
बहुत बार हम रिपु थे जीते, मुक्त दया में आ फिर कीते ।
तभी हमें उन आन दबाया, हमें परतन्त्र भी कर पाया ।
कैसी भाई थी हमरी बुद्ध, दया में आ कर रही न सुद्ध ।
इस. देश का इतिहास महान, भरा अनीतियों से ही जान ।
नीति को यदि यह अपनाये, अनीति के पथ चल न पाये ।

दो०-अनीति का पथ छोड़ कर, चले नीति पर जब ।
देश स्वतन्त्र तब रहे, सुखी भयें हम सब ।। 2885क

रोग रिपु और साँप का, तथा आग का मीत ।
समूल नाश यदि न करें, मरें अन्त यह रीत ।। 2885ख

दण्ड नीति को प्रभु थे जानें, वन में हाथी मार भगाने ।
बचपन में जब थे घिर पाए, दण्डी जनों ने प्रभु डराये ।
प्रभु ने दण्ड नीति अपनाई, सभी जनों की कीन पिटाई ।
दण्ड बिना क्या जीवन भाई, वैदिक नीति यही चली आई ।
लें अवतार प्रभु जब आप, करें समूल नाश वे पाप ।
सभी श्रवण कर हे महाराज, ज्ञान नीति का पाया आज ।
चार नीति के जो हैं भेद, जिन्हें सभी बखानें वेद ।

साम दान व भेद की नीति, और अन्त जो दण्ड की नीति।
आप बखानीं बहुत स्पष्ट, विघ्न सभी हों इन से नष्ट।

26. कूटनीति विषयक उपदेश

दो॰–नीति का उपदेश सुन, हमें हुआ प्रतीत ।
देश परतन्त्र किमि भया, हम न सके क्यों जीत ॥ 2886क

एक बात पर और भी, समझावें इस साथ ।
आतताई यदि हो खड़ा, सर पर हमरे नाथ ॥ 2886ख

जिस से बचना कठिन हो, नीति न देवे साथ ।
उस समय हम क्या करें, लगे विजय जो हाथ" ॥ 2886ग

सुन कर भक्त की यह जिज्ञास, वर्णित कीन इक नीति खास।
कहा 'सेवक' ने लो तुम जान, अब जो नीति मैं करूँ बखान।
परम गुप्त रहस्य वह जानो, कूट नाम उस का पहचानो।
कौटिल्य ऋषि इक हुए महान, इस नीति का उन्हें था ज्ञान।
शास्त्र रचा उन एक विशेष, जिसमें कथी यह नीति निशेष।
इस का बहुत कठिन प्रयोग, इस पर सकें न चल सब लोग।
आपत काल का जानो धर्म, कूट नीति का सारा कर्म।
आपत काल में विधि निषेध [1], विचार करे जो पाता खेद।
आपत काल की नीति जोय, कूट नीति कहलावे सोय।

[1] विधि निषेध : शास्त्र निर्दिष्ट कर्म और अकर्म

यह नीति मैं कथ नहीं पाऊँ, दे दृष्टांत इसे समझाऊँ ।

दो०–जिस रीति से वैरी को, दे धोखा नीतिज्ञ ।
नष्ट उसे वह कर सके, कूट नीति वह विज्ञ ।। 2887

पंचतन्त्र में कथा है आई, शश ने निज जिमि जान बचाई ।
धोखा दे सिंह को मरवाया, इसी नीति का गुण समझाया ।
सुन कर 'सेवक' से यह बात, कहा भक्त ने "पूज्य हे तात ।
वही कथा हमको बतलावें, श्रीमुख से हम सब सुन पावें ।
नीति का दृष्टान्त विशेष, सुनकर पावें ज्ञान निशेष" ।
कहा 'सेवक' हे मीत सुजान, नीति का तुम चाहते ज्ञान ।
लो कथा मैं तुम्हें सुनाऊँ, शश की मैं चतुराई जताऊँ ।
एक देश में वन घनघोर, वन–जीवों का वहां बहु शोर ।
वहां पर चीते सूअर शेर, बाघ व भैंसे फिरें घनेर ।
हस्तिन के भी झुण्ड घनेरे, विचरें वन में सांझ सवेरे ।

दो०–हरिण और खरगोश की, उस वन में बहुतात ।
सुन्दर वन प्रदेश वह, हरा भरा हे तात ।। 2888क

उस वन में इक शेर था, अभिमानी नादान ।
बहु जीवों को मारता, करता नाश महान ।। 2888ख

नित यह उसका काम था, जीव सभी परशान ।
व्यर्थ में ही करत वह, वन–जीवों का हान ।। 2888ग

नित्य मारत वह पशु अनेक, उससे दुःखी जीव प्रत्येक ।
उससे सभी जीव भय भीत, रहत आशंका सबके चीत ।
नष्ट भये जब जीव अनेक, मिल सोचें तब दिन वे एक ।
क्यों न सिंह को जा समझावें, भोजन उसे स्वयं पहुंचावें ।
रीछ को तब उन लीना साथ, और चले ले प्राण निज हाथ ।
जब वे शेर की ग़ार पै आये, सभी जीव इक बार थर्राये ।
कीना रीछ ने जा प्रणाम, और कहा "हे शाह ललाम ।
सभी जीव ये मिल के आये, अपनी अर्ज़ी इक हैं लाये ।

दो०-महासिंह सरदार जी, सुनिये इनकी बात ।
प्रजा आपकी यह सब, आई है साक्षात ।। 2889क

स्वामी तुम हो देश के, तेरे सभी अधीन ।
सुनकर इनकी अर्ज़ को, आज्ञा करें नवीन" ।। 2889ख

कहा शेर ने गर्ज कर, "करो सभी को पेश ।
सुनें सभी की अर्ज़ हम, करो न देरी लेश ।। 2889ग

हम क्षुधा से हैं दुखी, ये आये इस रीत ।
खाऊँ सबको मार मैं, करता है मम चीत" ।। 2889घ

रीछ सबन को सन्मुख लाया, और कहा "सिंह की बहु दाया ।
तुम सबन पर आज हो पाई, अर्ज़ी सुनने की मन लाई ।
बोलो जो तुम कहने आये, सिंह भूखा, को देर न लाये" ।

सबने तब मिल अर्ज़ गुज़ारी, "हे राजन है प्रजा दुखारी ।
तुम तो एक जीव हो खाते, व्यर्थ प्राण अन्य के जाते ।
भोजनार्थ हम भेजें प्राणी, कष्ट तुझे न हो महादानी" ।
कहा गर्ज के सिंह "स्वीकार, पेश करो मेरा उपहार ।
लौट जाओ अन्य तुम सारे, एक आये कल इसी द्वारे" ।
एक जीव उन कीना पेश, लौटे जीव सभी जो शेष ।

दो॰–एक जीव को छोड़ कर, सब निज गये स्थान ।
भोजन सिंह ने कीना, यह नीति है दान ।। 2890

जीव एक नित्य वहां आता, जिस को शेर मार खा जाता ।
अटल रहे सब पशु निज वचना, नीति मिलि जिमि सिंह से बचना ।
इक दिन शश की बारी आई, चतुराई उस निज दिखलाई ।
धीरे धीरे वह चल पाया, सिंह पास देरी से आया ।
भूखा सिंह था करत विचार, आया नहीं है मम आहार ।
आज मैं सब का करूँ विनाश, लघु जीवों पै नहीं विश्वास ।
इतने में उस शश को देखा, और गर्ज कर उसे उलेखा ।
"इतनी देरी से क्यों आया, निज वचन क्या सबन भुलाया ।
आज एक भी जीव न छोड़ूँ, सब की हड्डी पसली तोड़ूँ" ।

दो॰–वचन सिंह के श्रवंण कर, शश ने कीन जुहार ।
और कहा "सरदार जी, क्रोध न करें अपार ।। 2891 क

इस दास का दोष नहीं, हम हैं सेवादार ।
बात और हीं बन गई, अर्ज़ करूँ सरकार ।। 2891 ख

थी खरगोश की बारी आज, सब ने सोचा हे महाराज ।
इक खरगोश से चले ना काम, दो खरगोश भेजें सुखधाम ।
मार्ग में इक सिंह मिल पाया, उस ने एक पकड़ के खाया ।
मुझे भी लागा खाने शेर, कीन विनय मैं लायी न देर ।
मेरा तो इक स्वामी और, हूँ मैं चला उसी की ठौर ।
कह उसे मैं लौट के आऊँ, भोजन तब मैं तव बन पाऊँ ।
सुना आप का जब उस नाम, कहा गर्ज कर हे सुखधाम ।
इस वन का तो मैं अधिकारी, अन्य किसी की न सरदारी ।
मेरे सन्मुख उस क़ो लाओ, शीघ्र मेरे पेश कराओ ।
मैं देखूँ वह पामर कौन, स्वामीपना जतलावे जौन ।

दो०–उस कायर से निपट कर, तेरा करूँ आहार ।
या तुम्हें मैं बख्श दूँ, है तेरा उपकार'' ।। 2892

सुनी शेर जब शश की बात, क्रोध से उस का कांपा गात ।
कर गर्जन उस वन गुंजाया, ''कायर किस मुझ को कह पाया ।
शीघ्र चलो तुम मेरे साथ, दो दो करूँ मैं उस से हाथ ।
आज केवल उसी को मारूँ, और क्षमा तुम्हें कर डारूँ'' ।
शश बोला ''हे वन के नाथ, शीघ्र चलो अब मेरे साथ ।

वह पामर अब भाग न जाये, अथवा कहीं वह छिप न पाये" ।
क्रोध से कांप रहा था शेर, उठने में उस लायी न देर ।
शश के संग तभी हो पाया, मन में लेश विचार न लाया ।
क्रोध जीव की बुद्ध ज़लाये, विवेक लेश न वह कर पाये ।
शश शेर को कूप पै लाया, और कहा "हे वन के राया ।
तेरे डर से वह छिप पाया, इसी गुफा वह शेर समाया ।
बच के वह कहीं निकल न जाय, धावा बोलो हे वन राय ।

दो०-तेरे डर से भीरु वह, छिप गया इस ग़ार ।
उसे निकारो सिंह जी, उस का हो संहार ।। 2893क

वह देखो इस गार में, कर रहा ललकार ।
टूट पड़ो उस दुष्ट पै, और उसे दो मार" ।। 2893ख

इस विध उस को जब उकसाया, सिंह कूप पै खड़ हो पाया ।
देखा कूप में निज परछायीं, लगा दहाड़न उसके तायीं ।
भीतर से जब आय दहाड़, क्रुद्ध दहाड़े गला वह फाड़ ।
रही क्रोध में उसे न होश, अथाह भरा था मन में जोश ।
निज परछाईं जान के शेर, छलांग लगाई कीन न देर ।
सिंहराज का भया सफाया, कूटनीति निज रंग दिखाया ।
शश के बचे नीति से प्राण, वन पशुओं को भी मिला त्राण ।
हे भक्तो ! पर लेवो जान, आपत का यह धर्म पहचान ।

बिन अवसर जो कूट चलाये, जग निन्दा व पाप कमाये ।

दो०–बिन धोखे न कूट चले, वा बिन कुशाग्र बुद्ध ।
प्राण संकट में हों जब, प्रयोग करे प्रबुद्ध ।। 2894क

सुन कर इस दृष्टांत को, भये चकित सब लोग ।
नीति निपुण था शश बड़ा, सिंह हनन के योग ।। 2894ख

जन कहा इक "हे महादानी, वन्य जीवों की यह कहानी ।
दें ऐतिहासिक को दृष्टांत, जिस से भये जिज्ञासा शांत ।
इस नीति का पाप आधार, तुम ने कीना यह स्वीकार ।
क्यों कर करें इसका प्रयोग, सत्पुरुषों के न यह योग" ।
युक्ति संगत यह सुनकर बात, कहा 'सेवक' ने हे मम तात ।
धर्म समय का जो पहचानें, यह संशय वे चित्त न आनें ।
मैं ने कथा है आपत धर्मा, सभी समयों का न यह कर्मा ।
जो हिंसा निन्दा के योग, उसे सराहवें रण में लोग ।

दो०–शांत काल में धर्म जो, चले न आपत काल ।
कूट नीति भी धर्म हो, सर जब नाचे काल ।। 2895

तुम पूछी ऐतिहासिक बात, सुनो ध्यान से हे मम तात ।
प्राकृत जन की कहूँ न बात, नीति कृष्ण की कथूँ मैं तात ।
कूटनीति का महा प्रमाण, दीना स्वयं कृष्ण भगवान ।

कृष्ण नीति यदि न अपनाते, पाण्डव विजय को तब न पाते ।
ग्यारह अक्षौणी सेन कहां, पांच अक्षौणी सेन कहां ।
सौ कौरव एक ओर कहां, पांच पाण्डव एक तरफ कहां ।
द्रोणाचार्य गुरु सन्मुख कहां, उन के शिष्य थे पाण्डव कहां ।
[1]वह काल विजेता भीष्म कहां, द्रुपद पुत्र नायक कहां ।

दो०– [2]असम बलों का युद्ध वह, किस विध होवे जीत ।
कृष्ण चन्द्र भगवान मन, तभी भयी प्रतीत ।। 2896

कृष्ण चन्द्र चित्त लायी बात, बिन नीति नहीं बनेगी बात ।
हे भक्त तुम लो यह जान, हर जन सके न नीति पहचान ।
चित्त एकाग्र कर जब देखो, कृष्ण की रणनीति तब पेखें ।
अनेक मिलेंगे वहां प्रमाण, जन गण को जो करें हैरान ।
जो नीति अब करूँ बखान, कूटनीति का स्पष्ट प्रमाण ।
महारथी जब कृष्ण ने देखे, अरि सेना के योधा पेखे ।
फिर वा उस निज सेना देखी, नीति कुशल मन नीति उलेखी ।
नीति बिना न बनेगा काम, विपक्ष जुटे महारथी तमाम ।
रण का शंख जभी बज पाया, थलका द्रोणाचार्य मचाया ।
किसी की थी न वहां बसात, सके जो उस का कर साक्षात ।

---

[1] भीष्म : भीष्म पितामह, कौरवों का सेनापति । द्रुपदपुत्र : पाण्डवों का सेनापति ।

[2] असम : शक्ति और संख्या में असमान ।

दो०-द्रोणाचार्य के सन्मुख, ठहर सके को मीत ।
शस्त्र उस के हाथ जब, सके विश्व को जीत ।। 2897

पाण्डव योधा भये हैरान, सभी मरें अब लीना जान ।
वीरोचित हम गति को पावें, तन के सीने सन्मुख जावें ।
चले न उनकी पर कुछ पेश, द्रोण के शस्त्र विजंयी हमेश ।
देख कृष्ण के मन तब आयी, करूँ द्रोण से स्वयं लड़ाई ।
बिन शस्त्र ही करूँ संहारा, मैं नीति का लेय सहारा ।
मारा तब हस्ती अभिरामा, जिस का नाम था अश्वथामा ।
रण में शंख नाद करवाये, मार हैं [1]अश्वथामा पाये ।
सर्वत्र फैली जब यह बात, पड़ी द्रोण के कान भी बात ।
निज पुत्र का हि वध उस जाना, रहा न शोक का कोई ठिकाना ।

दो०-स्वपुत्र वध के शोक में, शस्त्र त्यागे द्रोण ।
अपना पुत्र जभी मरे, सके सहन कर कौन ।। 2898

नीति कृष्ण की लायी रंग, रथ में बैठा द्रोण निसंग ।
शोक में बह गया वह ऐसे, युद्ध से उपराम हो जैसे ।
तभी कृष्ण ने कीन इशारा, सेनापति बस शर दे मारा ।
द्रोण के हृदय में जो लागा, विश्वविजयी प्राण को त्यागा ।
यदि न कृष्ण नीति अपनाते, पाण्डव विजय को न तब पाते ।

[1] अश्वथामा एक हाथी का और द्रोणाचार्य के पुत्र का भी नाम था ।

कूट नीति का दिव्य प्रमाण, जग दिखलाया कृष्ण भगवान ।
आपत काल जभी चल आवें, कूट नीति को तब अपनावें ।
सुन कर भक्त ने यह वृतांत, कहा "जिज्ञास भई है शांत ।
इक बात प्रभु और बतायें, कामादि जो शत्रु कहायें ।
क्या उन पर भी चलेगी नीत, अथवा उन के है विपरीत" ।

27. काम आदि शत्रुओं पर नीति का प्रयोग कैसे हो ?

दो०–उस की सुन जिज्ञास यह, बोला 'सेवक' मीत ।
श्रवण कीन जो नीति तुम, सके सबन को जीत ।। 2899क

सके सबन को जीत यह, शत्रु को भी होय ।
नीती के प्रयोग बिना, परास्त न शत्रु होय ।। 2899ख

काम का हो प्रहार यदि, सिमरे गुरु उपदेश ।
अमृत रूप उपदेश से, शांत हो काम विशेष ।। 2899ग

क्रोध काम मद लोभ सब, और मोह भी मीत ।
दोष सबन का दूर हो, कर स्मरण गुरु चीत ।। 2899घ

यही साम की नीति है, उत्ताम है यह नीत ।
सदा इसी अभ्यास से, होय साध की जीत ।। 2899ङ

अगर ये वश में न भयें, गहो दान की नीत ।
गुरु आज्ञा से भोग की, भी मर्यादा मीत ।। 2899च

साम दान की नीति यह, है बतलाई मीत ।
बुद्धिमान ही जान सके, गुरु चरणि जिस प्रीत ।। 2899छ

साम दान की नीति यह, हितकर जानो मीत ।
इस नीति पर जोय चले, सदा उसी की जीत ।। 2899ज

अब मैं तुम को वह बतलाऊँ, भेद की नीति मैं समझाऊँ ।
कामादि यदि होंय बलवान, स्वर्गिक सुखों का कर लो ध्यान ।
चित्त देखो जब उनका भेद, लौकिक सुख से मानें खेद ।
स्वर्ग में सुख दिव्य मिल पायें, लौकिक सुख न समता लायें ।
स्वर्ग हेतु जन तप को साधे, यम नियमों को वह आराधे ।
भेद नीति का यह प्रयोग, साधक कर ले ध्यान से योग ।
साम दान व भेद की नीति, प्रयोग करे जन रख प्रतीति ।
अब सुनो तुम दण्ड की नीत, जिससे ले जन चित्त को जीत ।

दो०–दण्ड की नीति अब कहूँ, गुरु चरणि धर ध्यान ।
करे जो मन उद्दण्डता, दण्ड से हि कल्याण ।। 2900

मन को चंचल तुम लो जान, और प्रमाथी चित्त महान ।
साथ में है वह बहु बलवान, इस की दृढ़ता भी पहचान[1] ।

[1] देखें श्रीमद्भगवद्गीता :– चंचल हि मनः कृष्ण प्रमाथी बलवद् दृढम् ।। 6.34

चारों शक्तियां ये इस माहीं, भर अभिमान सुने कुछ नाहीं ।
यदि यह कुत्सित पथ पर चाले, दे दण्ड जन इसे संभाले ।
दण्ड बिना यह वश नहीं होय, कुत्सित मग न त्यागे सोय ।
पंचों के इसे करे अधीन, संयमित तभी यह हो अदीन ।
सुनी भक्त जब ऐसी बात, पूछे "कौन पंच वे तात ।
जिन के करेंगे इसे अधीन, यह सुनी अभी बात नवीन ।
किरपा कर हम को बतलावें, किस ठौर वे पंच रह पावें ।
पंच कहां बसें महाराज, है जिज्ञासा उपजी आज ।

दो०–पंच कहां वे बसत हैं, जो बतलाये तात ।
उनके दर्शन हम करें, और होय साक्षात" ।। 2901 क

सुन उस की जिज्ञास को, कहा 'सेवक' सहास ।
पंच बाहर न बसत वे, बुद्धि में है वास ।। 2901 ख

गुरु योगी जब मिलत है, बतावे उन का भेद ।
पंच यमों को जान लो, दूर करें वे खेद ।। 2901 ग

पांचों यम तुम जानते, अहिंसा आदि मीत ।
यन्त्रित मन को वे करें, यही दण्ड की रीत ।। 2901 घ

संग विषय का जब करे, चंचल मन हे मीत ।
बुद्धि यम के दण्ड से, ले मन को तब जीत ।। 2901 ङ

दण्ड की नीति मैं कथी, योग के जो अनुसार ।
और यदि जिज्ञास हो, लो पूछ इस काल ।। 2901 च

निज संगिन का संग ले, यम करे जो काम ।
उस के जाने भेद को, योगी परम ललाम ।। 2901 छ

भक्त ने पूछा "हे भगवान, संगिन का भी दीजो ज्ञान ।
वे संगी हैं कौन से नाथ, कर्म करे यम जिन्हें ले साथ ।
उन की कर के हम पहचान, दण्ड नीति का पावें ज्ञान" ।
कहा 'सेवक' तुम को है ज्ञान, पांच नियम यम संगी जान ।
शौच आदि जो नियम बताये, यम के संगी वही कहाये ।
इन नियमों को जब अपनायें, चित्त को वश तभी कर पायें ।
नियमों को न जो जन धारे, तन मन उस के हों दुखयारे ।
शौच को जो जन न अपनावे, तन मन दोनों से दुःख पावे ।
जिस के मन संतोष न भाई, उस की न सुखदायी कमाई ।
तप को जिसने नहीं कमाया, विषयों के वश में वह आया ।
स्वाध्याय नेम न जिस का भाई, ज्ञान की उस न कीन कमाई ।
आजीवन उस रह अज्ञानी, राह न मुक्ति की पहचानी ।
ईश्वर का न कर प्रणिधान, रहा अभिमान में हि इन्सान ।

दो०-पांच नेम न धार कर, यम को भी न धार ।
यम लोक में जाय फिर, आत्मा होय ख़्वार ।। 2902

कहा भक्त "मैं लीना जान, मिला दण्ड का मुझ को ज्ञान ।
सब नीतिन के तुम विज्ञाता, अब बताओ हे जन त्राता ।
पंचम भी तुम नीति बताई, कूट नीति थी जो कथ पाई ।
उस का भी क्या होय प्रयोग, मन को वश में करे जब योग ।
उस में तो असत्य प्रधान, योग में सत का मुख्य स्थान ।
यही भाव अब मम मन आया, इसे सुझावो कर के दाया ।
कूट नीति न योग अनुकूल, प्रयोग करें क्यों इस को भूल ।
योगी क्यों वह नीति अपनाय, जिसमें असत्य मुख्य रह पाये ।

दो०–असत्य का आधार ले, करें यदि को कार ।
योग के प्रतिकूल वह, मेरा यही विचार" ।। 2903

युक्तिसंगत सुन कर यह बात, कहा 'सेवक' तू सुन मम तात ।
आपत काल में कूट प्रधान, भूल न जाना यह तुम ज्ञान ।
मन हठी जब साधन त्यागे, ध्यान समाधि में नहीं लागे ।
मग अभ्यास से हि वह भागे, पथ वैराग्य पै वह न लागे ।
ऐसा मन जन को भटकावे, गर्त नरक में उसे गिरावे ।
ऐसा चित्त वश करने हेत, नीति कूट ही है अभिप्रेत ।
सत्य जगत को झूठ बताओ, इस विध मन को तुम भरमाओ ।
यह जगत है केवल स्वप्ना, यहां तो कुछ भी है न अपना ।
इस से क्यों तुम करते प्यार, यह तो रेत की जान दीवार ।

दो०– जग स्वप्नवत जान लो, रेत की वा दिवार ।
नीर में इक तरंग वत, मत कर जग से प्यार ।। 2904क

नेह जगत से करत जो, मूर्ख वह इन्सान ।
त्याग जगत को सर्पवत, यह न नैकलस[1] जान ।। 2904ख

गले लगाये जो इसे, काट उसे यह खाय ।
जगत भयंकर है बड़ा, गले न इसे लगाय ।। 2904ग

जग एक परछाई है, सत्य न इस को जान ।
धूप ढले मिट जात है, रहत न कहीं निशान ।। 2904घ

जल ऊपर इक रेख जो, क्षण भी टिक न पाय ।
ऐसा ही यह जगत है, पल में जो नशाय ।। 2904ङ

मृग तृष्णा सम जानिये, जग का मोहक रूप ।
भागो न इस पाछे तुम, मूढ़ जीव अनुरूप ।। 2904च

था जग झूठा है भी झूठा, जग रहे यह सदा ही झूठा ।
रहे जगत पर निर्भर भाई, उस की नाशे सकल कमाई ।
जो कुछ जगत में दीखत मीत, सभी वह झूठी है प्रतीत ।
जग तो [2] तिलसिम का इक बाग, करिये मत इस से अनुराग ।
जगत तो इक तारा प्रभात, देखात देखात छिपेगा तात ।
[3] बुदबुद माया का यह मीत, भमे न इस में तेरा चीत ।

[1] नैकलस : Necklace – माला । [2] तिलसिम : जादू । [3] बुदबुद : बुलबुला ।

दीखत सत्य जो तुम्हें जहान[1], यही तो तेरा है अज्ञान ।
यहां तो कुछ भी है न मीत, भ्रम में पड़ा क्यों तेरा चीत ।
यहां तो शून्य है सभी स्थान, है दृष्टि तेरी रुग्न महान ।
सत्य बात यह समझो भाई, है इस जग में तथ्य न राई ।

दो०–दृष्टि से जो दीखता, असत सभी है मीत ।
त्यागो तुम अज्ञान को, करो न जग से प्रीत ।। 2905क

सुन कर सारी बात को, कहा भक्त तब एक ।
"मोड़ें मन को जगत से, ले असत्य की टेक ।। 2905ख

सत्य सनातन ईश का, सत्य जगत है नाथ ।
मन मोड़न के हेतु तो, यह असत्य का साथ ।। 2905ग

यही नीति जो आप बताई, बहुजनों ने काम में लाई ।
समझ लिया अब रहस्य महान, कूटनीति का भी है स्थान ।
टेड़ा मन यदि टेड़ा चाले, कूटनीति तब उसे सम्भाले ।
सत उपदेश को न वह माने, झूठा झूठे को सन्माने ।
सत्य ज्ञान न रोचक लागे, कल्पित बातों में अनुरागे ।
कूटनीति का कर प्रयोग, सुधारें जीवन को कुछ लोग ।
आप की बात पर रहे स्मरण, सदा करें न इस का वरण ।
इसी नीति का कर प्रयोग, कुपथ चलें हैं बहुत से लोग ।

[1]जहान – संसार

आप से समझी सारी नीत, मुख्य बात इक धारी चीत ।
गुरु योगी यदि न मिल पावे, नीति सकल व्यर्थ हो जावे ।

दो०-गुरु योगी को पाय कर, करें नीति प्रयोग ।
लाभ मोक्ष का तब गहें, और सिद्ध हो योग'' ।। 2906क

सुन कर उस की बात को, कहा 'सेवक' हे मीत ।
तुम समझी मम बात है, वा धारी दृढ़ चीत ।। 2906ख

सिद्धि योग में वही जन पाय, गुरु की सीख को जो अपनाय ।
राम लाल प्रभु जग में आय, सभी रहस्य उन आन बताय ।
इह लोक परलोक की बात, उन से ही हम समझी तात ।
नीति सकल उन वह बतलाई, बने लोक परलोक सहायी ।
दोनों लोक न जो संवारे, वह नीति नहीं प्रभु सत्कारे ।
युग युग में प्रभु लेत अवतार, धर्म का उन से हो उद्धार ।
पाप की नीति वे ठुकरावें, धर्म की नीति वे बतलावें ।
रेखा धर्म अधर्म के बीच, देखे प्रभु की दृष्टि समीच ।
क्या अधर्म धर्म क्या भाई, मुनियों की भी मति चकराई ।

दो०-क्या धर्म व अधर्म क्या, प्रभु जानें यह भेद ।
गुरु भी प्रभु का रूप है, पथ मिले बिन खेद ।। 2907

अधर्म का इस युग बहु पसार, लीना प्रभु ने है अवतार ।

योग शक्ति से धर्म फैलायें, सुन्दर रूहें जग में आयें ।
पापी रूहें रहेंगी दूर, तब तो सतयुग आये ज़रूर ।
पापी रूहें पाप फिलायें, उत्तम रूहें सतयुग लायें ।
इस रहस्य को जो जन जानें, अन्तःकरण में न भरमानें ।
यह है शाश्वत दिव्य विधान, यह है पाया गुरु से ज्ञान ।
युग परिवर्तन प्रभु कर पावें, कल्प अन्त तक जग रह पावें ।
सुना 'सेवक' से युग विधान, भक्त तब पूछा "हे सुजान ।
क्या युग और कल्प क्या होय, दीजो ज्ञान कर किरपा मोय ।

28. सतयुग त्रेता आदि चार युगों तथा कल्प का वर्णन

दो०–कल्प किसे हम कह सकें, युग भी क्या हो नाथ ।
इन दोनों का ज्ञान दे, करिये हमें सनाथ ।। 2908क

धर्म स्थापन हेतु प्रभु, युग युग लें अवतार ।
कृष्ण चन्द्र भगवान भी, कथन किया यह सार ।। 2908ख

युग का अर्थ हमें बतलायें, और कल्प का भाव जतायें ।
इस युग में लेकर अवतार, रामलाल के नाम को धार ।
कल्प अन्त तक दिव्य प्रभाव, जग में रहे उनका सद्भाव ।
सकल भेद यह आप बतावें, श्रीमुख से ही हम सुन पावें" ।

सुनकर भक्त की यह जिज्ञास, 'सेवक' बोला सह विश्वास।
तुमने सत ही है कह पाया, रामलाल जो रूप धराया।
उसी रूप में विश्व विधाता, पूर्ण कल्प रहें जगत्राता।
रहे व्याप वह दिव्य स्वरूप, विरला देख सके वह रूप।

दो०–रामलाल के रूप को, विरला देखे मीत।
शरणागत अनुभव करे, शक्ति त्रिगुणातीत ॥ 2909

कलियुग में लीना अवतार, कल्प अन्त तक रहें तन धार।
काकभुषुण्डी की यह वाणी, मुलखराज है सत पहचानी।
'सेवक' को उन दीना ज्ञान, सद्गुरु का यही उत्तम दान।
गुरु किरपा जिस पै हो जाये, [1]अज्ञ [2]तज्ञ की पदवी पाये।
अब मैं तुमको वह बतलाऊँ, जो पूछा है वह समझाऊँ।
काल विभक्त युगों में मीत, बहु युगों का कल्प लो चीत।
शास्त्रों में यह खोल बतायें, युग कितने इक कल्प समायें।
क्रम से लेवो अब तुम जान, तभी पाओगे पूर्ण ज्ञान।
चार युगों का संग्रह मीत, चतुर्युगी लो चित्त में चीत।

दो०–सतयुग त्रेता द्वापर, और कलि का काल।
चतुर्युगी इस को कहें, प्रथम काल की चाल ॥ 2910

चतुर्युगी इक सहस्र होंय, उस को ब्रह्मदिवस जन गोंय।

[1] अज्ञ : अज्ञानी। [2] तज्ञ : तत्वज्ञानी।

चतुर्युगी फिर सहस्र होय, ब्रह्म रात्रि कहलावे सोय ।
एक दिवस और रात्रि एक, ब्रह्मा का दिन है प्रत्येक ।
तीन शत दिन पैंसठ सोय, ब्रह्मवर्ष तुम जानो सोय ।
शत वर्ष इमि होंय व्यतीत, उसे कल्प तुम चित्त में चीत ।
वह ब्रह्मा की आयु भाई, शास्त्र में है यही कथ पाई ।
यह संक्षेप से लो तुम् जान, युग व कल्प का भेद पहचान ।
गणन करो यदि इस अनुसार, कल्प में युग हों बहुमन धार[1] ।
उनतीस लाख व बीस हजार, ब्रह्मवर्ष में युग करो विचार ।
उनतीस कोटि बीस युग लाख, कल्प में गणना शास्त्र भाख ।

दो०–सुन लिया अब मीत तुम, कल्प का यह हिसाब ।
प्रभु रहें कल्पांत तक, हो सृष्टि को लाभ ।। 2911 क

ब्रह्म वर्ष सौ बीतते, जो कल्प कहलाय ।
प्रलय होय तब सृष्टि का, महाप्रलय कहलाय ।। 2911 ख

जब तक सृष्टि है टिकी, प्रभु रहें सब काल ।
शरण पड़ें जो भक्त जन, करें सार संभाल ।। 2911 ग

---

[1]सतयुग, त्रेता, द्वापर, कलि = एक चतुर्युगी ।
1000 चतुर्युगी = ब्रह्मदिवस । 1000 चतुर्युगी = ब्रह्मरात्रि ।
इस प्रकार 2000 चतुर्युगी = ब्रह्मा का एक दिन ।
2000 × 365 = 730000 चतुर्युगी = ब्रह्मवर्ष = युग 2920000
730000 × 100 = 73000000 चतुर्युगी = ब्रह्मा की आयु = एक कल्प = 292000000 युग

ऐसा यह अवतार है, राम लाल मम मीत ।
उनके चरणों को भजो, दृढ़ करके तुम चीत़ ।। 29।। घ

परब्रह्म भगवान वे, उन का रचा जहान ।
वर्तमान कलिकाल में, धारा तन उन जान ।। 29।। ङ

ब्रह्म आयु जब क्षीण हो, हो सृष्टि का अन्त ।
इतने दीरघ काल का, इक निमेष भगवन्त ।। 29।। च

निमेष इक भ़गवन्त का, करे सृष्टि की हान ।
और पुनः निमेष लेंय, फिर रचना हो जान ।। 29।। छ

रहसमयी अब बात बताऊँ, परब्रह्म का अन्त न पाऊँ ।
परब्रह्म जो लेंय निमेष, प्रभाव न उन पर कुछ विशेष[1] ।
अकाल पुरुष व कालातीत, बेअन्त प्रभु यही मन चीत ।
तुमने पूछी थी जो बात, कह दी मैंने तुमको तात ।
युग व कल्प ये काल के भेद, कालातीत न पावे खेद ।
राम प्रभु परब्रह्म हैं लाल, शरण पड़े को करें निहाल ।
उनकी शरण मे जो चलि आय, वह भी काल से खेद न पाय ।
क्या जिज्ञासा भयी तव शान्त, ज्ञान का तो प्रिय है ना अन्त ।

---

[1] 100 ब्रह्मवर्ष : (एक कल्प) में सृष्टि का महाप्रलय होता है । यह 100 ब्रह्मवर्ष का काल परब्रह्म का एक निमेष (अर्थात् आंख का झपकना) कहलाता है । परन्तु रहस्य की बात यह है कि इस निमेष का परब्रह्म की आयु पर प्रभाव नहीं । वे कालातीत हैं । उनका अन्त नहीं ।

और यदि कुछ पूछना चाहो, हो निशंक तुम वह कथ पाओ ।
कहा भक्त ने "स्वामी मेरे, तव उपकार हैं अति घनेरे ।
ऐसा ज्ञान हमें मिल पाया, जो न सुनने में कहीं आया ।

दो०–ऐसा ज्ञान दिया प्रभो, ठौर मिले न अन्य ।
करके इसको श्रवण हम, सभी भये हैं धन्य ।। 2912

इक जिज्ञासा और है नाथ, वह भी पूर्ण करो इस साथ ।
चतुर्युगी का दीना ज्ञान, चार युगों का भी अभिधान ।
सतयुग त्रेता द्वापर नाथ, और जो कलियुग की है गाथ ।
कितना इनमें काल का मान, वह भी पायें आप से ज्ञान ।
सतयुग कितना काल बिताये, त्रेता कियत समय रह पाये ।
द्वापर में हों कितने साल, कलियुग रहता कितना काल ।
यह सब आप हमें बतलायें, पूर्ण इमि जिज्ञास कर पायें ।
बहुजन करें युगों की बात, काल का भेद न सबको ज्ञात ।

दो०–यह ज्ञान हम आप से, सुन पायें अब नाथ ।
काल भेद बतलाय कर, करिये हमें सनाथ" ।। 2913

सुनकर उसकी यह जिज्ञास, 'सेवक' कहा प्रश्न है खास ।
मैं तुम्हें अब खोल बताऊँ, स्पष्ट रीति से सब समझाऊँ ।
एक बात पर समझो मीत, परिभाषा की भी हो प्रतीत ।

कल्प को हम युगों में मापें, युग को दिव्य वर्षों में नापें।
लोक में इक वर्ष जो भाई, देवों का इक दिन हो जाई।
त्रयशत पैंसठ दिवदिन जायें, दिव्य वर्ष तब एक बनायें।
दिव्य वर्षों में सुन लो मीत, प्रथम कर सतयुग की प्रतीत।
उस के बाद त्रेता आये, द्वापर फिर कलियुग आ पाये।
कलि जाये फिर सतयुग आये, रात बाद जिमि दिन हो पाये।
यह चार युगों का चक्र मीत, सृष्टि चले बस इस ही रीत।

दो०–सतयुग त्रेता द्वापर, और कलि का काल।
पश्चात कलि फिर सतयुग, चक्र चलावे काल ।। 2914 क
दिन रात का चक्र ज्यों, और ऋतु का मीत।
युगों का तिमि चक्र यह, प्रभु की ऐसी रीत ।। 2914 ख
दिन रात में भेद जिमि, ऋतुओं में भी भेद।
तिमि युगों में भेद होय, कहें सकल ही वेद ।। 2914 ग

भक्त बोला तब "हे भगवान, हम चाहें इस भेद का ज्ञान"।
कहा 'सेवक' हे मेरे मीत, प्रथम काल की करें प्रतीत।
पीछे यह प्रसंग चलायें, भेद युगों का तब लख पाएँ।
सत युग [1]वर्षदिव चार हजार, त्रेता में हों तीन हजार।
दो हजार हों द्वापर बीच, इक हजार कलि काल के बीच[2]।

---

1 दिव्यवर्ष अर्थात् देवताओं का वर्ष।

2 सत युग : 4000 दिव्य वर्ष।
त्रेता युग : 3000 दिव्य वर्ष।
द्वापर युग : 2000 दिव्य वर्ष।
कलि युग : 1000 दिव्य वर्ष।

एक बात यह भी लो जान, युगों में संधि काल पहचान ।
सतयुग त्रेता द्वापर बाद, चार तीन दो शत रहें याद ।
यह इन तीन का संधिकाल, इक शत पाछे हो कलि काल[1] ।

दो०–इस गणना से जान लो, सकल काल का भेद ।
दिव्य सृष्टि का मनन कर, नशे अहं का खेद ॥ 2915 क
आयु जीव नगण्य जान, सृष्टि काल अपार ।
कण एक जिमि रेत होय, मरुथल बीच अपार ॥ 2915 ख

दिन रात को जीव तो देखे, ऋतुपरिवर्तन को भी पेखे ।
युग परिवर्तन कैसे जाने, आगम[2] को प्रमाण वह माने ।
भक्त ने पूछी तब यह बात, "स्पष्ट करें प्रमाण की बात" ।
कहा 'सेवक' तुम लो यह जान, ज्ञान हेतु हैं त्रय प्रमाण ।
किसी बात को जानन हेत, प्रकट देख जन मान वह लेत ।
इसे कहें प्रत्यक्ष प्रमाण, प्रत्यक्ष न हो करें अनुमान ।
जिमि धुएं से अग्नी जानें, ध्वनि से व्यक्ति को पहचानें ।
यह अनुमान का है प्रमाण, इस से मिले तथ्य का ज्ञान ।

---

1 सत युग का संधि काल – 400 दिव्य वर्ष ।
त्रेता युग का संधि काल – 300 दिव्य वर्ष ।
द्वापर युग का संधि काल – 200 दिव्य वर्ष ।
कलि युग का संधि काल – 100 दिव्य वर्ष ।

2 आगम – शास्त्र ।

प्रत्यक्ष मिले न जहां प्रमाण, काम आये न जहां अनुमान ।
आगम से वहां मिलता ज्ञान, शास्त्र वचन को सत्य पहचान ।

दो०–आप्त जनन का कथन जो, शास्त्र करें बखान ।
आगम उस को जानिये, वह अकाट्य प्रमाण ।। 2916

युंग परिवर्तन की यह बात, और कल्प का निर्णय तात ।
आगम से ही जानें मीत, और उसी में होय प्रतीत ।
मनुष्य की आयु तिल समान, यह देख सके न कल्प महान ।
लघु सी पृथ्वी के इस बीच, बंधा जीव निज कर्म से नीच ।
विश्व का पावे कैसे ज्ञान, निज का भी जिसे अल्प न भान ।
श्रद्धा जागे जिस के चित्त, आगम माने वह ही मित्त ।
श्रद्धा बिना न मिलता ज्ञान, कथन करें यह खुद भगवान ।
जिसे न शास्त्र का कुछ ज्ञान, अंधे सम वह जन लो मान ।

दो०–नेत्र जानिए बुद्धि के, आप्त पुरुष के बयन ।
शास्त्रों में जो हैं लिखे, वे अकाट्य प्रमाण ।। 2917

स्पष्ट सुनी जब ऐसी बात, कहा भक्त ने "हे जन त्रात ।
शास्त्र को बिन बात हम मानें, बुद्धि के वे नेत्र पहचानें ।
जो मिला अभी आप से ज्ञान, आप्त वचन वे भी भगवान ।
आप्त पुरुष नहीं आप समान, मिला आप से निर्मल ज्ञान ।

आपकी बातें रहें स्मरण, और भजें हम आपके चरण ।
इन चरणों का करके ध्यान, उपजे सदा हृदय में ज्ञान ।
आपके चरण हैं रवि समान, ज्ञान के भानु वे भगवान ।
तम भ्रान्ति का करें वे दूर, करें कृपा जब आप हजूर ।

29. सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के गुणों का वर्णन और राजा हरिश्चन्द्र का प्रसंग

दो०–कृपा आप की पाय कर, मिलता दिव्य ज्ञान ।
युग के गुण बतलाइये, जिन का किया बखान ।। 2918 क

सतयुग में गुण क़ौन से, त्रेता में गुण कौन ।
द्वापर में हैं कौन से, और कलि में कौन ।। 2918 ख

इस ज्ञान को देय कर, करिये हमें सनाथ ।
भेद युगों के ज्ञान का, मिले आप से नाथ" ।। 2918 ग

सुन कर उसकी बात को, कहा 'सेवक' हे तात ।
अब वही तू श्रवण कर, जो पूछी है बात ।। 2918 घ

प्रकृति के गुण तीन जो, करें वही सब काज ।
उनके ही प्रभाव वश, है दूषित कलि आज ।। 2918 ङ

सत्व रजस व तमस पहचान, प्रकृति के गुण तीन ये मान ।
सतयुग में हो सत्व प्रधान, तमस का राज कलि में जान ।

त्रेता में सत रज का शासन, द्वापर में रज तम का आसन।
इस विधि गुणों के आश्रित जान, चार युगों का भेद पहचान।
पुण्य जीव सतयुग में आयें, जन अधम कलि में उपजायें।
जैसे जन जग वैसा होय, संदेह करे न इस में कोय।
पुण्य जनों से सतयुग भाई, अधम जनों से कलि बन पाई।
त्रेता द्वापर दोनों बीच, मिश्रित हों जन उत्तम नीच।

दो०–चार युगों का इसी विध, चल रहा चक्र मीत।
युग प्रति में दीख रही, अपनी अपनी रीत ।। 2919

सतयुग में जो जन उपजायें, सहज योग में वे लग पायें।
साधन में निज काल बितायें, रह विरक्त माया से पायें।
सत्य में उनकी हो प्रतिष्ठा, जिमि थी हरिश्चन्द्र की निष्ठा।
सत्यहेतु जिस राज्य गंवाया, पत्नी पुत्र कोउ बिकवाया।
स्वयं बिका चण्डाल के हाथ, सत्य पाल कर भाया सनाथ।
श्रवण कीन जब जन यह बात, कहन लगा वह "हे जनत्रात।
हरिश्चन्द्र का यह इतिहास, सुनें आप से सह विश्वास।
सतयुग की वह गाथ सुनायें, महिमा सत की हम सुन पायें।
सत्य हेतु जिमि राज्य गंवाया, परिवार सहित जिमि बिक पाया।
वह सब सुनकर हो विश्वास, सतयुग में था सत्य का वास।
कलियुग में इमि को कर पाये, कलि में इससे भिन्न लखाये।

दो०–हरिश्चन्द्र की गाथ का, करिये आप बखान ।
महापुरुष के चरित को, सुनकर हो कल्याण ।। 2920

'सेवक' ने तब कहा इतिहास, सतयुग की जो शिक्षा खास ।
सत्य ईश का दूजा नाम, सत्य त्याग जन हो बदनाम ।
आस्तिक पुरुष वही कहलावे, सत्याचरण में वृत्ति लावे ।
जिस को सत्य से नहीं प्यार, नास्तिक पुरुष वह लो मन धार ।
सतयुग वह जहां सत प्रधान, हरिश्चन्द्र सम पुरुष महान ।
असत्य बसे कलियुग के मांहि, ठग बसें तभी संशय नांहि ।
स्वार्थरत तब जीव बहुतेरे, परमार्थ के न लागें नेरे ।
धर्म की नीति को न मानें, स्वार्थ को ही सब प्रिय जानें ।

दो०–सतयुग का इतिहास सुन, वे करते उपहास ।
कहें मूर्ख हरिश्चन्द्र था, नृप बना जा दास ।। 2921

तामसिक बुद्धि जब हो पाये, सत की बात न वहां समाये ।
उलट बात ही वे कह पायें, सतपुरुषों की खिली उड़ायें ।
माने नहीं जो सत की बात, आत्मा का वह करत है घात ।
सत को तो सतजन पहचाने, महिमा उस की वह ही जाने ।
सत्य की शक्ति मोक्ष दिलावे, नरक पाश से वही बचावे ।
सत्याचरण है तप जहान, खाण्डे की वह धार समान ।
इस पै चाले योगी जीव, अन्य न छूवे इस की सीव ।

हरिश्चन्द्र ने सत्य अपनाया, तिहूँ लोक में यश को पाया ।

दो०–सत्य धर्म को पालता, वीर पुरुष लो जान ।
कायर ने क्या पालना, ऐसा तप महान ।। 2922

वीर पुरुष ही सत पै चाले, दीना वचन कभी न टाले ।
प्राण जाये पर सत न जाये, ऐसा दृढ़ निज नेम निभाये ।
हरिश्चन्द्र का सुनो इतिहास, जिस को सत्य पै था विश्वास ।
सत्य से बढ़ कर कुछ न जाने, प्राणों से प्रिय वचन को माने ।
सूर्यवंश की यही बढ़ायी, प्राण जायें पर वचन न जायी ।
सूर्यवंश का इक महाराज, त्रिशंकु प्रसिद्ध जगत में आज ।
स्वर्ग सिधारा वह महाराज, दीना हरिश्चन्द्र को राज ।
राजसूय उस यज्ञ रचाया, विश्वामित्र पुरोहित बनाया ।

दो०–यज्ञ सम्पूर्ण जब भया, गुरु को दीना दान ।
परिपाटी अनुसार ही, सारा राज्य महान ।। 2923क

कीन गुरु स्वीकार वह, दक्षिणा लीनी मांग ।
सब कुछ था गुरु का भया, पड़ी समस्या आन ।। 2923ख

सहस्त्र मुद्रा मांग ली, दक्षिणा में उस काल ।
इतना धन कैसे जुटे, यह था कड़ा सवाल ।। 2923ग

रानी संग नृप कीन विचार, और लीना तब उन मन धार ।

बिन दक्षिणा न यज्ञ सम्पूर्ण, दे दक्षिणा कर पायें पूर्ण ।
राज देने का वचन निभायें, दक्षिणा सहित दान दे पायें ।
मुनि से मांगा तब उन काल, मास एक बाद देवें दयाल ।
दक्षिणा का तब धन ले आयें, और लाय कर चरण चढ़ायें ।
कहा मुनि ने हो कर दयाल, "एक मास का दूँ मैं काल ।
एक मास में न मिल पाये, तेरा वचन असत्य हो जाये ।
सूर्य वंश की यही बढ़ाई, दीना वचन न मिथ्या जाई ।

दो०–एक मास में लाय कर, कर दक्षिणा प्रदान ।
तभी हमें स्वीकार हो, तव राज्य का दान" ।। 2924

ऋषिवर्य का सुना आदेश, त्याग राज्य को चला नरेश ।
रानी और सुत रोहित साथ, नृप आया वह काशी अनाथ ।
ठहरा वह इक ब्राह्मण पास, रानी बेची उसके पास ।
निज पुत्र को वहीं ठहराया, आगे स्वयं और चल पाया ।
खुद को बेचा हाथ चण्डाल, हरिश्चन्द्र का देखो हाल ।
नृप भया चण्डाल का दास, सत्य पालन है न उपहास ।
सत्य की लीनी जिस ने टेक, मधुर लगे उसे दुख प्रत्येक ।
कांटों पर जब वह सो पाये, निद्रा गूढ़ वहां भी आये ।
सत्य स्वयं अमृत की खान, सत्यवादी लहे सुख महान ।

दो०–जो सुख अनुभव करत जन, सत्य वचन को पाल ।
वर्णन में किमि आ सके, उस के मन का हाल ॥2925क

कटु लगे उसे मधुर सम, कांटे लागें फूल ।
सुख जगत के नहीं चहे, सतवादी जन भूल ॥2925ख

राजा ने सत मग अपनाया, कांटों का सिर ताज धराया ।
जा बिका चण्डाल के हाथ, द्रव्य जुटा कर लीना साथ ।
ऋषि को दीना जा वह द्रव्य, पूर्ण भया उसका कर्तव्य ।
सुनो अब आगे का इतिहास, सुन जिसे रुकता जन का श्वास ।
सत्य का मार्ग नृप अपनाया, संकट ऊपर संकट आया ।
राजा लेश न पर घबराया, सत्य धर्म को था अपनाया ।
सत्य की शक्ति जिसके साथ, जानो न कभी उसे अनाथ ।
सत्य अलौकिक बल है मीत, जिस घट हो सदा उसकी जीत ।
राजा ने था सत अपनाया, संकट में नहीं डगमगाया ।

दो०–सत्य वचन जो दे दिया, फिरा न उस से लेश ।
मुनि जब लीनी परीक्षा, सफल भया नरेश ॥ 2926

सुनी जब 'सेवक' से यह बात, कहा भक्त ने "हे मम तात ।
किस विध परीख ऋषि ने लीन, और उत्तीर्ण किमि नृप कीन ।
वह सुनने की मम जिज्ञास, रोचक लागे यह इतिहास ।
सत की महिमा हम सुन पायें, हम भी सत का मग अपनायें ।

सत के मग पर जब चल पायें, सद्‌गुरु से तब किरपां पायें ।
हमें सुनावें अब इतिहास, हरिश्चन्द्र का दृढ़ विश्वास ।
जिस के चित्त में दृढ़ विश्वास, वही चले सत मग पै खास ।
दुख आये जो नृप के ऊपर, स्मरण करें सब जन वे भू पर ।
सत्य को पाल के वह नरेश, अमर भया हरिश्चन्द्र नरेश ।

दो०-हरिश्चन्द्र के नाम को, स्मरण करे संसार ।
सत्य हेतु जिस ने सहे, लौकिक कष्ट अपार" ।। 2927क

इच्छा जन की जान कर, 'सेवक' ने कथ दीन ।
जो कष्ट हरिश्चन्द्र ने, सत्य हेतु खुद लीन ।। 2927ख

कहा 'सेवक' ने भक्त सुजान, मिले उसे इस गाथ से ज्ञान ।
जिस का हृदय हो शुद्ध भाई, असत से रुचि न जिस को राई ।
तुम समझो मुझ से इक बात, यह स्वभाव है जन का तात ।
सतयुग में जो जन उपजायें, वे तो सत में ही रुचि लायें ।
जो प्राणी हैं कलियुग आते, वही असत में हैं रुचि लाते ।
पूछी भक्त ने तब यह बात, "इक जैसे कलि सब क्या तात ।
अथवा कुछ सत को भी मानें, असत को न जो अच्छा जानें" ।
कहा 'सेवक' यह कठिन सवाल, चकमें में जग को दे डाल ।
सरल रीत से मैं समझाऊँ, नियम प्रकृति का कथ पाऊँ ।

भयंकर ग्रीष्म की ऋतु होय, ठंडे क्षण कुछ तब भी जग गोय।
असत का ताण्डव कलि जब होय, सतवादी भी जन्में कोय ।

दो०–सतवादी है जन्मता, विरला कलि में मीत ।
देकर शिक्षा जगत को, होत विदा सप्रीत ।। 2928क

कलिपुरुष नहीं मानते, उस की शिक्षा लेश ।
उस की शंसा तो करें, पालें नहीं उपदेश ।। 2928ख

पूछी तभी भक्त ने बात, "कौन पुरुष वे कलि में तात ।
शिक्षा सत की जिन दे पायी, और जगत ने सकल भुलाई" ।
कहा 'सेवक' इस कलि के काल, जन आये जो हो कर दयाल ।
सब की गाथ तो हम न जानें, और नहीं किसी ग्रन्थ बखाने ।
पर यह सत्य बात है मीत, असत्य करें हम उन से प्रीत ।
उनकी शिक्षा को ठुकरायें, उन के नाम से लाभ उठायें ।
उन के हम अनुचर कहलायें, कलियुग में अंधेर मचायें ।
महापुरुषों का लेकर नाम, करूँ मैं क्यों उन को बदनाम ।
चोर लेय निज पिता का नाम, पिता को करता वह बदनाम ।

दो०–सत्पुरुषों का नाम ले, करते स्वार्थ सिद्ध ।
यही चाल कलिकाल में, सर्वत्र है प्रसिद्ध ।। 2929

आगे की अब बात बतायें, हरिश्चन्द्र का चरित सुनायें ।
नृप बना चण्डाल का दास, निशि-दिन करता सेवा खास ।
नियुक्त भया मुर्दों के घाट, मुर्दों का जहां लगता ठाट ।
जो शव था उस थल जल पाता, वह था उस का कफ़न ग्राहता ।
रात दिवस यही उस का काम, लेकर निज मालिक का नाम ।
कोई कफ़न न छूटन पाय, सावधान हो करत उपाय ।
सत की यह मर्यादा भाई, स्वामिहित नहीं होय खटाई ।
स्वामी का जभी हित भुलायें, सेव धर्म से तब गिर पायें ।
सत के हित जिस राज त्यागा, सेवा के सतपथ वह लागा ।

दो०-हरिश्चन्द्र था पालता, सेव धर्म मन लाय ।
कठिन परीक्षा में पड़ा, एक दिवस वह आय ।। 2930

एक दिवस नारी चलि आई, गोदी में मृत पुत्र उठाई ।
विलख रही वह नार बिचारी, एकाकी थी किस्मत मारी ।
सर्प डंस से पुत्र मरा था, ला शमशान उसे धरा था ।
नग्न तन बिन वस्त्र पड़ा था, कफ़न हित हरिश्चन्द्र खड़ा था ।
नारी विलख विलख थी रोती, सुध बुध बार बार वह खोती ।
हरिश्चन्द्र को उस पहचाना, और कहा "तव सुत अञ्जाना ।
सर्प ने इसे काट है खाया, कफ़न भी इस को न जुट पाया ।
किस्मत मारी मैं हूँ नारी, रानी से हूँ बनी भिखारी ।

इस का कफ़न कहां से लाऊँ, कर शमशान का किमि चुकाऊँ ।
हे स्वामी तुम अन्तर्यामी, रोहिताश्व को देखो स्वामी ।
मरा पड़ा तव बालक देव, करिये क्षमा कफ़न की सेव" ।
हरिश्चन्द्र निज सुत पहचाना, रानी को निःसहायी जाना ।
सेव धर्म पर उत्तम जान, दीना सेवा को अधिमान ।

दो०-सेव धर्म के सामने, मोह पूत का त्याग ।
स्पष्ट बात उस ने कही, लीन कफ़न था मांग ।। 293क

अपने पति को देख कर, अटल सत्य के पथ ।
मन में धीरज धार कर, दीना उस ने कथ ।। 293ख

"पतिदेव मैं तव अनुयायी, क्षमा करिये मम मूर्खताई ।
अपने धर्म को पालें आप, दूँगी कफ़न मैं बिन संताप" ।
इतना कह वह खड़ हो पाई, निज साढ़ी हि फाड़ के लाई ।
हरिश्चन्द्र का मन भर आया, विश्वामित्र वहीं प्रकटाया ।
जय की ध्वनि गगन से आयी, "हरिश्चन्द्र तव सत्य कमायी ।
जब तक रहेगा सूरज चांद, तेरा यश नहीं होगा मांद" ।
विश्वामित्र आशिष दीना, रोहिताश्व को जीवित कीना ।
हरिश्चन्द्र को राज्य लौटाया, सफल परीक्षा में कर पाया ।

30. राजा हरिश्चन्द्र को ऋषि विश्वामित्र द्वारा योग सम्बन्धी उपदेश

दो०-विश्वामित्र तभी कहा, "हे राजाधिराज ।
जग तव सत्य के सामने, नतमस्तक है आज ॥ 2932क
हो परीक्षा में सफल, वर मांगो हे तात ।
जो मांगो तुम को मिले, न संकोच की बात ॥ 2932ख

हे राजन् व हे महारानी, सत पै निष्ठा तव पहचानी ।
मैं जाना सामर्थ्य तुम्हारा, और धैर्य का पारावारा ।
लो अब माँग जो हो मन माहिं, हम समर्थ वरदान में आहिं" ।
कृपामयी यह सुन कर वाणी, हरिश्चन्द्र कहा "महादानी ।
आप की कृपा ही वरदान, और मांगूँ मैं क्या वरदान ।
आप की कृपा से हे नाथ, सत्य का त्यागूँ न कभी साथ ।
तन जाय पर सत्य न जाय, ऐसी दया मुझ पै हो पाय ।
देह गया फिर भी मिल पाय, गया सत्य फिर हाथ न आय ।

दो०-ऐसी कृपा कीजिए, सत में रहूँ समाय ।
असत वस्तु को त्याग दूँ, सत का पथ मिल जाय" ॥ 2933

विश्वामित्र कहा "प्रिय तात, यह कथी सत ज्ञान की बात ।
ज्ञान विशुद्ध का दूँ उपदेश, शाश्वत जीवन हेतु विशेष ।
ऋषि की किरपा जब हो पाई, नृप ने तन की सुधि विसराई ।

साधन योग में मन लगाया, समाधि में स्थित वह हो पाया ।
मन को पृथ्वी में कर लीन, पृथ्वी जल में कर विलीन ।
जल को तेज में उस थमाया, तेज को वायु में धर पाया ।
वायु को आकाश में छोड़, 'अहं' में तब आकाश को मोड़ ।
अहं को तब वश कर उस लीन, युक्त महत्तत्व से जब कीन ।

दो॰-रोका पृथ्वी में चित्त, पृथ्वी जल में लीन ।
तेज में जल को देकर, तेज वायु में लीन ।। 2934क

वायु छोड़ आकाश में, बह कर अहं विलीन ।
महत्तत्व आधार बन, अहं को स्वकर लीन[1] ।। 2934ख

---

1 सत्यसारां धृतिं दृष्टवा सभार्यस्य च भूपतेः ।। 24 ।।
विश्वमित्रो भृशं प्रीतो ददावविहतां गतिम् ।
मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽपोऽनिलेन तत् ।। 25 ।।
खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ।
तस्मिञ्ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिदहन् ।। 26 ।।
हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाण सुख संविदा ।
अनिर्देश्याप्रतर्कोण तस्थौ विध्वस्त बन्धनः ।। 27 ।।

(श्री मद्भागवत 9.7, 24–27)

अर्थात : विश्वामित्र ने रानी सहित राजा हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा ली, किन्तु उनके सत्य, सामर्थ्य और धैर्य को देखकर उन्हें विस्मित और प्रसन्न होना पड़ा । विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर हरिश्चन्द्र को अविहत गति (मोक्ष गति) प्रदान की ।

राजा ने मन को पृथ्वी में, पृथ्वी को जल में, जल को तेज में, तेज को वायु में, वायु को आकाश में, आकाश को अहंकार में, एवं अहंकार को महत्तत्व में मिला दिया, अर्थात् लीन कर दिया । विषय वासनाओं को त्यागकर आत्मा का रूप विचारने लगे । आत्मा के रूप से अज्ञान को नष्ट कर दिया। यह अज्ञान ही आत्मा का आवरण है । अन्त में परमानन्द के अनुभव से ज्ञान को भी त्यागकर, सब प्रकार के बन्धनों से छूट कर उस ब्रह्मरूप को प्राप्त हो गये, जो अनिर्देश्य और अतर्क्य है ।। 24–27।।

ऐसी सुनकर गूढ़ यह बात, भक्त बोला "हे जग के तात ।
मेरी समझ में न यह आये, आप वचन हैं जो कथ पाये ।
मन को पृथ्वी में किमि रोकें, पृथ्वी को किमि जल में सोकें ।
जल को तेज में किमि थमावें, तेज वायु में किमि धर पावें ।
वायु किमि आकाश में जाये, आकाश अहं में किमि समाये ।
महत् में कैसे अहं हो लीन, पहेली इक तुम यह कथ दीन ।
पहले हमें यही समझावें, फिर आगे की बात चलावें ।
चित्त जब संशय से हो भ्रान्त, गुरु के वचन ही करते शान्त ।

दो०–वचन गुरु के ज्ञानमय, संशय देंय निवार ।
भ्रांतमयी जब बुद्धि हो, शिक्षा गुरु आधार" ॥ 2935

'सेवक' ने जब सुनी यह बात, कहा भक्त को हे मम तात ।
प्रश्न तुम्हारा बहु अनुकूल, यहां विद्वान भी करते भूल ।
केवल योगी इस को जाने, तन में तत्त्वों को पहचाने ।
मूलाधार में मन टिकाये, पृथ्वी में मन तभी समाये ।
वहां है पृथ्वी तत्व प्रधान, मिलता योगी को सब ज्ञान ।
उस से ऊपर चित्त उठावे, स्वाधिष्ठान में मन टिकावे ।
वहां पर जल तत्व प्रधान, विसरे पृथ्वी का तब ज्ञान ।
जल में पृथ्वी होवे लीन, स्थूल हो सूक्ष्म में जिमि क्षीन ।

दो०–स्थूल सूक्ष्म में क्षीन हो, यही योग की रीत ।
गुरु योगी ज़न को मिले, होय तभी प्रतीत ।। 2936

उस से आगे प्राण उठावे, मणीपूर में चित्त टिकावे ।
वहां पर तेज तत्व प्रधान, विलीन हो वहां जल लो जान ।
और ऊपर को चढ़ें प्राण, अनाहत की तब हो पहचान ।
वहां पर वायु की प्रभुताई, जहां तेज भी जाय समाई ।
योगी के उठें ऊपर प्राण, विशुद्ध चक्र में मिले स्थान ।
आकाश तत्व वहां प्रधान, वायु का जहां विसरे ज्ञान ।
'अहं' बीज वहां जानों मीत, आत्मा की वहां हो प्रतीत ।
[1]महत् से आत्मा का संयोग, सृष्टि रचना यह जानो योग ।

दो०–हरिश्चन्द्र को इस विध, ऋषि कराया योग ।
विशुद्ध चक्र में हो स्थिर, मिटा चित्त का सोग ।। 2937

'सेवक' ने तब पूछी बात, समझ लिया क्या तुम हे तात ।
पांच तत्व जो सृष्टि बीच, योग में हों प्रयुक्त समीच ।
विशुद्ध चक्र में योगी जाय, आत्म रूप वहां शुद्ध लखाय ।
महत से देखो निज सम्बन्ध, निरख विधाता का अनुबन्ध ।
वह ईश की शरण में जाये, ईश्वर का प्रणिधान कमाये ।
आज्ञा चक्र में होवे वास, जीव व ईश का योग जो खास ।

1 विशुद्ध चक्र में आत्मा और आकाश (सूक्ष्मतम तत्व) का मिलाप सृष्टि रचना के रहस्य का ज्ञान प्रदान करता है ।

जीव का यह नहीं स्थिर स्थान, ईश्वर का जहां मिलता ज्ञान ।
गुरु ले जावें अपने स्थान, सहस्रार जहां ब्रह्म महान ।
हरिश्चन्द्र को वहीं पहुँचाया, विश्वामित्र कृपा कर पाया ।

दो०-सहस्रार में वास हो, जो ब्रह्म का स्थान ।
वहां पहुंच जन मुक्त हो, क्लेश सभी का हान ।। 2938क
क्लेश सभी का हान हो, मुक्त जीव हो जाय ।
सत्य धर्म को पाल कर, यही गति जन पाय ।। 2938ख

हरिश्चन्द्र का सुन इतिहास, सत्य धर्म का गुण जहां खास ।
कहा भक्त ने "हे महाराज, स्पष्ट भया हम को है आज ।
मन वच कर्म से सत को पाल, आत्मोद्धार हो बिना सवाल ।
हरिश्चन्द्र ने सत को पाल, कीना मोक्ष लाभ तत्काल ।
परमगति सब मोक्ष को मानें, जीवन लक्ष्य इसी को जानें ।
केवल सत्य का ले आधार, हरिश्चन्द्र निज कीन उद्धार ।
सत का और भी हो दृष्टांत, हमें सुनाइए मिटे भ्रांत ।
दुर्बल मन सुन कर यह ज्ञान, निष्ठावान बने भगवान ।

31. सत्य धर्म की प्रतिष्ठा और मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के गुणों का उल्लेख

दो०-सत की महिमा श्रवण कर, मन पाए बल नाथ ।
दुर्बलता को दूर कर, बिके न यम के हाथ" ।। 2939

कहा 'सेवक' सुन लो हे मीत, प्रभु को केवल सत से प्रीत ।
त्रेता युग प्रभु ले अवतार, प्रतिष्ठ किया सत को करतार ।
दशरथ सुत थे भए प्रभु राम, सत्य को पाला उन सुख धाम ।
कहा भक्त "हे गुरु महाराज, किमि किया यह राम महाराज ।
सुन कर आप से यह प्रसंग, चढ़े सत्य का हम पर रंग" ।
'सेवक' बोला हे मम मीत, है जग को राम कथा प्रतीत ।
अयोध्या में थे करते राज, रामपिता दशरथ महाराज ।
महायोधा व महा बलवान, मानत उन को सकल जहान ।

दो०–रघुकुल में दशरथ भए, जो हैं जग विख्यात ।
त्रय थी उनकी रानियां, इक कौशल्या तात ।। 2940

दूसरी का सुमित्रा नाम, कैकेयी तीजी बहु अभिराम ।
कौशल्या के थे पुत्र राम, भरत कैकेयीसुत का नाम ।
सुमित्रा से दो पुत्र जाए, लक्ष्मण व शत्रुघ्न कहलाए ।
चारों कुंवर प्रजा को प्यारे, दशरथ के नयनों के तारे ।
चारों वे भगवान के रूप, अथाह शक्ति थी जिन में गूप ।
राम विष्णु के थे अवतार, शेष आये तन लक्ष्मण धार ।
भरत और शत्रुघ्न दुलारे, शक्ति दिव ने रूप थे धारे ।
जग की नींव धर्म को जानो, प्रभु ही रक्षक उसके मानो ।

दो०–धर्म नींव है जगत की, सत्य धर्म के प्राण ।
प्रभु रक्षक हैं धर्म के, प्रकटे राम भगवान ।। 2941

अपने संग बहु शक्ति लाये, धर्महेतु जगत प्रकटाये ।
सत्य धर्म सर्वोत्ताम थाप, मर्याद दिखाई जग को आप ।
प्राण जायें पर सत न जाये, शिक्षा राम यही दे पाये ।
कहा भक्त "बतलावें नाथ, किमि उन पथ यह कीन सनाथ ।
किमि थापी उन सत्य की लीक, झुठला दिया किमि पथ अलीक ।
हम सुनें अब खास वह बात, रामचरित जो है साक्षात ।
प्रभु स्वयं जब जग अवतारें, सत्य धर्म का मग प्रचारें ।
इस में भ्रांति की नहीं बात, सनातन धर्म यही है तात ।

दो०-सुन पायें हम आप से, वह सकल प्रसंग ।
रामायण के श्रवण की, हमरे चित्त उमंग" ।। 2942क

सुनी भक्त की बात जब, 'सेवक' बोला तात ।
रामचरित अब हम कहें, जहां धर्म साक्षात ।। 2942ख

इक बार संग्राम में भाई, घोर विपद दशरथ पै आई ।
कैकेयी ने तब नृप बचाया, था वरदान दशरथ से पाया ।
कहा दशरथ "लो वर तू मांग, दूँगा वही जो लोगी मांग" ।
कहा उस ने "जब इच्छा होय, तब मांगूँ वरदान मैं सोय" ।
"जो इच्छा" दशरथ कह दीना, खुश रानी को इस विध कीना ।
तब से काल गया बहु बीत, रानी की भी बदली नीत ।

बूढ़ा हो गया दशरथ राज, सोचे नियुक्त करूँ युवराज ।
ज्येष्ठ पुत्र को राज बिठाना, सब शास्त्रों ने है यह माना ।

दो०–ज्येष्ठ पुत्र युवराज हो, यही वैदिकी रीत ।
राम गहें युवराज पद, जनता मन थी प्रीत ।। 2943

वशिष्ठ गुरु से कर परामर्श, आज्ञा पा चित्त में ला हर्ष ।
राजादेश तभी हो पाया, जनता में उल्लास था छाया ।
"राम बनें युवराज हे भाई", प्रजा परस्पर देत बधाई ।
महलों में भी फैली बात, सब के चित्त में बस यह बात ।
"बस घड़ी वह अभी आ जाये, राम पद युवराज जब पाये" ।
"जय जय राम" भयी सब थाईं, खुश सभी थे लोग लोगाईं ।
कौशल्या रानी मन मनावे, "वह क्षण शीघ्र ही चलि आवे ।
राम का होवे जब अभिषेक, पूर्णकाम हो जन हर एक" ।

दो०–क्षण क्षण करे प्रार्थना, अन्य न सूझे काज़ ।
शीघ्र आवे वेल वह, राम भये युवराज ।। 2944क

जन की इच्छा और थी, विधना की थी और ।
पेश न जन की चल सकी, मिला न उस को ठौर ।। 2944ख

काल ने ऐसा चक्र चलाया, मन कैकेयी का भरमाया ।
स्मरण आई तब उस को बात, रण के खेत की जो साक्षात ।
नृप ने तब था वर जो दीना, लेने का अब अवसर चीना ।

वह वरदान भया अभिशाप, राज्य में फैल गया संताप ।
रानी मांगा वर तभी खास, भरत को राज राम वनवास ।
दुख की घोर घटा तबं छायी, आंधी आहों की घिर आई ।
आंसुओं का धारा प्रवाह, बरसत जैसे भादों माह ।
रात अंधेरी दिन सुनसान, अभिशाप भया ऐसा वरदान ।

दो०-काल भये विपरीत जब, चले न जन की पेश ।
अमृत भी होय विष सम, मति न स्थिर हो लेश ।। 2945

विकट काल जब सर पर आये, धीर पुरुष ही दृढ़ रह पाए ।
धीर पुरुष ले धर्म की टेक, विचलित न होय क्षण भी एक ।
मांगा रानी जब वरदान, कण्ठ पै आए नृप के प्राण ।
हो गई सीता परम अधीर, हृदय में माताओं के पीर ।
लक्ष्मण के मन क्रोध अथाह, कौन सके पा उसकी थाह ।
देवलोक भी भया अधीर, किमि कथें इस लोक की पीर ।
मारी माता ने जब चोट, लीनी राम ने सत की ओट ।
सत के पथ को जो अपनावे, हानि लाभ न लेखो लावे ।
पिता का वचन न होय असत्य, स्वीकार किया राम यह सत्य ।

दो०-मर्यादा के पुरुषोत्तम, रामचन्द्र महाराज ।
सत्य हेतु उन त्यागा, निज पिता का राज ।। 2946क

निज पैतृक साम्राज्य को, त्यागा उस बिन खेद ।
सत्य धर्म जो पालता, शंसें उस को वेद ।। 2946ख

हे भक्तो यह समझ लो, सत्य सनातन रीत ।
सत को जो जन पालता, उस से प्रभु की प्रीत ।। 2946ग

सत बराबर धर्म नहीं, असत बराबर पाप ।
राम लाल भगवान ने, उपदेशा यह आप ।। 2946घ

कभी न सत के पथ को त्यागें, विघ्न अनेकों बेशक लागें ।
रामादि जो मार्ग अपनाया, मार्ग वही प्रभु जी बतलाया ।
उस पर ही हम चल दिखलावें, विघ्न आवें तो न घबरावें ।
सत का पथ जिस नर अपनाया, उस पर ही हो प्रभु की दाया ।
सत्य की जय सदा लो जान, क्षय असत्य का अन्त में मान ।
साक्षी इसका है इतिहास, धीर पुरुष न त्यागे आस ।
वेद करें सघोष यह नाद, लेश न इस में कहीं विवाद ।
जय हो ऋत की सदा हे भाई, पराजित अनृत वेद बताई [1] ।

दो०–विजय सत्य की होत है, पराजित होय असत्य ।
वेद वचन यह समझ लो, तीन काल में सत्य ।। 2947क

श्रवण कीन जब भक्त ने, ऐसी बात स्पष्ट ।
रामचन्द्र भगवान के, स्मरण किए उस कष्ट ।। 2947ख

कहन लगा "हे नाथ जी, [2]सत का मोल त्याग ।
त्याग करे न लेश जोय, सके न इस मग लाग ।। 2947ग

---

1 सत्यमेव जयते नानृतम् ।

2 अर्थात सत्य का पालन वही कर सकता है जो स्वार्थ का त्याग करे ।

रामचन्द्र ने राज को त्यागा, महलों का भी सुख उस त्यागा ।
मात-पिता को भी वह त्याग, घर से विदा भया बेलाग ।
मन उसके इक बात समाई, प्राण जायें पर वचन न जाई ।
राम पुरुषोत्तम थे भगवान, उन के न कोई और समान ।
जीवन की मर्यादा थापी, तीन लोकों में ख्याति व्यापी ।
उन के और गुणों को नाथ, श्रवण करें और भयें सनाथ ।
आप कहें अब हे भगवान, रामचरित का करें बखान ।
उन के जग में चरित आदर्श, श्रवण करें हम उन्हें सहर्ष ।
वन से लौट आये जब नाथ, प्रजा उन किस विध कीन सनाथ ।

दो०-राम चन्द्र के चरित को, मानें सभी आदर्श ।
रामराज्य में जनन को, दुख न करत स्पर्श ।। 2948क

रामचन्द्र के गुण प्रभु, राम राज्य का रूप ।
श्रवण करें हम आप से, बना ईश जब भूप ।। 2948ख

जग का शासन ईश संभाला, पिता समान प्रजा को पाला ।
शासन का जो रूप दिखाया, जगती में आदर्श टिकाया ।
तीन काल में दीना थाप, उच्च आदर्श राम ने आप ।
गुण कौन थे राम में आये, सब आप हैं मनन में लाये ।
सुन कर आप से हे भगवान, हम को भी हो उन का ज्ञान" ।
भक्त की सुन 'सेवक' जिज्ञास, कथन किया उस सह विश्वास ।

राम अनादि अनीह भगवान, कौन सके पा उन का ज्ञान ।
तारे भी ले जो नभ के गिन, सके न गुण पर राम के गिन ।

दो०–कलिकाल जो राम प्रभु, त्रेता वे थे राम ।
कला सम्पूर्ण धार कर, द्वापर वे ही शाम ।। 2949

कौन पुरुष सब गुण कथ पाये, शब्दों में न अनंत समाये ।
फिर भी करूँगा मैं प्रयास, कथन करूँ कुछ गुण जो खास ।
वीर्यवान धर्मज्ञ थे राम, सत्य वाक्य कृतज्ञ अभिराम ।
दृढ़व्रत और चरित्रवान, सर्व भूत हित वे विद्वान ।
प्रिय दर्शन वे समर्थ सुजान, जित क्रोध और आत्मवान ।
राम अनसूयक थे द्युतिमान, महावीर्ययुत महा धृतिमान ।
महावीर्य वशी बुद्धिमान, नियतात्मा और नीतिवान ।
विपुलांस वे शत्रुसंहारक, महाबाहु वे जग के पालक ।
श्रीमान वाग्मी कंबुग्रीव, अरिंदम वे मर्यादा सीव ।

दो०–गुण असीम थे राम में, वर्णन न हो पांय ।
शुभ लक्षण उन में सभी, सर्व समर्थ कहांय ।। 2950

राम आजानु बाहु भगवान, [1]वशी सुविक्रम प्रतापमान ।
स्निग्धवर्ण वे लक्ष्मीवान, विशालाक्ष और समाधिमान ।

[1]वशी – जितेन्द्रिय

प्रजा हितैषी ज्ञानप्रपूर्ण, शत्रु का करें गर्व वे चूर्ण ।
सत्यसंध धर्मज्ञ यशस्वी, पीन पक्ष तत्वज्ञ मनस्वी ।
प्रिय दर्शन वे चन्द्र समान, रिपुसूदन वे प्रतिभावान ।
स्वधर्म स्वजन रक्षक राम, उदार हृदय और पूर्ण काम ।
कुबेर समान त्यागी राम, विष्णु समान वीर अभिराम ।
सत्यनिष्ट धर्मराज समान, क्षमा में पृथ्वी सम लों जान ।
धैर्य में हिमवान सम भाई, जलधिवत गंभीर सुखदाई ।
क्रोध में आवें जब वे राम, हों शिव सम, जिस भस्मा काम ।
अथवा प्रलय अनल लो जान; रिपु हों क्षण में भस्म समान ।

दो०–प्रलय अनल सम राम हों, जब मन उपजे क्रोध ।
एक पलक में ही गहें, शत्रु से प्रतिशोध ।। 2951

राम का मैं स्वभाव बताया, गुण उनके कुछ ही कथ पाया ।
सूर्य की रश्मि किमि गिन पायें, राम के गुण भी कथ न पाएं ।
जिस विध राज्य किया उन तात, राम राज्य वह भया विख्यात ।
राम राज्य और राजा राम, स्मरण करे इसे जगत तमाम ।
सुन 'सेवक' से पूछी बात, एक सज्जन ने "हे प्रिय तात ।
राम राज्य में क्या गुण खास, जग को जो उस पर विश्वास ।
हो जो रहस की बात विशेष, गुप्त न राखें वह भी लेश ।
यह रहस्य अवश्य बतलायें, सर्व जगत का हित कर पायें ।

32. राम–राज्य कैसे आये ? राम–राज्य के आधार

दो०–त्रेता युग से अब तलक, भया न ऐसा राज ।
राम राज्य ज़ैसा भया, क्या रहस महाराज ।। 2952क

राम राज्य में जो सुख, अन्य नहीं वह ठउर ।
इस जग की इच्छा रहे, राज्य भये वह बहुर ।। 2952ख

रामराज्य की नीति खास, सुनकर जग को हो विश्वास ।
रामराज्य यदि फिर आ जाये, दुःखों से प्रजा मुक्ति पाये" ।
सुन 'सेवक' ने उसकी बात, कहा सुनो तुम मम प्रिय तात ।
तुम्हारा प्रश्न बहु अनुकूल, जग ने ज्ञान यह डाला भूल ।
अनीति का बहु भया पसार, और भयी है प्रजा दुखयार ।
रामराज्य को इमि तुम जान, दो आधार उसके लो मान ।
प्रथम आधार राजा है खुद, राजा शुद्ध तो राज्य भी शुद्ध ।
राजा में गुण वैसे होंय, हैं बतलाये राम में जोय ।
होय शासक यदि गुण आगार, प्रजा सुखी भये सब प्रकार ।

दो०–शासक यदि गुणवान हो, गहे धर्म की रीत़ ।
प्रजा सुखी सब हो तभी, मेरे मन प्रतीत ।। 2953

जग में रामराज तब आये, राम सदृश राजा दिख पाये ।

[1]अब तुम सुन लो अगली बात, मिले प्रश्न का उत्तर तात ।
मन्त्रिगण है दूज आधार, सकल करे जो राज के कार ।
अब लो तुम को सब बतलाऊँ, मन्त्रिन के मैं गुण जतलाऊँ ।

---

1 **मन्त्रियों के गुण :–**

मन्त्र के तत्व को जानने वाले और बाहरी चेष्टा को देखकर ही मन के भाव को समझ लेने वाले हों । राजा के प्रिय और राष्ट्र के हित में लगे रहने वाले हों । शुद्ध आचार विचार से युक्त हों, और राजकीय कार्यों में निरन्तर संलग्न रहें । अर्थशास्त्र के ज्ञाता हों, विद्वान होने के कारण विनयशील हों । सलज्ज, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्री सम्पन्न, महात्मा, शस्त्र विद्या के ज्ञाता, सुदृढ़, पराक्रमी, यशस्वी और समस्त राजकार्यों में सावधान रहने वाले हों । अनुशासन में रहकर कार्य करने वाले हों, तेजस्वी, क्षमाशील, कीर्तिमान तथा मुस्कराकर बात करने वाले हों । वे कभी काम, क्रोध या स्वार्थ के वशीभूत होकर झूठ न बोलें । अपने या शत्रु पक्ष के राजाओं की कोई भी बात उनसे छिपी न रहे । सभी बातें गुप्तचरों द्वारा उन्हें मालूम होती रहें । वे सभी व्यवहारकुशल हों, मौका पड़ने पर अपने पुत्र को भी उचित दण्ड देने से न हिचकिचायें । कोष के सञ्चय और सैना के संग्रह में सदा लगे रहें । शत्रु ने यदि अपराध न किया हो तो उसकी हिंसा न करें । उन सबमें सदा शौर्य और उत्साह भरा रहे । वे राजनीति के अनुसार कार्य करते रहें । राज्य के भीतर रहने वाले सत्पुरुषों की सदा रक्षा करें । न्यायोचित धन से राज्य का खजाना भरते रहें । अपराधी पुरुष के बलाबल को देखकर उसके प्रति तीक्ष्ण अथवा मृदु दण्ड का प्रयोग करें । उन सबके भाव शुद्ध और विचार एक हों । उनके वस्त्र और वेष स्वच्छ एवं सुन्दर हों । वे उत्तम व्रत का पालन करने वाले और राष्ट्र के हितैषी हों । नीति रूपी नेत्रों से देखते हुए सदा सजग रहें, विदेशों में भी सब लोग उन्हें जानते हों । सभी बातों में बुद्धि द्वारा भलीभान्ति विचार करके किसी निश्चय पर पहुँचे । समस्त देशों और कालों में गुणवान ही सिद्ध हों, गुणहीन नहीं । सन्धि और विग्रह के उपयोग और अवसर का उन्हें अच्छी तरह ज्ञान हो। उनमें राजकीय मन्त्रणा को गुप्त रखने की पूर्ण शक्ति हो । वे सूक्ष्म विषय पर विचार करने में कुशल हों । नीतिशास्त्र में उनकी विशेष जानकारी हो । वे सदा ही प्रिय लगने वाली बात बोलें । वे गुप्तचरों द्वारा अपने और शत्रु राज्य के वृत्तान्तों पर दृष्टि रखें । प्रजा का धर्मपूर्वक पालन करें । प्रजा पालन करते हुए अधर्म से दूर रहें । उनकी सर्वत्र प्रसिद्धि हो । वे उदार और सत्यप्रतिज्ञ हों ।

मन्त्री जहां न होंय प्रवीन, राज डूबे न बात नवीन ।
मन्त्री मन्त्रज्ञ हों तात, इंगित से सब जान लें बात ।
शुद्ध हो उन का निज आचार, राष्ट्र हित लेवें चित्त धार ।
अनुरक्त रहें प्रजा से ऐसे, सेवक होंय उसी के जैसे ।
आचार शुद्ध विचार भी शुद्ध, राज्य कार्यों में रहें प्रबुद्ध ।

दो०–ऐसे गुण जिस में मिलें, मन्त्री जानो सोय ।
अर्थशास्त्र का विज्ञ भी, योग्य सचिव वह होय ।। 2954क

मन्त्री हो विद्वान जो, विनय शीलता गोय ।
कार्य कुशली संलज्ज भी, और जितेन्द्रिय सोय ।। 2954ख

श्री सम्पन्न हो मन्त्री भ्राता, शास्त्र विद्या का भी ज्ञाता ।
महान आत्मा हो वह भाई, दृढ़ प्राक्रमी जन सुखदाई ।
मन्त्री होय यशस्वी मीत, राज्य कार्यों में उस की प्रीत ।
सावधान रह करे सब काम, तेजस्वी और जगदभिराम ।
रहे अनुशासन में वह मीत, प्रजा हित कर्म करे सप्रीत ।
क्षमाशील वह होय यशस्वी, कीर्तिमान वह पुरुष मनस्वी ।
जो स्मितपूर्वाभिभाषी होय, जनता का चित्त मोहे सोय ।
असत्यभाषी न होय कदापि, काम क्रोध उस वश सदापि ।
स्वार्थ न उस को छू भी पावे, जनता हित ही काल बितावे ।

दो०–जन हित के ही काज में, रहे सदा जो लीन ।
राम राज्य के हेतु तो, मन्त्री वही प्रवीन ।। 2955

छिपी रहे नहीं उस से तात, शत्रु पक्ष की कोई भी बात ।
अपने राज्य की बात जो होय, उस के ज्ञान को पूर्ण गोय ।
गुप्तचरों से इक इक बात, जान पाये वह मन्त्री तात ।
व्यवहार कुशल होय वह मीत, सकल प्रजा से सम हो प्रीत ।
निज पुत्र को यदि दोषी पाय, उसे भी उचित दण्ड दिलाय ।
हिचकचाय न लेश भी तात, होय विशेष उस में यह बात ।
राज्य का राखे खास ध्यान, देश के कोष की हो न हान ।
सैना का न बल घाट पाय, सकल करे वह वही उपाय ।
हिंसा कर्म से रह कर दूर, दण्डित करे नहीं बेकसूर ।
शत्रु यदि निरपराधी होय, हिंसा उस की करे न सोय ।
सदा रहे उत्साही वीर, राजनीति पै चले बन धीर ।

दो०–राजनीति को पालता, हो कर दृढ़ जो मीत ।
उस मन्त्री के राज में, प्रजा न हो भयभीत ।। 2956क

सत्पुरुष जो वहां बसें, रहें सदा भयमुक्त ।
मन्त्री का कर्तव्य यह, रहे नीति से युक्त ।। 2956ख

जो धन राज्य कोष में आये, न्यायोचित ही वह जुट पाये ।
पुरुष अपराधी पकड़ा जाय, दण्ड शक्ति अनुरूप वह पाय ।
मृदु वा तीक्ष्ण दण्ड कहलाय, शक्ती से वह बढ़ न ग्राहे ।
शुद्ध भाव और शुद्ध आचार, हो मन्त्रिगण का इक विचार ।

स्वच्छ भूषा व सुन्दर वेष, प्रभाव में होय कमी न लेश ।
उत्तम व्रत संकल्प महान, राज मन्त्री की यह पहचान ।
मन्त्री रहें दिनरात सजग, नीति के नयन से देखें जग ।
मन्त्री ऐसे हों विख्यात, यश विदेश में भी हो तात ।

दो०–मन्त्रिन के गुण हम कथे, ऐसे हों विख्यात ।
आदर उनका विश्व में, सब जा हो मम तात ।। 2957

बुद्धि से सभी बात विचार, निर्णय लेवें भली प्रकार ।
सभी देशों में सब ही काल, प्रकट करें गुण बहु प्रकार ।
गुणहीन नहीं मन्त्री होय, समस्त गुणों का संग्रह सोय ।
विग्रह का वे अवसर जानें, सन्धि का उपयोग पहचानें ।
मन्त्रणा जो राज्य की होय, राखें गुप्त ही मन्त्री सोय ।
सूक्ष्म विषय जब आये समक्ष, दिखावें कौशल वे प्रत्यक्ष ।
मन्त्री वही जो नीति जाने, शास्त्र के सब रहस पहचाने ।
बात करे वह सबसे ऐसी, मीठी लागे मन को जैसी ।

दो०–मधुर वचन को बोलकर, करता सबन अधीन ।
रिपु को भी वश में करे, मन्त्री वह प्रवीन ।। 2958क

रहें स्मरण उसको सभी, घटन सदा निज चीत ।
अपने व रिपु राज्य की, जान चरों से मीत ।। 2958ख

मान धर्म का वह अनुशासन, दे प्रजा को न्याय का शासन ।

रह अधर्म से सदा ही दूर, कीर्तिमान हो मन्त्री शूर ।
अन्तिम गुण मैं यह बतलाऊँ, उसे उदार चरित ही पाऊँ ।
सत्य प्रतिज्ञ हो वह ऐसे, हरिश्चन्द्र वा दशरथ जैसे ।
मन्त्रिन के मैं गुण बतलाये, राजा राम के भी कथ पाये ।
ऐसा सुयोग यदि बन पाये, राम राज्य तब भू पर आये ।
प्रजा तभी सब सुखी हो पाये, धर्माचरण जगत में छाये ।
दीन दुःखी न को रह पाये, राम राज्य जब भू पर आये ।

दो०–राम राज्य का स्वप्न तो, हो तभी साकार ।
राम सदृश राजा भये, मन्त्री गुण आगार ।। 2959क

सुन 'सेवक' की बात सब, भक्त भये प्रसन्न ।
कहन लगे "हे नाथ जी, प्रजा आज आपन्न ।। 2959ख

राम राज्य कब आयेगा, भू पर फिर हे नाथ ।
जिस काल में लोक सभी, होंगे सुखी सनाथ" ।। 2959ग

बोला 'सेवक' मित्र प्यारे, सृष्टि के सब रहस्य न्यारे ।
राज्य राम का फिर कब आये, यह जान न कोई जन पाये ।
सुशासक और कुशासक भारे, प्रभु इच्छा से उपजें सारे ।
राम राज्य जग में तब आये, प्रभु की इच्छा जब हो पाये ।
प्रभु इच्छा से योग प्रसार, हो तब सब का शुभ आचार ।

जीवन का आदर्श हो ऐसा, यम व नेम बतलावें जैसा ।
सदाचारी अधिकारी होंय, मन्त्री सब ही न्याय को गोंय ।
राजा प्रजा से करे प्यार, स्वार्थ परक न होय आचार ।
ऐसा प्रभु के अधीन विधान, जीव को होत न इस का ज्ञान ।

33. राम राज्य का विशेष गुण, जाबालि और राम का संवाद तथा पापों का उल्लेख

दो०–जीव यहां न जान सके, कल को हो क्या मीत ।
ईश्वर के अधीन सब, ज्ञान धार यह चीत ।। 2960

राम राज्य का गुण विशेष, धर्म पै चाले नृप हमेश ।
चाहे राज हाथ से जाये, धर्म छोड़ न कभी दिखलाये ।
जाबालि का प्रसंग सुनायें, तब समझ इस बात को पायें ।
सुन कर 'सेवक' से यह बात, भक्त ने पूछ लिया "हे तात ।
अवश्य सुनावें वह सब बात, ज्ञान मिले जो यह साक्षात ।
कौन जाबालि था महाभाग, जिस का प्रसंग सुनाने लाग" ।
कहा 'सेवक' ने हे मम मीत, दृढ़ धारो यह तुम निज चीत ।
राम मर्यादा के पुरुषोत्तम, उन थापी मर्याद सर्वोत्तम ।
हिमालय से भी दृढ़तर भाई, सत में निष्ठा उन थी लाई ।
वन को चले गये जब राम, वास करें वहां वे सुखधाम ।

भरत लौटाने उन को आया, बहुत विनय उन से कर पाया ।
राम जब उस की बात न मानी, मुनि जाबालि खोली वाणी ।

दो०–वन में उसका वास था, नास्तिक बोले बयन ।
जिमि वे वन को छोड़ कर, लौट जांय भगवन ।। 2961

कहा जाबालि "राम प्यारे, कर्म विलक्षण तेरे सारे ।
अपना स्वार्थ नहीं पहचानो, असत को ही तुम सत कर मानो ।
प्राकृत जन सम तेरी बात, ज्ञान का लेश न उस में तात ।
व्यर्थ विचार न मन में लाओ, लाभ न जीवन का ठुकराओ ।
जग में जो बहु बन्धु मानो, तुम इसे अज्ञान पहचानो ।
कौन किसी का बन्धु भाई, संयोगवश यह सब मिताई ।
नदीनाव वत सब संयोग, प्राणियों का न शाश्वत योग ।
क्या लेना है उन से भाई, जिन को मानो अपने भाई ।
पिता व माता जिन को मानो, झूठे ही ये रिश्ते जानो ।

दो०–भूलो रिश्ते जगत के, पड़ो न तुम उस जाल ।
त्यागो सारे मोह को, लो निज हित संभाल ।। 2962

जाय करो तुम अपना राज, त्यागो मत तुम जग के काज ।
जो अपना अधिकार त्याग, कल्पित धर्म में जाता लाग ।
मैं करता हूँ उस का शोक, पाया क्या उस आ इस लोक ।

जान किसी को माई बाप, हो आसक्त जो उन पै आप ।
मैं उसे उन्मत्त ही जानूँ, बुद्धिमान न उसे मैं मानूँ ।
जग के सारे रिश्ते नाते, ये तो मिथ्या सभी कहाते ।
इन को तुम ने सत्यं है माना, इसी कारण तू है भरमाना ।
छोड़ राज तू वन में आया, असत भाव ने तुझे भरमाया ।

दो०–असत भाव में आय कर, है त्यागा तू राज ।
मति मेरी तुम मान कर, निज संभालो राज ।।2963क

राज पिता का छोड़ना, उच्चित न मम मीत ।
वन्य देश में घूमना, है असत प्रतीत ।।2963ख

कण्टकाकीर्ण वनों को त्याग, राज करो तुम जा महाभाग ।
राजा दशरथ न तव कोई, आप भी हैं न उस के कोई ।
आप अन्य और दशरथ अन्य, मानो बात मेरी हे धन्य ।
दशरथ तो प्रस्थान है कीना, अपनी गति को उस है लीना ।
तेरा उस से टूटा नात, संबंध रहा न कुछ भी तात ।
रैन बसेरा जग को मान, किसी को अपना न तू जान ।
नद में बहते तिनके भाई, मिलते कहीं क्षण मात्र आई ।
धारा में जब फिर बह जाते, इकट्ठे न फिर वे हो पाते ।
जीवों का भी यही हवाल, न भूलो यह किसी भी काल ।

दो०–जो बिसरे इस बात को, पड़त मोह के जाल ।
जभी किसी से बिछुड़ता, रो रो होत बिहाल ।। 2964क

लब्ध पदार्थ त्यागना, मानें धर्म जन जो ।
शोचनीय वे जन सभी, पड़ते विपद में सो ।। 2964ख

दुख भोगें इस जगत में, मर कर होंय ख्वार ।
मेरी शिक्षा मान तू, जा निज राज संभार" ।। 2964ग

सुनी जाबालि की जब वाणी, नास्तिकता से थी जो सानी ।
राम कहा उस को तत्काल, नास्तिकता का कर प्रतिकार ।
"बात विप्र जो तुम कथ पायी, मम मन को तो लेश न भायी ।
आप कहा निज मति अनुरूप, मम हित को समझा जिस रूप ।
धर्म विरोधी तव उपदेश, हित नहीं इस में मेरा लेश ।
त्यागत धर्म की जो मर्याद, डूबत पाप पयोध अगाध ।
पाप आचार है करत विनाश, दुराचारी के कुल का नाश ।
पापाचरण ही पापी जाने, निज कुल पै कलंक ले आने ।

दो०–आचार ही आधार बन, निर्णय करत समीच ।
उत्तम कुल है कौन सा, और कौन सा नीच ।। 2965

जो आचार तुम ने बतलाया, मुझे नहीं वह लेश सुहाया ।
आर्य पुरुषों के न वह योग, ऐसा करें अनार्य ही लोग ।

इस विध हो जिस का आचार, मुझे न मान्य उस का व्यवहार ।
प्रकट में भद्र दीखे सोय, वास्तव में अनार्य ही होय ।
कथन में लाया जो तुम धर्म, वास्तव में हो वही अधर्म ।
यदि मैं ग्रहण करूँ तव बात, बनूँगा [1]कामवृत्त मैं तात ।
क़ामवृत्त तब हों सब लोग, वृत्त न राजा के यह योग ।
राजा करता जो जो कार्य, प्रजा भी करती वह हे आर्य ।

दो०–राजा जैसे करत है, प्रजा करे वह काम ।
क्यों त्यागूँ मैं सत्य को, बन कर अधम सकाम ।। 2966क

यही सनातन धर्म है, नृप जनों का मीत ।
सत्य नींव है राज्य की, राज्य सत्य की भीत ।। 2966ख

[2]राज्य सत्य स्वरूप है, सत्य में वह प्रतिष्ठ ।
जगती का आधार सत, दृढ़तम मम है निष्ठ ।। 2966ग

सर्व विश्व के देवता, और मुनिजन मीत ।
मान करें सब सत्य का, सत से सब की प्रीत ।। 2966घ

---

1 कामवृत्त - स्वेच्छाचारी ।

2 वाल्मीकि रामायण अयोध्या काण्ड 10.9.10 -

सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम् ।
तस्मात् सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः ।।

अर्थ : सत्य का पालन ही राजाओं का दया प्रधान धर्म है – सनातन आचार है, अतः राज्य सत्य स्वरूप है । सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है ।

सत्यवादी जो जन भये, इस लोक में भाई ।
परमधाम उस को मिले, संशय है न राई ।। 2966ङ

जन झूठा जो होता भाई, सांप समान सदा भयदायी ।
सदा सत्य को ऐसा जानो, पराकाष्ठा धर्म की मानो ।
सत्य से ही हो धर्म कमाई, होत सत्य ही ईश्वर भाई ।
सत्य को मानो तुम भगवान, आधार धर्म इस को पहचान ।
सत्य मूल है जग का मीत, यही परमपद तुम चित्त चीत ।
मैं सत्य प्रतिज्ञ हूं भाई, सत्य पिता का पालूँ सांई ।
प्रतिज्ञा ले सत्य की तात, अज्ञानवश न छोड़ूँ बात ।
लोभ व मोह से छोड़ विवेक, मर्यादा भंग करूँ न नेक ।

दो०–वचन पिता का संत्य हो, मेरी यह प्रतिज्ञ ।
विमुख न उससे हो सकूँ, मान बात तब विज्ञ ।। 2967

जानूँ मैं तो सत को भाई, प्राणिमात्र के हित में सांई ।
सभी धर्मों से यही श्रेष्ठ, कोई नेम न इस से ज्येष्ठ ।
राज्य लक्ष्मी मन यह मनावे, सतप्रतिज्ञ नृप मुझे गाहवे ।
पृथ्वी यश और कीर्ति जानो, सत्यशील को वरते मानो ।
पिता समक्ष प्रतिज्ञा कीन, स्वेच्छा से वनवास है लीन ।
त्यागूँ नहीं निज वचन कदापि, दीना वचन निभाऊँ सदापि ।
ऋषिवर तेरी बात न मानूँ, दिया वचन सर्वोत्ताम जानूँ ।

भरत की विनय न हो स्वीकार, वचन बड़ा सबसे सरकार ।

दो०–मुख से निकसे वचन पर, रहे न दृढ़ जो मीत ।
पुरुष अधम वह जानिए, ऐसी मम प्रतीत ।। 2968क

अटल प्रतिज्ञा है प्रभु, गुरु समक्ष जो कीन ।
क्यों कर उससे टालते, ज्ञानी तुम प्रवीण" ।। 2968ख

जाबालि सुन राम की वाणी, कहन लगा "हे प्रभु कल्याणी ।
मर्यादानाथ हे भगवान, क्षमा करिये प्रभु मम अज्ञान ।
आपको था मैं न पहचाना, पड़ मोह तव वचन न माना ।
सत्य ही जग का बन्धन नाथ, जन को करत है धर्म सनाथ ।
सत की महिमा जो कथ पाई, वेद कथित वह है रघुराई ।
मम वचनों पर दो न ध्यान, दूर भाया अब मम अज्ञान ।
हे राम तुम धर्म अवतार, आप बखाना धर्म का सार ।
[1]ऋत धर्म का मुख्य आधार, अनृत से होय पाप अपार ।

दो०–सत्य धर्म का मूल है, असत पाप की खान ।
अन्य पाप हैं कौन से, उनका करें बखान" ।। 2969

राम जाबालि की सुन वाणी, कहा मित्र तुम जन कल्याणी ।
हितु मान तुम कही थी बात, समझूँ मैं तव भाव हे तात ।
पर मैं अपना भाव बखानूँ, सत में ही निज हित मैं जानूँ ।

---

1 ऋत – सत्य

सत से हो जन का कल्याण, पाप जगत में दुख की खान ।
पूछी आप बात जो भाई, पाप कौन जो हों दुखदाई ।
पाप कर्म अगणित हैं मीत, कथूँ कुछ एक सुनो ला चीत ।
[1] शास्त्रों का नित करे अध्ययन, चले न उन पर जो ला ध्यान ।

---

[1] पाप :–

असत्य भाषण और असत्य आचरण के अतिरिक्त निम्नलिखित कर्म पाप की कोटी में गिने हैं :–

1. सीखे हुए शास्त्रों को अनसुना करना ।
2. पापियों की सेवा करना ।
3. सेवक से भारी कर्म कराकर उचित वेतन न देना ।
4. समस्त प्राणियों को पुत्र की भान्ति पालन करने वाले राजा से द्रोह करना ।
5. प्रजा से कर लेकर राजा द्वारा उसकी रक्षा न करना ।
6. गुरुजनों की निन्दा करना और मित्र से द्रोह करना ।
7. विश्वास से कही हुई गुप्त बात को प्रकट करना ।
8. पुत्रों, सेवकों आदि से घिरे होने पर भी अकेले ही मिष्ठान्न आदि खा जाना ।
9. भीख मांगना ।
10. मद्यपान, स्त्री समागम और द्यूतक्रीड़ा में रुचि लेना ।
11. कुपात्र को धन का दान देना ।
12. दोनों सन्ध्याओं में सोये रहना ।
13. देव, पित्तर और माता–पिता की सेवा से विमुख रहना ।
14. अपनी धर्मपत्नी का परित्याग कर अन्य स्त्री का संग करना ।
15. पानी को दूषित करना ।
16. किसी को विष देना ।
17. पानी होते हुए भी तृषार्त को पानी न देना ।

प्रथम पाप मैं इसको मानूँ, वा अज्ञानी नर वह जानूँ ।

दो०–पढ़ सुनकर जो अज्ञ हो, वा आचरण विहीन ।
ऐसा पापी पुरुष जो, दुखी रहे हो दीन ।। 2970

एक पापी सुन लो हो सोय, पापियों का जो सेवक होय ।
सेवा पापियों की. हे मीत, करत पापमय जन का चीत ।
एक पाप करूँ और बखान, जिसे करें नहीं बन अनजान ।
सेवक से ले कर सेवकाई, द्रव्य न उच्चित दे जो भाई ।
ऐसा जन जो पाप कमावे, पाप के फल से बच न पावे ।
इक पाप है और भी आया, सुराज्य से जो द्रोह बताया ।
उस को पापी जन मैं जानूँ, कम न उस का पाप मैं मानूँ ।
वह राजा भी पापी होय, रक्षा प्रजा की करत न जोय ।

दो०–कर प्रजा से लेय कर, भूले जो निज धर्म ।
उस का मुख भी देखना, महापाप है कर्म ।। 2971

एक पाप लो और भी जान, बचें सदा हम हे भगवान ।
उसी पाप के करने हारा, मैं कहूँ वह महा हत्यारा ।
'सेवक' की सुन कर दृढ़ वाणी, बोला जन इक "हे बहुमानी ।
ऐसा कौन पाप है नाथ, जिस का सब से ऊपर हाथ" ।
'सेवक' बोला भक्त प्यारे, पाप भयंकर हैं ये सारे ।

परन्तु अब जो पाप बखाना, उस सम अन्य कोई न माना ।
राम जाबालि से कह पाया, अपना उस विश्वास जताया ।
जो गुरुजनों का निन्दक मीत, महापापी तुम उसको चीत ।
पाप यह करत कुठाराघात, जग के जीवन पर आघात ।

दो०–गुरुजनों का होय जब, इस जग में अपमान ।
किसका आदर को करे, भावी जो सन्तान ।। 2972क

[1]आबरू जब मिट गई, सूख गया जब [2]आब ।
ऐसे जग में ज़ीवन, दूभर और खराब ।। 2972ख

ऐसा ही इक और भी, पाप जान मम मीत ।
द्रोह मित्र से जो करे, वह पापी मन चीत ।। 2972ग

जन कहा "हे सद्गुरु प्यारे, कर कृपा कहे रहस न्यारे ।
कर्म का ही संसार पसार, पापी जीव बहे मंझधार ।
जिन पापों से जन बच पाये, वही सकल तुमने समझाये ।
आज जगत की रीत निराली, मिले पाप से ही खुशहाली ।
खुशी खुशी जन पाप कमावे, और बहुत फल उससे पावे ।

---

1 आबरू – आदर   2 आब – पानी

जब जगत में बड़ों का आदर मान समाप्त हो जाएगा जो जग की ऐसी अवस्था हो जाएगी जैसे कि संसार का समस्त जल सूख गया हो । जल के बिना क्या कोई जीवन सम्भव है ?

वही चतुर जन वही विद्वान, वही शूर और वही सुजान ।
जो सके कर पाप बहुतेरे, और लगे न पुण्य के नेरे ।
वही सभ्य और कर्मठ नाथ, जगत ताके उस का ही हाथ ।

दो०-जो पाप कहे आपने, आज उनका प्रचार ।
स्पष्ट करें प्रभु बात यह, हो कैसा व्यवहार''। ।। 2973

'सेवक' बोला बात तव ठीक, कुछ जन चालें पाप की लीक ।
अन्त में पापी का हो नाश, निज कर्मों से होय विनाश ।
देखो न आरम्भ को भाई, अन्त पाप का हो दुखदायी ।
मत देखो आरम्भ सुहाना, दुख अन्त में होत है पाना ।
विष भरा वही सुख है भाई, जिस का अन्त होय दुखदायी ।
सुख हेतु नहीं पाप कमावो, चालो धर्म पै न घबरावो ।
पाप का रहत न सदा प्रचार, करें प्रभु आ धर्म उद्धार ।
पापियों की वे करें सफ़ाई, डरो प्रभु के दण्ड से भाई ।

दो०-पापी जब जग में बढ़ें, और बढ़े जब पाप ।
धर्म हेतु प्रभु जगत में, स्वयं गहें अवतार ।। 2974क

न्याय प्रभु का स्मरण रख, जो चूकत न लेश ।
पथ धर्म का जो गहे, पाता सुख हमेश ।। 2974ख

आगे सुनो अब मेरी बात, कही राम ने जो साक्षात ।

पाप इक और बताया राम, जाबालि को उस सुख के धाम ।
विश्वास सहित बताई बात, प्रकट करे जो भेद को तात ।
विश्वासघाती जन कहाए, दण्ड दैव का वह भी पाये ।
सुनो इक पाप और भी मीत, स्मरण राखो वह ला कर चीत ।
बांट न खावे मोदक भाई, वह भी पापी हो मम साईं ।
केवल अपने लिए पकावे, शास्त्र कहे वह पाप ही खावे ।
संग सबन जो मिल कर खावे, अथवा सबन खिला कर खावे ।
उस को ऐसा पाप न लागे, उसका पूर्व पुण्य भी जागे ।
जभी किसी को भूखा देखें, विलंब करें न, मन उल्लेखें ।
अपना भाग उसे दे पावें, और उसी की भूख मिटावें ।

दो०-अपना स्वार्थ त्याग कर, देत अन्य को दान ।
सभी पाप उस पुरुष के, दूर करें भगवान ॥ 2975

साथी यदि भूखा रह पाये, तेरा खाना काम न आये ।
देख लो को पड़ोसी तेरा, बुभुक्षा ने तो है न घेरा ।
नित्य देखे जो इमि सुजान, प्रभु से पाता वह अधिमान ।
अब सुनो इक और भी पाप, जन्म जन्म जो दे संताप ।
मांगे जन जो भिक्षा भाई, उस का पाप वर्णा न जाई ।
देह नकारा उस का होय, मनोमालिन्य को भी गोय ।
बुद्धि उस की दे नहीं साथ, पुण्य कर्म से धो ले हाथ ।

दाता के ले पाप संभाल, सुजन चले न अधम यह चाल ।
निज हाथों से करे कमाई, मांगे किसी से न कुछ भाई ।
ऐसा जन ही मेरे नाथ, बिकता पाप के न वह हाथ ।

दो०–भिक्षा मांगन पाप है, स्मरण रहे मम मीत ।
'देहि देहि' जान लो, पापिजनों का गीत ॥ 2976क

भिक्षुकजन निज आत्मा, का वैरी खुद होय ।
मानव जीवन पाय कर, कर्म करे न जोय ॥ 2976ख

कर्मयोनि में हम सभी, भोग योनि नहीं यह ।
कर्म करे नहीं जन यदि, जन जड़ बने जा वह ॥ 2976ग

एक पाप तुम सुन लो और, पाप अनेकों का जो ठौर ।
सुरापान कहावे सोय, मद्यपान भी वह ही होय ।
करे यह जन की बुद्धि मलीन, और स्मृति भी होवे क्षीण ।
ठौर कुठौर भूल वह जाये, पाप करने से न शरमाये ।
करे सभी को वह परेशान, इस से क्या और दोष महान ।
मनुष्य को बुद्धि मिली विशेष, जो न अन्य जीवों में लेश ।
उसे बिगाड़े जो नादान, होता पापी वही पुमान ।
मद्यपान से रह कर दूर, उज्जवल बुद्धि होत ज़रूर ।

दो०–मद्यपान से जन बचे, राखो बुद्धि शुद्ध ।
पाप करे न वह कभी, इमि जन कहें प्रबुद्ध ॥ 2977

जाबालि को फिर बोले राम, कहूं इक और पाप सुख धाम ।
द्यूत क्रीड़ा भी है पाप, पाप क्या यह महा अभिशाप ।
'सेवक' ने सब को समझाया, जुए का दुष्प्रभाव बताया ।
पाण्डवों की जिस की तबाही, राखे किस की इज्जत भाई ।
जुआ खेल जन होत [1]तबाह, सकल वंश को करत स्वाह[2] ।
युधिष्ठिर जब यह कीना काम, सारा राज्य लगाया दाँव ।
द्रौपदी भी दाँव पै लागी, सुकीर्ति को भी लागी आगी ।
दर दर भटके पांचों भाई, कुरुक्षेत्र फिर भाई लड़ाई ।
लाखों जन निज जान गंवाई, यह सभी जुए की दुष्टाई ।

दो०-जुआ न खेलें हम कभी, दें कुमार्ग त्याग ।
चलें न जो इस सीख पर, जलें नरक की आग ।। 2978क

भक्त बोले "हे नाथ जी, यह महान उपदेश ।
भूलेंगे न सीख यह, आजीवन हम लेश ।। 2978ख

और पाप क्या राम ने, कथा जाबालि ताहिं ।
कर श्रवण हम आप से, पाप करें फिर नाहिं" ।। 2978ग

कहा 'सेवक' ने भक्तन ताहिं, जो राम कथा जाबालि पाहिं ।
वही पाप सुन लो मम मीत, पर नारी से न राखो प्रीत ।
अपनी पत्नी को जो त्याग, करता अन्या से अनुराग ।

---

1 तबाह - नष्ट, 2 स्वाह - राख

उसको घोर पाप ही लागे, जीवन का सुख उससे भागे ।
इक पाप तुम और पहचानो, सावधान रहकर वह जानो ।
कुपात्र को जो देवे दान, वह जन करता अनर्थ महान ।
पहचाने पात्र फिर दे दान, पुण्य का भागी वही सुजान ।
दान वही दाता को लागे, सुपात्र के जो राखे आगे ।
कुपात्र लेकर तुम से दान, कुकर्म करे वह लो तुम जान ।
उन कुकर्मों का सभी पाप, समझ तुम्हें भी दे सन्ताप ।

दो०–पाप लगे जिस दान से, जगत पाय सन्ताप ।
ऐसा दान अधर्म है, सोच समझ लो आप ।। 2979

एक पाप लो और भी जान, जीवन की जिस पाप से हान ।
जन्म मिला जन पावे ज्ञान, मिलता भक्ति से वह ज्ञान ।
सन्ध्या काल प्रभु को ध्यावें, योग समाधि चित्त लगावें ।
मन इकाग्र ज्ञान को पावे, मानव जीवन सफल बनावे ।
माया को इस वेला त्याग, आत्मलीन बने महाभाग ।
जो इस काल प्रभु न ध्यावे, अपना व्यर्थ समय खो पावे ।
और रहे जो सोया भाई, उस का दोष कथा क्या जाई ।
सन्ध्या काल भक्ति का काल, इसे बितावो सदा संभाल ।

दो०–भजन करें इस काल में, रहें न सोये मीत ।
लागे पाप जो न भजे, लगा प्रभु में चीत ।। 2980

फिर राम कहा जाबालि पास, पाप महा मैं कहूँ इक खास ।

तीन ऋणों को बिना चुकाये, गठरी पाप संग ले जाये ।
उसकी होय न मुक्ती भाई, पड़े नरक की वह जा खाई ।
कहा जाबालि "हे मम नाथ, ऋण का ज्ञान दे करें सनाथ ।
कौन ऋण जो बिना चुकाये, जीव नरक में ही जा पाये" ।
कहा राम हे प्यारे मीत, सुनो बात यह लाकर चीत ।
प्रकृति ताहिं इक ऋण हमारा, देह रूप है जिससे धारा ।
पांच देव की वह मातारी, जिनमें शक्ति है बहु भारी ।
अग्नि वायु और जल आकाश, पृथिवी पांचवां तत्व खास ।
ये ही पांच देव हैं भाई, इनको दूषित करो न राई ।
पांच देवों की शुद्धि हेत, साधन योग करे नर चेत ।

दो०-पांच तत्व जो देह में, योग से रहें पवित ।
व्यापक वे ही जगत में, यज्ञ से हों पवित ।। 2981 क

योग यज्ञ जो नर करे, एक ऋण चुक जाये ।
दैवी ऋण इस को कहें, प्रथम यह ऋण कहाये ।। 2981 ख

दुखी रहे वह जगत में, विमुख जो इस से हो ।
रोग शोक उस को ग्रसें, ऋणी सदा रहे सो ।। 2981 ग

दूजा ऋण सुन लो तुम साईं, पितृ ऋण सब कहें उस ताईं ।
मात पिता की सेवा मीत, उतारे ऋण सुन लो ला चीत ।

माता पिता जिसने न सेवे, वह पापी सुख कभी न लेवे ।
मात पिता देवों के देव, ऐसा मान करे नर सेव ।
तीजा ऋण ऋषि ऋण कहलावे, शास्त्र पढ़ नर इसे उतरावे ।
पाप इक और सुनो मम मीत, जल को करें न कभी पलीत[1] ।
दूषित जल कर करें जो पाप, देवें जग को तब संताप ।
जगती में फैलावें रोग, पापी कथें उन को सब लोग ।
जग हत्यारे वे हो पावें, घोर नरक में वे ही जावें ।

दो०–घोर नरक में जन पड़े, दूषित करके नीर ।
नीर देव वह जानिये, जिस बिन मरे शरीर ।। 2982

नीर महान देव है भाई, गंगाजल सम वह सुखदाई ।
तन को भी वह है सुखदाई, मन को भी वह है सुखदाई ।
बुद्धि को जल करे उजागर, सुख का ही जल जानो सागर ।
दूषित करे जो कूप का जल, मिले उसे उस पाप का फल ।
दूषित करे जो नद का नीर, वहन करे वह नरक की पीर ।
पुष्कर को जो करत मलीन, उस के पुण्य होंय सब क्षीण ।
सागर को जो करत सदोष, दैव का उस पर बरसत रोष ।
जलचरों का वही हत्यारा, पाप लगे उस को बहु भारा ।

---

1 पलीत – गंदा, दूषित

दो०-जाबालि ! मैं देख रहा, कलि में भूल के होश ।
स्वार्थ हित जन पाप करें, करेंगे नीर सदोष ।। 2983

कूप वा पुष्कर करें मलीन, पवित्र गंगा करें मलीन ।
सागर में भी विष को डाल, करेंगे जलचर वे बेहाल ।
ऐसा घोर काल जब आये, दुख ही दुख सब जग में छाये ।
हम जिस नीर से होंवे शुद्ध, उसी को करेंगे जन अशुद्ध ।
उसी कलि के काल में भाई, जग में दुख की हो प्रभुताई ।
इस कारण हम हों सचेत, दूषित करें न जल किसी हेत ।
सदा रहें इस पाप से दूर, मिलता पाप का फल ज़रूर ।
सभी जलाशय राखों शुद्ध, नदियों को नहीं करें अशुद्ध ।
सागर में न ज़हर फैलावें, घोर पाप न कभी कर पावें ।
इसी प्रकार रहे हमें ध्यान, पवन रहे शुद्ध इसी समान ।

दो०-नीर पवन जब शुद्ध हों, जगती रहे निरोग ।
ऐसी शिक्षा जग गहे, दूर रहें सब रोग ।। 2984

एक बात रहे सदा ध्यान, जग सेवा में लगे सुजान ।
अर्थार्थी यदि को चलि आवे, अथवा संकट में जन आवे ।
भूखा वा को प्यासा आवे, जल आदि देय तृप्त करावे ।
प्यासे को जो जल ना देवे, उसके पाप वही जन लेवे ।
जल का दान है उत्तम दान, कर सकें इसे सभी पुमान ।

जिसे प्यास लगी हो मीत, परम अधिकारी उसको चीत ।
बिठला कराओ जल का पान, इसे पुण्य कहें सभी सुजान ।
मधुर वचन और आसन मीत, और पिलाना जल बहु शीत ।
पुण्य कर्म यह सभी कमावें, पाप कर्म से भी बच पावें ।

दो०-प्यासे को जल देय जन, यदि हो उसके पास ।
ऐसा न जो पुरुष करे, पाप लगे तब खास ।। 2985

एक पाप मैं और बताऊँ, कभी-कभी जो देखन पाऊँ ।
किसी को विष देना मम मीत, सनातन धर्म के है विपरीत ।
मत करे कोई ऐसा पाप, जन्म जन्मान्तर दे सन्ताप ।
और सुनो तुम मेरे भाई, आत्मघात भी है दुखदाई ।
आत्मघाती सुख . न पाये, जन्म जन्म पापी कहलाये ।
हे जाबालि मैं कथ दीन, पाप कर्म जो अतीव मलीन ।
बहु जन इनको सुन भी भाई, ना समझें इनको दुखदाई ।
वे तो उस गणना में आयें, मोहवश जो जन अग्नि ग्राहें ।

दो०-पढ़ सुन इस संवाद को, 'सेवक' करे विचार ।
हम भी पापों से बचें, शुद्ध भये आचार ।। 2986क

गिरें भूल से अग्नि में, करें मोहवश पाप ।
त्राण जीव को तब मिले, करें कृपा प्रभु आप ।। 2986ख

34. 'सेवक' की प्रभु से प्रार्थना

हे प्रभो मुझे पाप से, आ बचावें आप ।
रामरती का आप ने, ही काटा था पाप ।। 2986ग

लीना जग में आप ने, कलियुग में अवतार ।
व्यापक अब है जगत में, पापों का अन्धकार ।। 2986घ

विश्वास एक आप पर, ही मेरे मन नाथ ।
भरोसा है न और का, गहूँ न दूजा हाथ ।। 2986ङ

बहुजन्म के पाप का संग्रह, क्षीण करो प्रभो कर अनुग्रह ।
इस में न संदेह है लेश, करता 'सेवक' पाप हमेश ।
जन्म जन्म में कीने पाप, दे रहे इस को हैं संताप ।
अब भी इस को सुधी न आये, करत निरन्तर पाप ही जाये ।
करता न यह लेश भी होश, बढ़ता इस से पाप का कोष ।
रोचक पाप कर्म ही लागे, शुभ कर्म से दूर यह भागे ।
पूर्वजन्म की बात तो एक, इसी जन्म के पाप अनेक ।
मन लेश नहीं भय को माने, पाप कर्म ही रोचक जाने ।

दो०–करे निरन्तर पाप को, और भये प्रसन्न ।
मन्द मति इस जीव पर, किमि हों प्रभु प्रसन्न ।। 2987क

फिर भी इस को आस है, प्रभु हैं दीन दयाल ।
साक्षी है इतिहास यह, लेते प्रभु संभाल ।। 2987ख

पापारि प्रभु को सब जानें, करते नाश पाप यह मानें ।
केवल प्रभु की शरणी लाग, कर प्रभु के चरण अनुराग ।
जन के पाप होंय सब क्षीण, शास्त्रों ने यही शिक्षा दीन ।
बेशक मेरे पाप अनन्त, है विश्वास जो कहते सन्त ।
प्रभु किरपा पा नाशें पाप, भक्त के रक्षक हों प्रभु आप ।
प्रभु चरणी जब दृढ़ अनुरक्ति, अनन्य भाव से प्रभु की भक्ति ।
जन के पाप सभी हों क्षीण, मुक्त हों पापों से जन दीन[1] ।
प्रभो मोहे भी दो वह भक्ति, केवल हो तव चरण अनुरक्ति ।
दया तुम ऐसी कीजो नाथ, मेरा भाग्य भी रहे तव हाथ ।

दो०–पापों का भण्डार है, तव 'सेवक' यह नाथ ।
इस की जीवन डोर तो, केवल तेरे हाथ ।। 2988

जिन पापों को दास न जाने, कब किए थे नहीं पहचाने ।
उन का दुख भी भोग अशेष, मन में इस के अतीव क्लेश ।
रो रो कर यह करत अरदास, प्रभो बचावो अपना दास ।
जब से जग में हूँ उपजाया, है दुखों ने घेरा पाया ।
पाप अनेकों का फल भोग, देह पर झेल अनेकों रोग ।

1 देखो श्रीमद्भगवद् गीता – "अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि" 18.66

भय चिन्ता का चित्त आगार, भाया जीवन है नरक द्वार ।
सूझे न कोई ऐसा ठोर, जहां मिले जीवन सुख भोर ।
सोच सोच मन भये लाचार, समझूँ है सिर पाप का भार ।
बिना पाप नहीं मिलता दुःख, पापी को सुख में भी दुःख ।

दो०-बिना पाप न दुःख मिले, सुख चाहे हर एक ।
पाप कर्म फिर भी करे, जन मूर्ख प्रत्येक ।। 2989क

गंडा राम सुत हैं मिले, राम लाल भगवान ।
जिन तारे अनेक जन, वही करें कल्याण ।। 2989ख

गंडाराम सुत जग में आया, दुखियों को उस गले लगाया ।
जग को दीना यह उपदेश, बचे पाप से जगत हमेश ।
न्याय ईश का अतीव कठोर, पापी पाये दण्ड कठोर ।
सद्गुरु हो कर स्वयं दयाल, दुखी जनों की करें सम्भाल ।
प्रभु पापों से हमें बचावें, और धर्म के मग पै लावें ।
रामलाल प्रभु की यह दाया, सद्गुरु रूप ईश उपजाया ।
पतित अनेकों चरणि लगाये, पापी जन धर्मी बन पाये ।
दीना जगती को उपदेश, धर्म के मग पै चलो हमेश ।

दो०-मग धर्म का ग्रहण कर, बचें पाप से लोग ।
प्रभु शरण जो आयेगा, करेगा सुख का भोग ।। 2990

रामरती थी पापिन नारी, कर किरपा थी प्रभु जी तारी ।
1 हरिहरानन्द कर्मठ बाल, चरण शरण दे लीन संभाल ।
2 नागिन बुढ़िया कीन नीरोग, भक्त बने बहु नागे लोग ।
3 काल का मुख जब खुला समक्ष, मुखराम बचाया था प्रत्यक्ष ।
4 दण्डी के भी प्राण बचाये, धन्य धन्य थे सब कह पाये ।
मारन की थी जिन मन ठानी, प्रभु की शक्ति तुरत पहचानी ।
हिंसक बने अहिंसक मीत, भायी अहिंसा धर्म की जीत ।
5 वनगज भी जब चढ़ कर आए, प्रभु जी ने निज भक्त बचाये ।
6 दलदल ताल जभी उलझाये, भक्तों के प्रभु प्राण बचाये ।

दो०–भक्तों पर जब आ पड़े, किस विध की भी भीड़ ।
नहीं सहारें प्रभु तभी, भक्त जनों की पीड़ ॥ 2991 क

यही सनातन रीत है, देखो खोल पुराण ।
गज पर विपदा जब पड़ी, बहुड़े थे प्रभु आन ॥ 2991 ख

जभी द्रौपदी घिर गई, सभा मध्य दुष्टान ।
देर लगाई न प्रभु, चीर बढ़ाये आन ॥ 2991 ग

द्रौपदी की जिन लाज बचाई, रामरती जिन सिद्ध बनाई ।
नागों से जिन भक्त बचाये, रक्षक पग पग पर बन पाये ।

---

[1] हरिहरानन्द – दोहा 440 से आगे । [2, 3, 4] नागिन बुढ़िया – दोहा संख्या 486 से आगे ।
[5] वन गज – दोहा संख्या 506 से आगे । [6] दलदल ताल – दोहा संख्या 511 से आगे ।

उन्हीं प्रभु की शरण मैं मीत, उन के चरणों में मम प्रीत ।
दुःख दर्द से मुझे बचाते, पाप कर्म से मुक्त कराते ।
जन के पापों का जब कोप, करने आये सुख का लोप ।
बचावें प्रभु जी उस ही काल, ऐसे प्रभु जी जन पर दयाल ।
दुःख आयें पर ठहर न पायें, वे संकेत यही दे जायें ।
तेरे अघ संचित बहुतेरे, प्रभु कृपा से आयें न नेरे ।
शैल को प्रभु राई बनायें, ऐसे तुझे सदैव बचायें ।

दो०-पर्वत उमड़े कष्ट का, होय राई समान ।
उसी नाथ की शक्ति का, 'सेवक' करत बखान ।। 2992क

मुझे भरोसा नाथ का, और किसी का नाहिं ।
मन वचन और कर्म से, मैं 'सेवक' तव साईं ।। 2992ख

मन मेरे में क्रोध भरा है, अहंभाव का धाम बना है ।
मोह ममता का है आवास, है अज्ञान का इस में वास ।
सके न पा यह कुछ भी ज्ञान, जान सके न कुछ विज्ञान ।
अनेकों इस के हैं संकल्प, और हैं भरे अनेक विकल्प ।
इस की ऐसी रीत को देख, मिटी सकल है मोक्ष की रेख ।
धर्म कर्म भी नहीं कुछ पास, राखूँ स्वर्ग की भी किमि आस ।
प्रभु का यद्यपि भक्त कहाऊँ, निज को पर इस योग्य न पाऊँ ।
जिस को पा शिव तृप्त न होय, मुनि सनकादि जिस में हैं खोय ।

उसी का छोर किमि मैं पाऊँ, अपने को किमि भक्त कहाऊँ ।

दो॰–इस विध सोच विचार कर, मेरा चित्त उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ॥ 2993

मेरा कोई न और ठिकान, प्रभु चरणि मैं पड़ा हूँ आन ।
अनाथन के प्रभु पालनहार, किस का गहूँ मैं और सहार ।
मेरे पापों का कर ध्यान, त्यागो मुझे यदि शठ इक मान ।
फिर भी तुझे पुकारूँ नाथ, क्या तुम अनाथों के न नाथ ।
तुझे छोड़ मैं परम अनाथ, मेरा तुझ बिन और न नाथ ।
केवल बिका मैं तेरे हाथ, तव चरण की शपथ है नाथ ।
जे कर शपथ हो मेरी झूठ, जायें मम ये प्राण ही छूट ।
होंय विमुख यदि प्रभु दयाल, क्या करूं यह प्राण संभाल ।
अपवर्ग स्वर्ग नरक व नाथ, मुझे भायें न बिन तव साथ ।

दो॰–मैं बसूँ उसी धाम में, जहां बसें तव दास ।
हरानन्द व रामरती, का जहां हो वास ॥ 2994क

मेरा पर कुछ वश नहीं, मेरा चित्त उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ॥ 2994ख

कृपा क्या कभी मुझ पै होय, अधिकारी जिस के हैं जन सोय ।
जिन को तारा तुम है स्वामी, [1]अवधूता [2]रामा व शुभनामी ।

---

1 अवधूता – दोहा 167, 459, 466 से आगे ।   2 रामा – दोहा संख्या 385 से आगे ।

भक्तों की गति मैं भी पाऊँ, पाप कर्मों का फल न पाऊँ ।
प्रभो तव कृपा का नहीं अन्त, तुम ने तारे भक्त बेअन्त ।
तव कृपा से हैं तरे अनेक, मुझे भी रखिये उन में एक ।
[1]जयराम का जिमि दोष दुराया, [2]जसपुर का कुम्हार तराया ।
तारो मुझ को तिमि रामलाल, बिगड़ पाये न मेरा हाल ।
मेरे पाप तो नहीं न्यून, किस पापी से हूँ मैं ऊन ।

दो०–पापों का भण्डार है, मेरा चित्त उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ।। 2995

प्रभु का सेवक तो कहलाऊँ, सेवा से पर मैं कतराऊँ ।
अनेकों जन्म किये जो पाप, 'सेवक' के प्रभु बख्शें आप ।
मुझे भी दो सेवा का दान, पाया जिमि रामा वरदान ।
अथवा हरानन्द जो पाया, और सफल निज जन्म बनाया ।
मुखाराम और दण्डी स्वामी, प्रभु के सेवक थे शुभ नामी ।
सेवा कीनी फल बहु पाया, जीवन दान प्रभु से पाया ।
गजेंद्रो से प्रभु कीना त्राण, नागों से बच पाये प्राण ।
[3]मान्त्रिक शक्ति मार न पाई, सेवक के प्रभु सदा सहाई ।

दो०–सेवा का गुण है नहीं, मेरा चित्त उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ।। 2996

---

1 जयराम – दोहा संख्या 183 से आगे ।
2 जसपुर का कुम्हार – दोहा संख्या 160 से आगे ।
3 मान्त्रिक शक्ति – दोहा संख्या 545 से आगे ।

दासों के प्रभु हैं रखवार, देखा जीवन में बहु बार ।
प्रभु ने पग पग कीन त्राण, सकूँ न कर सब मैं गुण गान ।
भय से मुझ को सदा बचाया, भय को ही उन भय दे पाया ।
शिशु को यदि कोई पशु डरावे, माता पशु को मार भगावे ।
ऐसे ही जब किसी डराया, क्षमा प्रभु न उस को कर पाया ।
सहस्र गुणा वे करें दुलार, प्रभु जी माता से बढ़ प्यार ।
दीना मानव का उन देह, और पिता माता का नेह ।
भोग सकल जग के दे पाये, चरण शरण में फिर ले आये ।
ज्ञान और भक्ति का दे दान, माया जाल से कीना त्राण ।

दो०–प्रभु ने सब कुछ है दिया, फिर भी चित्त उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ।। 2997

हे प्रभु मेरे दोष निवारो, हे प्रभु मेरे पाप निकारो ।
पापों का जो है बहु भार, वही करता मुझ को दुखयार ।
मातृगोद में शिशु हो सोता, चुभे जब कांटा तो वह रोता ।
जब तक कांटा नहीं हो दूर, पीड़ा से वह दुःखी ज़रूर ।
ऐसे मैं भी बहुत अधीर, कांटे पाप के देते पीर ।
तव चरणों की शरण में आय, फिर भी यदि जन चैन न पाय ।
जानूँ उस का कारण एक, पीड़ा दे रहे पाप अनेक ।
हे प्रभो मम पीड़ को टारो, पाप के कंटक तुम निकारो ।

तव बालक तो रो ही पाये, कंटक किमि वह दूर हटाये ।
यह तो आप का ही है काम, पाप के कांटे हरो तमाम ।

दो॰–हरिए कंटक पाप के, मेरी तव पर आस ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ॥ 2998

कोटि जनों के पाप निवारे, जो दुखी थे किए सुखयारे ।
मुझ पै करिए वही प्रयोग, पाप निकार के दो निज योग ।
यदि मैं पापी ही रह पाया, किस काम फिर योग यह आया ।
अग्नि में पड़ रहे नहीं दोष, योग से होवें जन निर्दोष ।
अग्नि परीक्षा मैं भी चाहूँ, तव चरणी रह योग कमाऊँ ।
योग ने [1] विजना कीनी शुद्ध, तव 'सेवक' क्यों रहे अशुद्ध ।
विजना थी इक पापिन नार, पापी मैं भी जगदाधार ।
जो किरपा उस पर हो पाई, मेरे भी बनो तिमि सहाई ।

दो॰–जब तक किरपा न भये, रहूंगा मैं उदास ।
टिका एक ही आस पर, मैं हूँ प्रभु का दास ॥ 2999

[2] मैंडू को तुमने था तारा, [3] द्रौपदी के बने आधारा ।
[4] ऋषिदेवी को ऋषि बनाया, मृत्यु से [5] ब्रह्मपूत बचाया ।

---

[1] विजना – दोहा संख्या 820 से आगे ।
[2] मैंडू – दोहा संख्या 998 से आगे ।
[3] द्रौपदी – दोहा संख्या 1206 से आगे ।
[4] ऋषि देवी – दोहा संख्या 1195 से आगे ।
[5] ब्रह्मपूत – दोहा संख्या 328 से आगे ।

[1]मानकचन्द की रक्षा कीन, उच्च समाधि [2]अमर ने लीन ।
[3]पांडा भक्त लीना उपदेश, [4]हरनामदास के मिटे क्लेश ।
[5]श्यामनारायण भया विरक्त, [6]आशुतोष भी बना था भक्त ।
छुआछूत [7]वैरागी त्यागी, [8]हरिहरराय मन भक्ति जागी ।
[9]रामा योग में भयी विलीन, प्रेतों को प्रभु सद्गति दीन[10] ।
[11]अयोध्या की अवधूता नार, मिला उसे आनन्द अपार ।
किन किन के मैं नाम गिनाऊँ, बैठा सबके भाग्य सराहूँ ।

दो०–सभी जनों के भाग्य को, देख भये विश्वास ।
किरपा मुझ पर भी भये, मैं भी प्रभु का दास ॥ 3000

हूँ मैं दास निमाना नाथ, गुण है एक न मेरे साथ ।
पापों का भण्डार अटूट, कुकर्म सकें न मुझ से छूट ।
दुर्बल देह और मन मलीन, कदापि पुण्य कर्म नहीं कीन ।
पूजा पाठ से रहकर दूर, कर्म से वंचित रहा जरूर ।

---

[1] मानकचन्द – दोहा संख्या 1360 से आगे । [2] अमर – दोहा संख्या 1404 से आगे ।
[3] पांडा भक्त – दोहा संख्या 1304 से आगे । [4] हरनामदास – दोहा संख्या 353 से आगे ।
[5] श्यामनारायण – दोहा संख्या 325 से आगे । [6] आशुतोष – दोहा संख्या 393 से आगे ।
[7] वैरागी – दोहा संख्या 442 से आगे । [8] हरिहरराय – दोहा संख्या 337 से आगे ।
[9] रामा – दोहा संख्या 386 से आगे ।
[10] प्रेत – दोहा संख्या 234 और 266 से आगे, दोहा 1382 से आगे ।
[11] अयोध्या की अवधूता – दोहा संख्या 167 से आगे ।

एक भी तीर्थ मैं नहीं कीन, दान में कुछ भी कभी न दीन ।
सत्संगति न मोहे सुहाई, शास्त्र पाठ किया नहीं राई ।
जप तप का तो नाम न जाना, बड़ों की शिक्षा को न माना ।
दया न दीन जनों पै कीनी, निज आचार की सुध न लीनी ।

दो०–अवगुण तो भरपूर हैं, एक भी गुण न खास ।
फिर भी मुझे भरोस है, मैं हूँ प्रभु का दास ।। 3001

अपना विरद प्रभु को प्यारा, पापारि प्रिय नाम न्यारा ।
सूर्य समक्ष न तम टिक पाये, तिमि प्रभु कृपा पाप दुराये ।
प्रभु कृपा बिन बने नहीं बात, 'सेवक' का अनुभव साक्षात ।
प्रभु कृपा नहीं होती जोय, 'सेवक' जाता भव में खोय ।
बवण्डर में तिनके की चाल, होता सेवक का वही हाल ।
यह 'सेवक' निज गति को जाने, प्रभु कृपा को खूब पहचाने ।
प्रभु कृपा है मुझे प्यारी, मैं जाऊं उस पर बलिहारी ।
विरला इस को जन पहचाने, जिस पर होत वही जन जाने ।
इस को [1]मुलखराज पहचाना, इसी को [2]द्रौपदी ने जाना ।
[3]ऋषिदेवी ने इस को देखा, था [4]हरनामदास भी पेखा ।

---

[1] मुलखराज – दोहा संख्या 893 से आगे । [2] द्रौपदी – दोहा संख्या 1206 से आगे ।
[3] ऋषि देवी – दोहा संख्या 1195 से आगे । [4] हरनामदास – दोहा संख्या 340 से आगे ।

दो०-इस किरपा को देखते, जो हों प्रभु के दास ।
'सेवक' इस ही आस पर, रहत प्रभु का दास ।। 3002

जिस जिस ने प्रभु किरपा पाई, वह जाने प्रभु की प्रभुताई ।
[1]काशी का ब्रह्मचारि महान, उस ने लीना प्रभु को जान ।
[2]प्रेतग्रस्त मन्दिर को तार, योग शक्ति का किया विस्तार ।
[3]योग की शक्ति सब ने जानी, प्रभु की कृपा सेठ अनुमानी ।
पड़ा शरण में तभी वह आय, उस के चित्त की कथी न जाय ।
[4]हरिराम ने लीन पहचान, हो गया बालक सिद्ध महान ।
[5]खप्पर वाले साधु पहचान, नतमस्तक भया चरणि आन ।
[6]क्रोधी साधु लिया पहचान, भया तभी उसका कल्याण ।
[7]बाबा लक्ष्मण दास ने जान, दीक्षा ले निज कीन कल्याण ।
अनेकों ने प्रभु को पहचान, मानव जन्म सुधारा आन ।
'सेवक' के मन चिन्ता भारी, आयु बीतत जाती सारी ।
कर्म न कीना ऐसा कोई, कृपा पाने योग जो होई ।

दो०-बार बार अब मैं सिमर, प्रभो करूँ अरदास ।
मुझ पर भी किरपा करो, मैं हूँ तेरा दास ।। 3003

---

[1] काशी का ब्रह्मचारी - दोहा संख्या 197 से आगे । [2] प्रेत ग्रस्त मन्दिर - दोहा संख्या 227 से आगे
[3] सेठ - दोहा संख्या 237 से आगे । [4] हरिराम = दोहा संख्या 340 से आगे ।
[5] खप्पर वाला साधु - दोहा संख्या 269 से आगे । [6] क्रोधी साधु = दोहा संख्या 982 से आगे ।
[7] बाबा लक्ष्मण दास - दोहा संख्या 157 से आगे ।

गुण इस में चाहे है न एक, इस में दोष तो है प्रत्येक ।
इस जन्म के पाप बहुतेरे, पूर्व जन्म के भी न थोरे ।
अब भी न को पुण्य कमाऊँ, को मुख ले प्रभु सन्मुख जाऊँ ।
प्रभो मम कर्मों को न देखो, शरण पड़ा इक दोषी पेखो ।
शरणी आया पापी तारो, दयानिधि निज विरद संभारो ।
अन्तर्यामी नाथ के आगे, अपने पाप कहां ले भागे ।
प्रभो करूँ मैं सब स्वीकार, क्षमा करो जग पालनहार ।
आप ने अपना चरित लिखाय, 'सेवक' के कई पाप दुराय ।
यह तो एक धृष्टता नाथ, 'सेवक' कार्य लिया यह हाथ ।
ब्रह्मा भी जिस का गुण गान, सके न कर ले हार ही मान ।
सामर्थ्य न मेरा कुछ भी नाथ, रचा सभी तुम अपने हाथ ।

दो०–रचा स्वयं तुम ने प्रभो, अपना चरित महान ।
'सेवक' मन अहं न भये, अपनी रचना जान ।। 3004क

अपनी रचना को प्रभो, खुद देवो वरदान ।
पढ़े सुने जो जन इसे, उस का हो कल्याण ।। 3004ख

उत्तर काण्ड यहां प्रभो, भया सम्पूर्ण आज ।
ह्यूस्टन नगरी में प्रभो, अमरीका के राज ।। 3004ग

[1]बीस छतालीस संवत, तिथि असूज की एक ।
करूँ समर्पित नाथ को, प्रभु को माथा टेक ।। 3004घ

---

[1] विक्रमी संवत् 2046 असूज मास प्रथम तिथि, तदनुसार शनिवार 16 सितम्बर 1989. ह्यूस्टन नगर (अमरीका) – 11714 WICKHOLLOW, HOUSTON, TEXAS STATE, 77043, U.S.A.

कृपा करें इस दास पर, भूल चूक हो माफ़ ।
'सेवक' के मन मलिन को, प्रभु करें खुद साफ़ ।। 3004ङ

यही विनय तव चरण में, हो प्रभु स्वीकार ।
विनय काण्ड अगला लिखूँ, मन में प्रभु को धार ।। 3004च

इति श्री

श्री सद्गुरुदेव योगेश्वर स्वामी मुलखराज जी महाराज के शिष्य 'सेवक' चमनलाल कपूर कृत '*श्री योग महादिव्य रामायण*' का उत्तर *काण्ड* सम्पूर्ण ।।